

XAT.COM

विश्व इतिहास

के

विलुप्त अध्याय



पुस्तकोत्तम नामश्रा और

श्री ओक की इतिहास पर खोजपूर्ण रचनाएं

भारत का दिल्लीय मंगलम् अर्थात् आजाद हिन्दु फौज की कहानी

भारतीय इतिहास की भव्यकर भूलें

ताज महल मन्दिर भवन है

भारत में मुस्लिम सुल्तान भाग - (2 खण्ड)

हास्याभ्यंद अंगैरी भाषा

कौन कहता है अकबर महान था?

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय

ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है

आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है

दिल्ली का लाल किला लाल कोट है

फतहपुर सीकरी हिन्दू नगर है

लालनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं

वैदिक विश्व गढ़ का इतिहास - (4 खण्ड)

क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखित है ?

क्रिश्चियनिटी कृष्ण नीति है

The Taj Mahal Is A Temple Palace

World Vedic Heritage

Some Blunders Of Indian Historical Research

Some Missing Chapters Of World History

Who Says Akbar Was Great

Agra Red Fort Is A Hindu Building

Christianity Is Chrism-nity

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय

लेखक : पुरुषोत्तम नारोश ओक

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली - 05

मूल्य 60.00

प्रकाशक हिंठकी आहित्य भाक्षन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुजारी मंड़े,
करोन वाण, नई दिल्ली-110005

email: indiabooks@rediffmail.com

फोन 23551344, 23553624

फॉक्स 011-23553624

प्रकाशन 2007

पुस्तक संग्रहालय आर्केस्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-51

अनुक्रम

| | |
|---|---------|
| १. भारतीय इतिहास की विडम्बना | ... ११ |
| २. भारत का इतिहास भारत के शब्दों द्वारा ही लिखा गया है | ... १५ |
| ३. इतिहास की परिभाषा और उसका अभिप्राय | ... २३ |
| ४. इतिहास-लेखकों ने किस प्रकार जनता को धोखा दिया है | ... २९ |
| ५. इतिहास का पुनर्लेखन—क्यों और कैसे ? | ... ३६ |
| ६. भारतीय जीवन में मुस्लिम योगदान | ... ४५ |
| ७. पुरातत्त्वीय अभिलेख किस प्रकार बनाकरी रूप में प्रस्तुत किए गए हैं | ... ५५ |
| ८. मध्यकालीन वास्तुकला हिन्दू है—मुस्लिम नहीं | ... ६२ |
| ९. आक्रमणकारी तौमूरतंग की स्वीकृति—पुरानी दिल्ली की जामा मस्जिद हिन्दू मन्दिर है | ... ७० |
| १०. पुरानी दिल्ली की स्थापना पाण्डवों ने (न कि शाहजहाँ ने) की थी | ... ७७ |
| ११. दिल्ली का लालकिला हिन्दू लालकोट है | ... ८२ |
| १२. अकबर के तथाकथित विवाह स्पष्ट रूप में अपहरण- काण्ड थे | ... ८६ |
| १३. प्रेमी और वास्तुकला विशारद | ... ९८ |
| १४. इतिहास-गमित शब्द और वाक्यचार | ... ११८ |
| १५. अनुसन्धान विधि-तत्त्व और इतिहास के विद्वानों की भद्री भूलें | ... १२३ |

| | | |
|---|-----|-----|
| १६. प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व की परख करने के मापदण्ड | ... | १३० |
| १७. हिन्दू विश्व-साम्राज्य के अवशेष | ... | १४५ |
| १८. प्राचीन भौगोलिक विश्व-मानचित्र के सभी नाम संक्षेप भाषा के ही थे | ... | १५० |
| १९. जायुबेद—हिन्दू चिकित्सा-शास्त्र ने प्राचीन विश्व को स्वस्थ रखा | ... | १५८ |
| २०. सम्मुण्ड प्रशान्त सेत्र हिन्दू-प्रदेश था | ... | १७० |
| २१. प्राचीन इंग्लैंड हिन्दू-देश था | ... | १८४ |
| २२. इंग्लैंड में प्राचीन नगर और मन्दिर | ... | १९४ |
| २३. बैस्ट मिस्टर एवं भी एक शिव-मन्दिर है | ... | २०६ |
| २४. अंग्रेजी संक्षेप भाषा की एक शाखा बोली है | ... | २१४ |
| २५. प्राचीन इटली हिन्दू-देश और पोष हिन्दू-पुरोहित था | ... | २२५ |
| २६. अरेबिया, इराक और ईरान किसी तमय हिन्दू-देश थे | ... | २४१ |
| २७. हिन्दुओं के ललाट चिह्न | ... | २४८ |

आमुख

इस पुस्तक का उद्देश्य विश्व को इतिहास के सम्बन्ध में आदी ही शिखिलकारी तन्दिलावस्था से जागृत और सचेत कर यह बताना है कि सीखने और भूला देने के लिए अगाध भण्डार विद्यमान है।

विश्वभर में आज जो इतिहास पढ़ाया, प्रस्तुत किया जा रहा तथा अनुमान किया जा रहा है, उसमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ हैं, जिनमें से कुछ तो ऐसी हैं जिनके कारण विगत घटनाओं को वित्कूल ढलाटे हथ में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका एक दृष्टान्त पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रचारित यह प्रचलित जन-विश्वास है कि आर्य एक जाति है, और आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया था तथा इस देश को ही अपना धर, निवासस्थान बना लिया था। ये दोनों ही, इतिहास सम्बन्धी भ्रान्ति, विपरीत धारणाएँ हैं। आर्य कोई जाति नहीं, अपितु हिन्दू जीवन-पद्धति है, और आर्य धर्म को हिन्दुओं ने ही अखिल विश्व में फैलाया था, अर्थात् भारतीयों ने विश्व के विभिन्न भागों में निरक्षण किया था।

एक अन्य बड़ा भ्रमजाल उस मुस्लिम-वर्ग के सम्बन्ध में है जिसे सूफ़ी वर्ग कहते हैं और जिनको अथक परिश्रम से महान् सत्त-रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके जीवन की निकट से अतिसूखम् और निष्पक्ष परीक्षा करने पर उनमें से अधिकांश लोग उस संदर्भनी का दूसरा भाग प्रतीत होंगे जो हिन्दू (भारतीय) सम्यता का गला घोटने में दिदेशी मुस्लिम राजनात्ता का साथ दे रहे थे।

अत्यन्त सावधानीपूर्वक प्रचारित तीसरा भ्रमजाल शेरशाह, फ़िरोज़-शाह और अकबर जैसे भारत में दिदेशी शासकों की प्रकल्पित महानता के बारे में है। विचारों और कर्मों की दृष्टि से दिदेशी होने का उनका तथ्य यह कहकर अत्यन्त सतकंतापूर्वक दबाया जा रहा है कि ये भारत में ही

स्थायी रूप से निवास करने लगे थे। ऐसा कुतकं प्रस्तुत करते समय वे इस अनुभूति की भी उपेक्षा कर देते हैं कि यदि कोई अन्य देशीय दस्थु-दल स्वयं को किसी भास में स्थायी रूप से निवास-योग्य बनाकर चहे और की निकट-वर्ती सीमाओं पर स्थित घरों को लूटने और महिलाओं का सतीत्व भंग करने में सफल हो जाए, तो क्या वह नागरिकता का हक्कदार हो जाता है?

यह भी बजात है कि चिरकालीन, विस्मृत विगतकाल में हिन्दू लोगों का अर्थात् आयों का एक विश्व-साम्राज्य था और उस समय विश्व संस्कृत भाषा बोलता था। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश लोग स्वयं को आयं सम्बोधित करते हैं, और लैटिन व फारसी जैसी संस्कृतनिष्ठ भाषाएँ बोलते हैं।

यूरोपीय और फारसी व पश्तो जैसी अन्य भाषाओं को भारोपीय भाषाएँ कहना शाब्दिक विलूपता, असंगति है। क्योंकि, यदि, भयंकर भूल करने वाले पश्चिमी विचारकों के अनुसार आयं लोग किसी बाह्य-स्थान से, भारत सहित, समस्त विश्व में कैल गए थे, तो यूरोपीय भाषाओं और फारसी व पश्तो को आयं भाषाओं के नाम से सम्बोधित किया जाना चाहिए था न कि भारोपीय नाम से। चूंकि वे सब भाषाएँ संस्कृत-मूलक हैं, अतः उनका नाम-कारण इष्टो-आयं न होकर, भारतीय अथवा आयं अथवा संस्कृत भाषा होना चाहिये। इन तीनों नामों का एक ही अर्थ है।

इससे यह स्पष्ट है कि निराधार धारणाओं की अद्युक्ति-युक्तता, स्पष्ट और विधि-सम्बत प्रकार से विचार करने वाले सभी मनुष्यों के समक्ष उचागर हो जाती है।

बत्तमान ऐतिहासिक धारणाओं में एक अन्य गम्भीर दोष मध्यकालीन ऐतिहासिक भवनों के मूलोदगम के सम्बन्ध में है। कम-से-कम भारत में तो सभी मध्यकालीन मकाबरे, मस्जिदें, किले, स्तम्भ, पुल, नहरें, भवन और सड़के मुस्लिम-पूर्व हिन्दू-मूलकी हैं, और फिर भी उनमें से प्रत्येक का निर्माण-अर्थ इस या उस विदेशी गुल्मान को दिया गया है। इस दोष ने हिन्दू विश्वकला की जिहादी-कला का विश्वास दिलाकर बास्तुकला के विद्यार्थियों के दिमागों की सफाई करने का दोष भी उत्पन्न कर दिया है। इष्टो-आयं शब्दावली के समान ही, इण्डो-सारसेनिक (भारतीय जिहादी)

शब्दावली भी अद्युक्तियुक्त है। यही भी 'सारसेनिक' प्रत्यय समाप्त कर दिया जाना चाहिये, और (भारतीय) भवनों को मात्र नृद भारतीय, हिन्दू ऐतिहासिक भवन ही कहा जाना चाहिये। उन भवनों के मुस्लिम मूलोदगम के बारे में 'आन्ति का' कारण यह है कि हिन्दू मन्दिरों और भवनों पर मकाबरे और मस्जिदों के रूप में मुस्लिमों का आधिपत्य रहा और वे इनका दुरुपयोग करते रहे हैं। यह बात 'ताजमहल एक हिन्दू राजभवन है', 'फतेहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर है' और 'आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है' तथा 'दिल्ली का लालकिला हिन्दू लालकोट है' जैसी सुप्रसिद्ध पुस्तकों में प्रमाणित की जा चुकी है। बत्तमान पुस्तक में हमने एक अद्याय सम्मिलित किया है जिसमें स्पष्ट प्रदर्शित किया है कि आक्रमणकारी तैमूर-लंग ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि इस्लामी विजय और आधिपत्य के पूर्व पूरानी दिल्ली की तथाकथित जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर थी।

ऐसी सब भयंकर भूलें अनेक कारणों से ही इतिहास में पक्की तौर पर जड़े जमा वैठी है। ऐसा एक कारण सहज, प्राकृतिक रूप में विनाश है। समय की निर्बाध गति के साथ-साथ जिस प्रकार प्रत्येक आने वाली पीढ़ी अपने प्रपितामह के नाम को भूलने लगती है, उसी प्रकार प्राचीन इतिहास भी विस्मृत होता जाता है। इतिहास का सदोष हो जाने का अन्य कारण विदेशी आधिपत्य है; जैसे भारत पिछले हजार वर्ष तक आंग्ल-इस्लामी शासन का गुलाम रहा है। विदेशी शासक अपने अधीन प्रजा के इतिहास को जान-बूझकर तोड़ते-फोड़ते, विनष्ट, विछृत करते हैं। ऐसा क्यों और कब होता है, इस तथ्य का स्पष्टीकरण भी इस पुस्तक के एक अद्याय में दिया गया है। एक तीसरा कारण यह है कि गुलाम जनता के लिए, जो पहले ही क्रमिक रूप में निर्धन और घरों से निर्वासित कर दी गई होती है, शारीरिक दृष्टि से असम्भव और मनोवैज्ञानिक रूप से निरर्थक हो जाता है कि वह पूर्णतः लूट गई अपनी सम्पत्ति का कोई अभिलेख रख सके। इतिहास के विनाश अथवा उसकी विकृति के लिए उत्तरदायी चीज़ा कारण तत्त्वार और मध्याल लिये दबंग अरब-लोगों द्वारा अपाक नर-संहार और सम्मानित राष्ट्रों द्वारा युद्ध था। इन सब घटनाओं के कारण एक प्राचीन विश्व हिन्दू-

साम्राज्य और विश्व भाषा के रूप में संस्कृत के योगदान के चिह्न नष्ट
भूमिल होते रहे हैं।

इन सब कारणों से भारतीय और विश्व-इतिहास-ग्रन्थों में अनेक मिथ्या
बातें प्रविष्ट हो गई हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक सत्य की जड़ें छोलती कर दी
हैं और इतिहास को सत्य से बहुत दूर ला पटका है। इस ग्रन्थ द्वारा मैं
प्रचलित ऐतिहासिक धारणाओं के बहुत सारे दूरगमी दोषों को जनता के
सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

शाठकों से निवेदन है कि वे इन दोषों को भलीभांति समझ लें। समझ
लेने के पश्चात् वे इन तथ्यों का प्रचार-प्रसार करें। भारत स्थित सारे
ऐतिहासिक भवन इस्लाम-पूर्व भारतीय क्षवियों की सम्पत्ति हैं इस सत्य को
सर्वज्ञत करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। पुरातत्त्व विभाग द्वारा उन
भवनों पर जो ऐतिहासिक सूचनापट लगाए गए हैं वे भ्रान्तिपूर्ण होने के
कारण उन्हें बदलवा लेना जनता का कर्तव्य है। विद्यालयों में अध्यापकागण
जोड़े भूंदकर जो पुरानी भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ दोहरा रहे हैं उस परिपाठी को
भी समाप्त करना आवश्यक है। इतना दोष-भरा इतिहास बिना किसी
रोक-टोक के सदियों से चल रहा है, इसका कारण यह है कि सामान्य जन
इतिहास के प्रति लापरवाह है और अधिकारी व्यवित स्वार्थ और भय से
रहत है। हम इस झूठे इतिहास को कितने दिन सहते रहेंगे, इसका विचार
प्रत्येक शाठक करे।

पु. ना० ओक

अध्यक्ष

एन-१२८, प्रेटर कैलास-१,

नवी दिल्ली-११००४८

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान

: १ :

भारतीय इतिहास की विडम्बना

"ताजमहल मन्दिर भवन है" शीर्षक स्तव्यकारी पुस्तक इनकी चोट
सिद्ध करती है कि अन्ततोगत्वा, ताजमहल पांचबीं पीढ़ी बाले मुगल बादशाह
जाहजहाँ की आत्मशलाघापूर्ण संरचना न होकर एक अति प्राचीन हिन्दू
मन्दिर-राजभवन संकुल है जिसे मुमताज के मकबरे के रूप में उपयोग हेतु
बलात् छीन लिया गया था।

ताजमहल-सम्बन्धी मेरे शोधप्रन्थ के पश्चात् विकृत इतिहास के
विभिन्न दोषों पर मैं और भी प्रथम लिख चुका हूँ। इन पुस्तकों को पढ़ने
ओर मेरे अनेक भाषणों को सुनने के पश्चात् लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगा
है कि यदि व्यापक रूप में अध्ययन किया जा सके, तो ये उपलब्धियाँ और
कार्य-पद्धति त केवल भारतीय, अपितु विश्व इतिहास के अध्ययन और अव-
बोधन में भी कान्ति ला सकेंगी।

यह ठीक ही कहा गया है कि किसी तरीयी उपलब्धि का मूल्य एक तर्या
सिद्धान्त स्थापित करने अथवा किसी पुरातन सिद्धान्त का खण्डन करने में
उतना नहीं है जितना कि प्रचलित धारणा को युगों-प्राचीन घिसे-फिटे रास्ते
से हटाकर नये मार्ग पर चला सकने में है। यथार्थ रूप में तो यही वह महान्
कार्य है जिसको इतिहास के क्षेत्र में प्रोफेसर ओक ने कर दिया था।
उन्होंने ऐतिहासिक धारणा को घटावियों के घिसे-फिटे मार्ग से गृह्ण कर
दिया है।

किसी भी आक्रमण का सर्वप्रथम प्रहार इतिहास पर ही होता है। इस
बात को हम अपने ही अनुभव से सत्यापित भी कर सकते हैं। इस तरह
हमारी सीमाओं का उल्लंघन पाकिस्तान और चीन द्वारा किया जा रहा है।
हमारे देश की धरती पर आक्रमण करने से पूर्व ही उस भू-क्षण पर अपना

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

दावा सिद्ध करने के लिए शब्द लगू ठें न करो बनाता है। वह हमारी सीमाओं पर अपना दावा सिद्ध करने के लिए अगला काम यह करता है कि सीमाओं पर लगे स्तम्भों को गिरा देता है। हम इस प्रकार स्पष्ट रूप में देखते हैं कि आक्रमण करने के क्षण से अथवा आक्रमण की तैयारी करने के क्षण से भी पूर्व से ही नवु-देश जाक्रमण के शिकार देश का इतिहास नष्ट करना ग्राम्भ कर देता है। हम, इन परिस्थितियों में भलीभांति अनुभव कर सकते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम (सन् ७१२ ई०) से लेकर ब्रिटिश लोगों के बहिर्भूत (सन् १८५७ ई०) तक निरन्तर आक्रमणों की १२०० वर्षीय दीघविधि में भारतीय इतिहास को कितनी अधिक धृति पहुँचायी गयी होगी, कितना अधिक तोड़ा-मरोड़ा गया होगा।

दासता की एक हजार वर्ष से अधिक की इस अवधि में हमारे इतिहास को न केवल तोड़ा-मरोड़ा गया है, अपितु इसके अनेक अंशों को विलुप्त गमन—विलुप्त कर दिया गया है। हमारे इतिहास के अनेक अध्याय विलुप्त हो चुके हैं—विशेष रूप में वे अध्याय जो प्राचीन हिन्दुओं के विश्वव्यापी साम्राज्य से और उनकी भाषा—संस्कृत के विश्वव्यापी प्रभुत्व से मम्बन्धित हैं।

इतिहास के अति व्यापक तोड़ा-मरोड़ा और विकृति के रूप में हम उन मध्यमुग्नीन भवनों का उल्लेख कर सकते हैं जिनको अकावर, हुमारूँ अथवा मफ्फर रेखे के मकावरे कहा जाता है। यही बात अहमदाबाद और तुगलकाबाद जैसी नगरियों की भी है। ये सभी मुस्लिम-पूर्व काल की हिन्दू कृतियाँ हैं, किन्तु दोषें मुस्लिम-आधिपत्य की घड़ी में इनका निर्माण-थ्रेय इस या उस नुस्खानां व्यवहारी अथवा भिन्नतयों, कुम्हारों और अंगियों जैसे निम्न-स्तरीय व्यक्तियों को दे दिया गया। यथा यह विचार कर सकता कठिन है कि जिन्होंने अपने निरन्तर आक्रमणों से हिन्दुस्तान पर झड़े दावे किए, उन्होंने ही इस देश के भवनों और नगरों पर भी झड़े दावे प्रस्तुत कर दिए? भारतीय और विश्व-इतिहास की ऐसी विकृतियों और विलुप्तियों के सम्बन्ध में विशेषोल्लेख हम अगले अध्यायों में करेंगे।

चूंकि आक्रमण का पहला शिकार इतिहास ही होता है, इसलिए स्वाभाविक रूप में चुंडिगम्य बात यही है कि किसी भी देश को स्वाधीनता-

प्राप्त करने पर सर्वप्रथम कार्य अपने इतिहास का पुनर्जीवन करना ही होना चाहिये। दुर्भाग्यवश, भारत में इतिहास-नुनलेखन के सम्बन्ध में गम्भीरता-पूर्वक कोई सद-प्रयत्न किए गये प्रतीत नहीं होते। तथ्य तो यह है कि 'धर्म-निरपेक्षता' और प्रशासनिक अनिवार्यता के नाम में भूतकाल की घटनाओं को सत्यता को कम करके दिखाने अथवा उसकी प्रत्यरुद्धा को कम करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। इसे ऐतिहासिक भवदा राजनीतिज्ञ गत्य-कथा के रूप में तो अंगीकार किया जा सकता है, किन्तु 'इतिहास' के रूप में तो यह विलुप्त मूल्यहीन, अर्थात् वस्तु है। इसी कारण हमें 'इतिहास' की परिभाषा जानना आवश्यक ही जाता है।

संस्कृत भाषा का 'इतिहास' शब्द इस सम्बन्ध में अत्यधिक अर्थपूर्ण है। 'इति' का अर्थ है 'ऐसा-ऐसा', 'हा' का अर्थ है 'निश्चयपूर्वक' और 'आम' का अर्थ है 'हुआ'। इस प्रकार, यह शब्द किसी देश के विगतकाल के तथ्यात्मक और तिथिक्रमानुसार यथार्थ विवरण का शोतक है। इस परिभाषा के विषरीत तथापि, मध्यकालीन भारत में परम्परागत रूप में जो कुछ सिखाया गया है और सम्पूर्ण विश्व में आज भी सिखाया जा रहा है वह 'इतिहास' न होकर 'इतिहा-नास' अर्थात् 'इस-इस प्रकार की बात कभी नहीं हुई' है। इस प्रकार, अत्यन्त स्पष्ट है कि तथ्यात्मकता के स्थान पर तथ्य-विरोधी बातों के समान ही इतिहास-विरोधी सभी बातें हैं जो भारतीय इतिहास के रूप में सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित-प्रसारित की जा रही हैं। इस प्रकार, यह न तो 'भारतीय' है और न ही 'इतिहास' है।

अतः भारतीय इतिहास की विडम्बना यह है कि भारत की गुलामी की अति दीघविधि में भारतीय इतिहास को विलुप्त उलट-पुलट दिया गया है। यह परिणमनीय विवेकशून्यता न केवल हमारी नितान्त निर्भयता का दुष्परिणाम है, अपितु ग्रीकों, अरबों, तुकों, ईरानियों, कजाकों, उज्जेकों, मंगोलों, अद्वीसीनियनों, पुतंगालियों, कांसीसियों और अग्रेजों जैसे आक्रमण-कारियों और शब्दुओं द्वारा लिखित विवरणों पर आत्मघाती विश्वास जगाने का दण्ड भी है।

अन्य कोई भी आत्म-सम्मानी देश ऐसी किसी स्थिति को सहन नहीं करेगा जिसमें उसके बच्चों को उसी के देश के शब्दों और गुलाम बताने

शामि व्यक्तियों द्वारा लिखित इतिहास के प्रन्थों, अध्यायों और प्रसंगों को हृदय से स्मरण करना पड़े और उन्होंने उद्धृत करना पड़े। दुर्भाग्यवश हम भारत में वही भारतीय इतिहास पढ़ाते हैं और उसी की अनुमति दे बैठे हैं जो सब प्रकार से हमारे शत्रुओं द्वारा ही लिखा गया है। यह दुष्कर्म पाप कर्म विश्व के अन्य किसी भी भाग में नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए इकरायल देश इकरायल का ऐसा कोई भी इतिहास नहीं पढ़ाएगा जो अरबों द्वारा लिखा गया हो, किन्तु हम भारतीय लोग अरबों द्वारा लिखित भारतीय इतिहास पढ़ाते हैं और वह भी अत्यन्त गौरव से। वही तो भारतीय इतिहास की ओर बिड़म्बना है।

इसका परिणाम यह है कि उस इतिहास को पढ़कर स्नातक बनने वाले हमारे प्रशासक अरब-पश्चिमी और ईरान-पश्चिमी नीति का अनुसरण करते हैं यद्यपि यही लोग आधुनिक विश्व में सर्वाधिक द्वेषी, दुर्बल, पिछड़े, विश्वासघाती, धर्मान्ध और महत्त्वहीन समुदाय हैं।

इस प्रकार अविकृत, विशुद्ध, अमिथित और आधिकारिक इतिहास के लेखन और शिक्षण का विशेष सहज स्पष्ट हो जाता है क्योंकि विश्व के समस्त कायं-कलापों पर किसी भी राष्ट्र का और उस राष्ट्र के नागरिकों का दृष्टिकोण इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने अपना इतिहास किस प्रकार पढ़ा है—सीखा है। अतः, हमारा अगला अध्याय इस कटु-सत्य पर प्रकाश डालेगा कि विदेशी, शत्रु के तिथिवृत्त-सेखकों ने भारतीय इतिहास का कितना अधिक सर्वनाश किया है।

: २ :

भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा ही लिखा गया है

यदि इतिहास की परिभाषा भूतकाल के तथ्यात्मक और तिथिक्रमान्तर यथार्थ घटना-विवरणों का लेखा-जोखा हो, तो भारतीय इतिहास अद्व-सत्यों, मनमीजी काल्पनिक धारणाओं और नितान्त मन-गङ्गान्त झूठों का अब-मिश्रण है। यह इन परिस्थितियों में अवश्यंभावी ही या क्योंकि मुहम्मद-बिन-कासिम के सन् ७१२ ई० के आक्रमण से प्रारम्भ कर सन् १६४७ ई० तक भारत, १२३५ वर्षों तक विदेशी गुलामी में ज़कड़ा रहा है।

अतिक्रमण का सर्वप्रथम शिकार इतिहास ही होता है। इस बात को अपने समकालीन अनुभव से भी परखा जा सकता है। कझमीर से कच्छ तक और अक्षयचिह्न से असम तक भारत की सीमाओं का उल्लंघन पाकिस्तान और चीन द्वारा किया जाता रहा है। अतिक्रमण की घड़ी से वयस्ता उससे भी पूर्व तेयारी के रूप में ही सीमा के खम्भों को गिराकर और झूठे नक्तों बनाकर शिकार-देश के इतिहास को तोड़ना-मरोड़ना व विनष्ट करना प्रारम्भ कर देता है। क्षेत्राधिक सिद्धान्त को लागू करने पर हम स्वयं से प्रश्न करें कि यदि अस्थायी अतिक्रमण से भी इतिहास को इतनी हानि पहुँच सकती है, तो हम अनुमान लगाएं कि १२३५ वर्षों में भारतीय इतिहास को कितना अधिक धक्का लगा होगा? स्पष्टतः उत्तर यह है कि भारतीय इतिहास का तोड़ा-मरोड़ा जाना और विनाश सीमातीत रूप में भयावह है। गणितीय निष्कर्ष सिद्धान्त से हमें जात होता है कि यह जन-विष्वास सही है कि प्रचलित ऐतिहासिक चन्द्र घोरतम रूप में सदोष और अपूर्ण है।

उपर्युक्त निष्कर्ष का एक उप-सिद्धान्त यह होगा कि एक देश किसी विदेशी-शासन के अधीन जितनी अधिक लम्बी अवधि तक रहेगा, उस

स्वाधीन देश का इतिहास भी उतनी ही अधिक मात्रा में अतिप्रस्तु हो जायेगा। अहं, स्वाधीनता-प्राप्ति के तुरन्त बाद इतिहास-पुनर्जनन को जागिरक-संरचना से भी अधिक प्राथमिकता मिलनी चाहिये क्योंकि गलत इतिहास पर पले-योगी कर्मचारी प्रत्येक पग पर लड़खड़ाने और गलत निर्णय करने समझते हैं। उनकी सम्पूर्ण विचारधारा ही अस्पष्ट और पथ-भ्रष्ट होती करते हैं। उनकी सम्पूर्ण समाज को सदोष इतिहास की मात्रक घूट पिलाने का है। किसी सम्पूर्ण समाज को सदोष इतिहास की मात्रक घूट पिलाने का है।

॥

विदेशी शासन के अन्तर्गत इतिहास न केवल तोड़ा-मरोड़ा जाता है, अपितु दिशा-परिवर्तित भी हो जाता है। कई बार, इतिहास में इतना उलट-कर कर दिया जाता है कि प्रत्येक प्रस्तुत व्यवहार-वचन का, प्रत्यक्ष कही हुई बात का प्रायः उलटा भाव ही सत्य होता है।

भारतीय जीवन और संस्कृति में इस 'मुस्लिम सहायता'—मुस्लिम योगदान—का प्रश्न लो। जबौसीनिया से अफ़गानिस्तान तक के अधिकारित, निरस्तर बर्बरों द्वारा, हजार वर्षों में किये गये बलात्कार और लूट-पाट, आतंक और यातनाएँ क्या 'योगदान' हैं? अथवा 'बैर-साधन' हैं? ऐसे ख्यानक योगदान से छुटकारा प्राप्त करने के लिए भारत को जो भी कीमत चुकानी पड़े, चुकाएंगा। हमें ऐसे योगदान की कोई आवश्यकता नहीं, अपितु हम उसे समाज करना चाहते हैं।

आहए, हम प्रायः सिद्धान्त के रूप में ही प्रस्तुत किए जाने वाले एक अन्य प्रश्न पर भी विचार करें कि क्या भारतीय इतिहास का कोई मुस्लिम दृष्टिकोण ही सकता है अथवा होना चाहिये? हिन्दुस्तान के इतिहास का मुस्लिम दृष्टिकोण न तो कोई हो सकता है और न ही कोई होना चाहिये। भारतीय इतिहास के मुस्लिम दृष्टिकोण की चर्चा करना उतना ही व्यथा, बेहदा है जितना कोमिशन विचित्र संयुक्त राज्य का इतिहास अमेरिका में

पढ़ाना, हिटलर द्वारा लिखित इंग्लैंड के इतिहास को शेट बिटेन में निर्धारित करना और जर्मन लोगों को स्टालिन की लिखी हुई जर्मनी के इतिहास की पुस्तक पढ़ाना। यदि चिकित्सक भी बृक को भी मेमना और लास्टिक-चिकित्सा करने के लिए सौप दिये जाएं, तो स्था ने परवतों की गोरी-रचना करनियों से मात्र इसलिए नहीं देखेंगे कि कब इनको जल्दी-जल्दी निगल लिया जाय !

मैं यहाँ पर इस्लाम अथवा किसी मुस्लिम की बात न करके इतिहास के प्रति मुस्लिम दृष्टिकोण की चर्चा कर रहा हूँ। दृष्टान्त के रूप में, मैं कहूँगा कि भारत (हिन्दुस्थान) का इतिहास लिखने के लिए अंग्रेज-मुस्लिम छाप व सुकाव वाले भ्रामक भारतीय विद्या भवन छाप के अन्तर्गत लिखने वाले किसी सरकार अथवा मजूमदार की अपेक्षा, मैं कलकत्ता के डॉक्टर जीलानी जैसे अरब-मुस्लिम को अधिक सक्षम मानकर विश्वास करूँगा।

इतिहास विदेशी शासन की दीर्घावधि में तोड़-मरोड़ दिया जाता है क्योंकि देशवासियों के मूँह बन्द रखे जाते हैं और वे गूँगे हो जाते हैं, तथा विदेशी शासक अपनी अधीनस्व जनता पर मनमङ्गल इतिहास घोग देते हैं। फिर, सम्पूर्ण प्रशासनिक एवं शैक्षिक तन्त्र-व्यवस्था उस विलुप्ति इतिहास के माध्यम से परतन्त्र समाज का मानस दिग्भ्रमित करने में लगा दी जाती है। विद्यालयों, महाविद्यालयों अथवा प्रतिस्पर्धात्मक नियुक्ति परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र इस तथ्य का विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। प्रश्न, प्रायः, अधिकांश रूप में सिफ़े किसी शेरखाह, फ़िरोजशाह, अकबर, औरंगज़ेब, बलाहक, बैटिन्क अथवा वारेन हेस्टिंग्स से ही सम्बन्धित होते हैं। जिस देश में हजारों वर्षों से करोड़ों हिन्दू निवास करते हों, वहाँ प्रायः सभी इतिहास-प्रश्नों का मात्र विदेशियों से ही सम्बन्धित रहना बीमत्स रूप में हृदय दहलाने वाली बात है। ऐसी बात अन्यत्र सुनी नहीं जाती। इससे भी अधिक हुआ दायी घटना यह है कि यह ग्रैक्शन चुद्धि-विपरीतता आज भी चल रही है परंतु हमें स्वाधीन हुए चौथा दशक चल रहा है। इस मनोवृत्ति ने हमारे प्रणालीकों के दिमागों को भी ग्रसित और अपेक्षा कर दिया है—यह इसी तथ्य से प्रत्यक्ष है कि वे इस देश को हिन्दुस्थान और उसके परम्परागत भगवा द्वंज को देश का राष्ट्र-ध्वज सरकारी रूप से प्रोत्तित करने में कैफ़ारी

बनुभव करने लगते हैं। यह सब प्रदर्शित करता है कि हमारे ऐतिहासिक अहम् जी गदंत में विदेशी आधिकत्व का कितना भारी पत्थर चारों ओर लटका हुआ है।

भारतीय परीक्षकों को मुख्य रूप से राणा प्रताप और शिवाजी के बारे में, भराठ-शक्ति व सिक्खों तथा राजस्थान और नेपाल के अनेक शासकों के उदय के बारे में ही प्रश्न पूछने चाहिये। मुस्लिम शासकों के सम्बन्ध में, वही इमानदारी से, प्रत्येक द्वारा किए गए अत्याचारों, जनता को दिये गये अर्थ-दण्ड-प्रकारों, और धर्म-परिवर्तन के लिए उपयुक्त भीषण बातें जो बातों के बारे में ही प्रश्न पूछे जाने चाहिये। क्योंकि, यही वह बात है जो उनमें से प्रत्येक ने, चाहे वे आदिलशाह या कुतुबशाह हों, वहसनी, गुजराती मुलतान या दिल्ली के मुगल शासक हों, की है। किन्तु ऐसा कुछ न करके, उनके कुकर्मों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है मानो गुलाम के फूल हिन्दुस्थान को अत्यन्त उदारतापूर्वक भेट किये गये हों।

विदेशी मुस्लिमों द्वारा पिछले हजार वर्षों तक ऐसा विकृत इतिहास प्रचारित-प्रसारित किया जाना सहज, स्वाभाविक ही था। ब्रिटिश शासन के सौ वर्षों में ऐसे विकृत इतिहास का जारी रखना भी समझा जा सकता है क्योंकि अनिच्छुक तीसरे पक्ष के रूप में उनमें वह अन्तर्भविता, प्रेरणा विचारन नहीं थी जिससे प्रचलित इतिहास का प्रस्तुतीकरण अथवा प्रशिक्षण बहुत अधिक मात्रा में बदला जाता। क्योंकि वे भी विदेशी थे, इसलिए उन्होंने भी विछुति और तोड़-मरोड़ में अपना दमड़ी भर योगदान कर दिया। इस प्रकार, एक के बाद एक, दो विदेशी शासनों के अधीन होने पर, हिन्दुस्थान ने अपनी ऐतिहासिक दृष्टि को एक तो मुस्लिम-मोतियाविन्द से और दूसरे ब्रिटिश भगेपन से दूषित कर लिया है। इन दोनों का घोर जालयोगचार करने से ही हिन्दुस्थान का इतिहासरूपी नेत्र सामान्य दृष्टि, व्योति को प्राप्त कर पायेगा।

पूर्ण निष्पालता से कहा जा सकता है कि ब्रिटिश लोग काफी सम्भव थे। उनकी ग्रासन-प्रणाली में बलात् शील-मंग और लूटपाट को कभी नहीं अपनाया गया। इतिहास को उन्होंने बोड़ा-बहुत मात्र राजनीतिक आवश्यकता-बश उल्टा-मुल्टा ही सकारा है, किन्तु कभी भी कटूता और आन्तरिक,

अन्धाधृन्ध धार्मिक वैमनस्य के कारण नहीं। अन्वेषकों के रूप में, उन्होंने मुस्लिम तिथिवृत्तों में तोड़-मरोड़ और विसंगतियों को खोज निकालने का ईमानदारी से यत्न किया। अफगानों, अरबों, ईरानियों, कज़कों, उज़बेकों, तुक़रों और अबीसीनियनों द्वारा लिखित उन हजारों तिथिवृत्तों का पर्याप्त निष्पक्ष विवेचन का उदाहरण स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट के अष्ट-खण्डीय अध्ययन में मिलता है। इसके प्रावक्षयन में उन्होंने ठीक ही पर्यवेक्षण किया है कि भारत में मुस्लिम-युग का इतिहास "एक निलंज और जान-बूझकर किया हुआ धोखा है।"

किन्तु महान् सूक्ष्म दृष्टि के होते हुए भी सर एच० एम० इलियट एक घोर चूक करने के दोषी हैं। वह कदाचित् अवश्यम्भावी या क्योंकि उनका मस्तिष्क व हृदय विदेशी ही थे। उन्होंने अपने अष्ट-खण्डीय अध्ययन का शीर्षक रखा है—'भारत के अपने ही इतिहास-लेखक द्वारा लिखित भारत का इतिहास।' वह वही भारी चूक है क्योंकि किसी भी प्रकार विचार करने पर शम्से-शीराज अफीक, बदायूनी, खफीखान, फरिता, अबुल क़ज़ल, बाबर, जहाँगीर, गुलबदन बेगम और तैमूरलंग जैसे लेखकों को भारतीय नहीं कहा जा सकता। वे प्रत्येक प्रकार से न केवल विदेशी थे, अपितु उनके हृदय में हिन्दुस्थान व हिन्दुत्व के प्रति घोर युद्धा थी। इन लेखकोंने स्वयं को कभी भारतीय माना ही नहीं। वे तो सदैव अरब, अफगान, तुक़र, फारसी या अबीसीनियन कहलाने में गर्व अनुभव करते थे। इतना ही नहीं, वे हिन्दुस्थान के लोगों को सदैव 'चोर, लुटेरे, डाकू, बदमाश, काकिर, गुलाम, पाजी, कुत्ता, रंडी, और नाचने वाली' के भड़े नामों से ही सम्बोधित करते रहे। अभी कुछ समय पूर्व जब पाकिस्तान के भूड़ों ने भारतीयों को 'कुत्ता' कहकर पुकारा था, तब उसने मात्र वही शब्दावली दोहरायी थी जो उसे हिन्दुस्थान के मुस्लिम तिथिवृत्तों में प्रत्येक स्थान पर लिखी हुई मिली थी। अतः, बास्तव में तो उन तिथिवृत्तों को 'भारत के अपने ही इतिहास-लेखकों द्वारा लिखित भारत का इतिहास' ही मानना चाहिये। प्रसंगवश, यही बात ब्रिटिश दृष्टिकोण से लिखी गई इतिहास-पुस्तकों पर भी प्रयोज्य है, यद्यपि अधिक सम्भव होने के कारण वे इतनी युरी

अथवा मूढ़ी नहीं है। किन्तु यदि हम ब्रिटिश अधिकारी के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों को स्पर्श करें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा कि परीक्षाओं के प्रश्न-पत्रों में इस वैष्णव के सुशारों अथवा उस कानूनवालिस की जीतों के लिए ही चर्चा की होती है। वे लासानी से बारेन हेस्टिंग्स के अत्याचारों को अथवा कलाइव की विज्ञासाधारी घटनाओं को कम कर देते हैं।

किन्तु स्पष्ट है कि मुस्लिम तिथिवृत्तों द्वारा पहुँचायी गयी क्षति अधिकारी की होती जा रही है, क्योंकि यह हजार वर्षों में की गई थी और क्योंकि हिन्दुस्थान इस्लामी कलमबन्ध से अभी भी बोझिल चला जा रहा है। जिस लेखन-नीली पर मुस्लिम-दिमाग पुष्ट और हिन्दू-मानस अपंग और निरादरित हुआ है, उसका उदाहरण किसी भी मध्यकालीन तिथिवृत्त से प्रस्तुत किया जा सकता है। बदायूनी ने पर्यवेक्षण किया है—“हिजरी सन् ६८८ में, राजा टोडरमल और राजा भगवानदास, जो पीछे लाहौर में ही रह गए थे, जल्दी से तरकारास और बन्धणाधर पहुँच गये (अर्थात् भर गये), तथा मंदसे निजले गड्ढे में जाकर सांपों और विच्छुओं का भोजन हो गये। अल्लाह ने दोनों को खूब चोट पहुँचाए।” (मुंतखाबूत तवारीख) के अधार पर।

संक्षेप के कारण, जब मैं भारतीय इतिहास के कुछ विशिष्ट विषयासि प्रस्तुत करूँगा। मुस्लिम शासक, निरपवाद रूप में, यद्यपि कूर-मम्भोगी रहे हैं, तथापि उनको न्यायप्रिय, दयालु, ज्ञान-संरक्षक आदि के रूप में चिह्नित किया गया है। इस तथ्य की जलीभाति परख, “कौन कहता है अकबर नहान् या?”—कीर्तन पुस्तक से की जा सकती है। मुस्लिम शासकों ने किसी भवन, किले, पुल, मकान, नहर, मकबरे अथवा मस्जिद को नहीं बनवाया। वे सब हिन्दू-संरचनाएँ हैं। “ताजमहल हिन्दू राजमहल है”, “आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है”, तथा “फलहमुर सीकरी हिन्दू भवन है” कीर्तन के पुस्तकों में यह तथ्य मिठ लिया जा रहा है। किसी भवन को बनाना तो दूर, मुस्लिमों ने हिन्दू भवनों को विनष्ट किया और क्षति पहुँचायी। अतः मध्यकालीन ऐतिहासिक भवनों के दर्शनायियों को एक मार्गदर्शक निदान समरक रखना चाहिये कि भवस्त संरचना हिन्दू है, और विष्वास मुस्लिम। यदि इन तथाकथित मुफ्ती ‘सन्तों’ की जीवनियों की

सूफ़म-मीमांसा को जाये, तो ज्ञात होगा कि भारतीय जीवन और संस्कृति का गला घोटने के लिए वे शासक बिदेशी इस्लामी घमाँमादी जनता के साथ संसी काकाम कर रहे थे। देखिये, सलीम चिन्ही के बारे में बदायूनी क्या लिखता है (बदायूनी की तवारीख—चूंठ ॥, पृष्ठ ११३) —“परम पुनीत शेख ने बादशाह (अकबर) को अपने सभी निजी भागों में प्रवेश की अनुमति दे दी थी, और उसके पुत्रों व भतीजों ने चाहे कितना ही कहा कि ‘हमारी पत्नियाँ हमसे विमुख, पृथक् होती जा रही हैं,’ शेख का उत्तर यही था कि ‘संसार में औरतों की कमी नहीं है। चूंकि मैंने तुम लोगों को अमीर बनाया है, अन्य पत्नियाँ कर लो, क्या फँक पड़ता है?’” मनसरेट कहता है कि, “शेख मुसलमानों की सभी दुष्टताओं और अशोभनीय दुराचरण से कलंकित था।” यह सम्पूर्ण साक्ष्य उच्छृंखल मुस्लिम साम्राज्यिकता की हजार-वर्षीय अधिकारी में सावधानीपूर्वक दबाकर, छुपाया गया है। (शाहजहाँ जैसे के) स्वर्ण युगों के कथनायह और शान्तिप्रिय शासनों की कहानियाँ सफेद झूठ हैं। शाहजहाँ का माव २१ वर्षीय शासनकाल ४८ युद्ध-अभियानों से भरा पड़ा था; उसने सभी हिन्दू मन्दिर छवस्त किये, अपने सभी प्रतिहन्दियों को कत्तल किला, और एक भी भवन का निर्माण नहीं किया। क्या ऐसा शासन स्वर्णिम होता है? फ़िरोजाबाद, तुगलकाबाद, अहमदाबाद और हैदराबाद जैसे नगरों का निर्माण-थ्रेय इस या उस सुलतान को दे दिया गया है, यद्यपि वे प्राचीन हिन्दू नगर ही हैं। उसका निर्माण-थ्रेय फ़िरोजाबाद अथवा अहमदशाह को देने का अर्थ यह है कि अल्लाहबाद की स्थापना तो स्वयं अल्लाह ने ही की हीगो। हजार वर्षों तक अधीनस्थ हिन्दुस्थान पर मुस्लिम साम्राज्यिकता की प्रचण्डता ने सभी साक्षोंको विनष्ट अथवा दबा दिया है, और सच्चे इतिहास के स्थान पर झूठ, जाती वर्णन प्रस्तुत कर दिये हैं। अनेक बार झूठे भवन-निर्माण के दावे प्रस्तुत करने के ऊल-जलूल, मनथड़न्त कहानियाँ पेश कर दी जाती हैं; यथा सिकन्दर लोधी को एक मोठ का दाना मिला—उसने बजीर को दिया कि मस्जिद बना सौ। इस-लिए मस्जिद मोठ नाम पड़ गया—आदि। विश्व का इतिहास—समाज ऐसी परते दर्जे की बेहूदगी को विश्व इतिहास के रूप में स्वीकार करे—इसी तथ्य से विश्व-इतिहास के मानस को हुई थीर जाति का अनुसान

मगाया जा सकता है। भारत सामर्थ्यवान् राष्ट्र तभी बन सकता है जब विगत १२३५ वर्षों के साम्राज्यिक—हेरफेर को इतिहास से बाहर निकाल देंके। यह तभी समझ होगा जब हिन्दुत्व अपनी ही भूमि में अपनी प्रभुसत्ता प्रदर्शित करने का विषय करेगा। 'हिन्दू साम्राज्यिकता' शब्द विदेशी मुस्लिम शासनकाल में बढ़ा गया था और विदेशी लिटिया शासनकाल में इसे और भी पड़ा कर दिया गया था। हिन्दुस्थान में मुस्लिम, इसाई अद्वा अन्य कोई साम्राज्यिकता ही सकती है, जबकि हिन्दुत्व तो राष्ट्रवाद के अतिरिक्त अन्य कुछ ही नहीं। इस तथ्य को जितनी जल्दी समझा और अवहार में लाया जायेगा, भारतीय इतिहास पर उपर्युक्त राष्ट्रीय एवं सन्तराष्ट्रीय ज्ञान आकर्षित करने के लिए उतना ही श्रेष्ठस्कर होगा।

: ३ :

इतिहास की परिभाषा और उसका अभिप्राय

किसी भी विषय का अध्ययन करने से पूर्व, श्रेयस्कर कार्य यही है कि उस विषय की परिभाषा और उसका अभिप्राय पाठक के समझ पूर्णतया स्पष्ट हो।

यदि व्यक्ति अध्ययन-गत विषय की परिभाषा के सम्बन्ध में सुन्दर विचार नहीं रखता है, तो सम्भावना है कि वह असंगत, निरर्थक वार्ता से ही इधर-उधर भटक जाए। यदि व्यक्ति विषय-विशेष के अभिप्राय के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार नहीं रखता हो, तो सम्भावना है कि व्यक्ति या तो उस विषय के किसी अंश या भाग तक ही सीमित रहेगा अबदा। उस विषय की उचित सीमाओं का भी उल्लंघन कर जाएगा। दोनों ही स्थितियों में, ऐसा व्यक्ति अपने विषय के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाएगा।

अतएव, आइए, हम सर्वप्रथम यह परिभाषा करें कि इतिहास क्या है। पश्चिमी भाषाओं में (इतिहास का पर्यायवाची) 'हिस्ट्री' शब्द ग्रीक भाषा के 'हिस्टोरिया' शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'जाँच-पड़ताल' है। यह प्रत्यक्षतः अतिभ्रामक धारु है क्योंकि ज्ञान की प्रत्येक भाषा के लिए ही यह 'जाँच-पड़ताल' सामान्य वात है। तथ्य तो यह है कि जबसे किसी भी जिन् का जन्म होता है, तबसे वह सदैव जिजामु होता है और अपने चारों ओर दिखने वाले संसार की बहुत सारी वार्ता के बारे में जानने को ज़रुर रहता है, किन्तु उस कारण यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह जिस उस विषय से इतिहास का अध्ययन कर रहा है, स्वयं किसी इतिहास की जिज्ञा पा रहा है। जतः, मात्र पश्चिमी शब्द 'हिस्ट्री' के शब्द-व्युत्पत्तिभास्त्र के अनुसार अर्थ का ज्ञान मात्र रखने वाले व्यक्ति को तो यह ज्ञान ही नहीं

सकता कि शब्द 'हिस्ट्री' वास्तव में क्या चिन्ह, अवस्था, ज्ञान प्रस्तुत करता है।

इसके विषयीत, 'हिस्ट्री' के लिए ही प्रयुक्त संस्कृत शब्द—इतिहास—अधिक प्रबोधक, ज्ञान प्रस्तुतकारक है। इतना ही नहीं, हम यहाँ तक कह सकते हैं कि 'हिस्ट्री' जो भी कुछ है, वह भी 'इतिहास' शब्द की परिपूर्ण परिभाषा में सन्तुष्ट है। उसमें तीन शब्दांशों का समूह एकत्र है। 'इति' का अर्थ 'ऐसा-ऐसा' अर्थात् 'अमुक घटना या बात का होना' है। 'हा' का देख के भूलकाल का संक्षिप्त और सम्पूर्ण लेखा होता है, इसलिए यह सत्ताधिकार, पद तक ही स्वयं सीमित रह पाता है। इतिहास में सदैव उन्हीं का वर्णन होता है जो शक्ति-सम्पन्न होते हैं। मध्यकालीन युगों में शासक-गण ही वे व्यक्ति थे जिनके पास सामान्यतः शक्ति हस्तगत होती थी। कई बार, जब किसी राजा के स्थान पर एक या अधिक दरबारी लोग अधिक शक्ति-सम्पन्न हो जाते थे, तब इतिहास का केन्द्र-विन्दु भी सम्राट् के स्थान से हटकर शक्ति-सम्पन्न दरबारी व्यक्ति पर चला जाता था। इंग्लैंड में जब जने:-जने: एक राजाधिकार की शक्ति समाप्त होने लगी, तब इंग्लैंड के इतिहास ने भी अपना केन्द्र-विन्दु एकाधिपत्य से हटाकर ब्रिटिश संसद और लोकप्रिय रूप में निर्वाचित मन्त्रिमण्डल में स्थापित कर लिया। रूप में जब जार लोग सर्वहारा वर्ग के सम्मुख सत्ता में परास्त हो गये, तब रूपी इतिहास ने अपना सम्बन्ध साम्बन्धादी दल और सम्पूर्ण सत्ता का पूर्ण उपभोग करने वाले इसके शक्तिशाली नेताओं से स्थापित कर लिया।

इन सभी उपर्युक्त उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रीय इतिहासों को सत्ता के आसनों अथवा केन्द्रों के संक्षिप्त, संसक्त और सुसंगत रूपों होने पड़ते हैं। ऐसी सत्ता किसी अधिनायक अथवा सम्राट् के रूप में एक व्यक्ति में, अथवा लोकप्रिय निर्वाचित मन्त्रि-परिषद् के नाम से पुकारे जाने वाले कुछ अण्णी व्यक्तियों के समूह में, अथवा संनिक अधिकारियों के एक वर्ग या कुछ प्रभावी नागरिकों के वर्ग अथवा एक राष्ट्रीय सभा में केन्द्रित हो सकती है। जिस अनुपात में सत्ता एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र में स्थापित होती है, इतिहास भी स्वतः उसी अनुपात में एक स्थान से दूसरे स्थान में केन्द्रित हो जाता है।

अतः, मैं जब लोगों को यह शिकायत करते हुए पाता हूँ कि मध्यकालीन इतिहास-ग्रन्थों में, उदाहरण के लिए देखें तो, केवल राजाओं और युद्धों अथवा मात्र दरबार-स्थित कुछ शक्तिशाली गुटों की ही चर्चा की गई है—और न कि सामान्य जनता की, तब मैं अनुभव करता हूँ कि उनकी शिकायत अयुक्तियुक्त, अनुचित है। जैसाकि वे लोग सामान्य रूप में घोषित करते रहते हैं—यदि वे भी ऐसे इतिहास-ग्रन्थों की रचना करने का अर्थ 'निश्चयपूर्वक' है, और 'आस' का मन्तव्य 'घटित' है। भूतकाल में जो भी कुछ निश्चयपूर्वक हुआ—कहा जा सकता हो, वही 'इतिहास' है। इस प्रकार, इतिहास की परिभाषा 'विगतकालीन घटनाओं के तथ्यात्मक और तिथिक्रमानुसार वर्णन' के रूप में की जा सकती है।

हम, इस प्रकार, किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था अथवा वस्तु अथवा देश का इतिहास रख सकते हैं—अर्थात् उसके ग्राम्यभ से आद्यतन की उसकी जीवन-गाथा का संग्रह कर सकते हैं। हमें स्मरण होगा कि यथार्थ रूप में यही वह बात है जो हम इतिहास से वास्तव में समझते भी हैं।

चूंकि किसी भी देश का निर्माण, उसका अस्तित्व असंख्य व्यक्तियों और संस्थाओं से होता है, इसलिए स्वाभाविक—सहज-प्राकृतिक बात है कि उस देश के इतिहास में इसके सभी व्यक्तियों और संस्थाओं का इतिहास सम्मिलित ही रहेगा। किन्तु प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट ही है कि इस प्रकार का कोई भी इतिहास अत्यन्त विश्वाल आकार के कारण अति कठ्ठसाध्य, बोझिल और अव्यवहार्य हो जाएगा। साथ ही यह अरोचक और अनुपमोगी भी हो जाएगा। लाखों-लाखों साधारण व्यक्तियों की दैनन्दिन अवृचिपूर्ण दिनचर्या का संकलन किया जाना भी कठिन होगा अथवा राष्ट्रीय विनां और संगत वर्णन में ठीक बैठना भी एक समस्या हो सकती है।

इस सम्पूर्ण कार्य में तो कॉट-छाट की भारी आवश्यकता होगी। किन प्रश्न यह होता है कि हम कमी-वेणी कहा करें? किन, हम चयन और संग्रह का कार्य कैसे करें? इस प्रश्न का उत्तर भी हमें प्राप्त हो सकता है यदि हम उन राष्ट्रीय इतिहासों को सम्यक दृष्टि से देखें, जिनका समरूप विचार जैखन और अध्ययन-अध्यापन होता है।

यदि हम मध्यकालीन युगों के इतिहासों का अध्ययन करें, तो हम देखते

है कि उनमें राजाओं और युद्धों का ही उल्लेख किया गया है। यदि हम १०वीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड और अमरीका जैसे देशों के इतिहासों का अध्ययन करें, तो हम पाते हैं कि उनमें मुख्यतः उनकी राष्ट्रीय समझों और लोकप्रिय मन्त्र-परिषदों के कारनामों के बारे में ही वर्णन किया गया है। सन् १६१७ ई० के परबर्ती-युग के व्सी-इतिहास में अधिकांशतः सर्वहारा-वर्ग की ओर अखण्डत साम्यवादी दल की ही चर्चा की गई है। इसमें हमें यह सूच प्राप्त होता है कि चूंकि इतिहास किसी भी यत्न करें जिसमें उन प्राचीन लोगों के सामान्य लोगों के जीवन पर प्रकाश डाला जाय, तो वे स्वयं को अत्यन्त असहायावस्था में प्राप्त ऐसा व्यक्ति पाएंगे जो उज्जालों और उनके दरबारियों के कामों का ही वर्णन करने में व्यस्त हो। यह स्थिति अ-परियाज्य है। राष्ट्रीय इतिहास-ग्रन्थ सत्ता के केन्द्रों के अतिरिक्त अन्य कोई वर्णन नहीं हैं, और यदि कोई इतिहास-लेखक किसी भी युग का इतिहास लिखने को उच्चत होता है, तो चाहे उसकी राजनीतिक विचारधारा जो भी क्यों न हो, उसे उन्हीं लोगों के कार्य-कलापों तक ही सीमित रहना पड़ेगा जिनके पास तत्कालीन काल-खण्ड में राष्ट्रीय शक्ति का केन्द्र था। यह अन्य प्रकार हो ही नहीं सकता। अतः इस बात से किसी की भावना को ठेज नहीं पहुँचनी चाहिये कि मध्यकालीन इतिहास-ग्रन्थों में नामान्यतः राजाओं और दरबारियों अथवा युद्धों-मात्र का ही उल्लेख किया गया है। हिटलर के बर्मनी देश अथवा स्टालिन के रूप देश के इतिहास को मुख्यतः इन्हीं दो अधिनायकों, तानाशाहों के इदं-गिदं घूमते रहना पड़ेगा— चाहे अन्य कारण न भी हों, तो मात्र इसीलिए कि अन्य लोगों का कोई विशेष अस्तित्व नहीं या अथवा राष्ट्रीय भाष्य-निर्माण करने में अन्य लोग कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके। इस प्रकार, राष्ट्रीय इतिहास-ग्रन्थ मुख्यतः उन्हीं लोगों के इदं-गिदं घूमते रहते हैं जो राष्ट्र का भवितव्य-निरूपण करते हैं, चाहे वह एक व्यक्ति हो अथवा एक वर्ग या समूह, अथवा एक विधान-मण्डल।

चूंकि हम एक राष्ट्रीय इतिहास-ग्रन्थ में उस सबका उल्लेख नहीं कर सकते जो कोई भी ऐरा-ऐरा नत्य बैरा अपने जीवन के क्षण-क्षण में करता रहता है, इसलिए हमें वह वर्णन उन्हीं लोगों तक सीमित रहना पड़ता है

जो सत्ता-सम्पन्न, शक्तिशाली होते हैं। किन्तु चाहे कुछ भी हो, सत्ताधारियों से सम्बन्धित कारनामों की चर्चा करते समय भी इतिहास में ठीक उसी प्रकार सत्य का, पूर्ण सत्य का और केवल सत्य का ही उल्लेख होता चाहिये जिस प्रकार विधि-न्यायालय में साक्षियों के रूप में विद्यमान व्यक्तियों को अपश्युर्वक कहना पड़ता है। अपना नाम सार्थक करने वाला यथार्थ इतिहास किसी वर्ग-विशेष के हितों अथवा उसकी मार्गों के लिए उसको प्रसन्न करने हेतु तथ्यों को कभी दबाएगा नहीं, उनमें भिलावट करेगा नहीं और उनकी देखी-अनदेखी भी करेगा नहीं।

ऐतिहासिक वर्णनों में प्रयुक्त भाषा भी महत्वपूर्ण है। उस प्रयुक्त भाषा से किसी भी दी हुई स्थिति की सम्पूर्ण मनोवेदना सम्मुख प्रस्तुत हो जानी चाहिये। जिस प्रकार किसी रंगमंच के नाटक में हम आशा करते हैं कि प्रत्येक अभिनेता अपने विशिष्ट अभिनय के अनुकूल ही अपने वार्तालाप का स्वर साधकर बातचीत करेगा, अथवा जब कोई व्यक्ति किसी घटना का उल्लेख करते समय उस घटना के अंश के अनुसार ही अपना स्वर धीमा या तेज करता है, तब—उसी प्रकार, एक इतिहासकार को भी एक कूरकर्म का वर्णन सख्त भाषा में करना चाहिये। इसी प्रकार, कला के सम्बन्ध में मृदु-भाषा में और सुन्दर-वाणी में उल्लेख करना चाहिये। इसी प्रकार, घटना-क्रम के अनुसार वर्णन-क्रम परिवर्तित होता जाना चाहिये। चूंकि इतिहास एक वर्णनात्मक और तथ्यात्मक साहित्य है, इसलिए इसकी भाषा में सभी साहित्यिक गुण होने चाहिये। इतना ही नहीं, किसी ओर, वीभत्स अपराध की निन्दा करते समय जिस प्रकार एक न्यायाधीश अपने निर्णय में कठोर भाषा का प्रयोग करता है, अथवा असहाय महिलाओं, बच्चों या कंगालों की दुर्दशा का वर्णन करते समय दंयापूर्ण शब्दों, स्लेह-सिल, अशु-स्त्रियां वाक्यों का उपयोग करता है, उसी प्रकार यदि कोई इतिहास-लेखक घटनाओं के उपयुक्त अपनी भाषा को निष्पित नहीं कर पाता, तो वह एक सच्चा इतिहासकार नहीं है।

प्रसंगानुकूल इससे हमें यह अनुभूति हो जाती है कि इतिहास का वर्ण-करण अवश्य ही साहित्य की शैली में किया जाना चाहिये। सामान्य बूनि, क्रम-से-क्रम समकालीन भारत में तो यही है कि मात्र कवियों, लघु-कथा-

लेखकों, नाटककारों, और उपन्यासकारों तथा कदाचित् कर्मी-कभी निवन्ध-
कारों को ही साहित्यकारों की श्रेणी में गिना जाए। यह तो एक प्रकार से
‘साहित्य’ के विस्तार को संकुचित, सीमित करना है। किसी भी पुरातत्त्वीय
उत्तरान अथवा किसी विशेष प्रलेख की व्याख्या से सम्बन्धित तकनीकी
जटिलताओं वाले ऐतिहासिक विवरणों को चाहे ‘साहित्य’ की श्रेणी में न
भी गिना जाए, तथापि सामान्य इतिहास-ग्रन्थों को तो साहित्य की एक अति
भी गिना जाए, तथापि सामान्य इतिहास-ग्रन्थों को तो साहित्य की एक अति
महत्त्वपूर्ण शाखा हीनी चाहिये। यही सिद्धान्त ज्ञान की अन्य शाखाओं को
भी प्रयोग्य होना चाहिये। इस प्रकार, जब गेलिलियो ने यह स्पष्ट किया
कि पृथ्वी गोलाकार क्यों है अथवा द्वी अ-समान भार वाले पदार्थ समान
ऊंचाई से नीचे गिराए जाने पर भूमि पर एकसाथ क्यों पहुँचते हैं—तब
उसका यह ज्ञान-प्रकाशन, प्रसारण साहित्य था, चाहे उसकी परवर्ती उप-
निविद्याएँ ही जटिल वैज्ञानिक खोजों का आधार बनी हों। औसत दर्जे की
शिक्षा प्राप्त मनुष्य की बुद्धि में जो कुछ सहज पैंठ सकता है, वह साहित्य
है। इतिहास इस परख पर खरा उत्तरता है। औसत दर्जे की शिक्षा प्राप्त
किया हुआ व्यक्ति इतिहास में रुचि अनुभव करता है, और इसको ग्रहण
करने में सक्षम है।

इतिहास की परिभाषा और उसके विस्तार तथा इतिहास की भाषा के
सम्बन्ध में हम एक बार स्पष्ट कल्पना कर लें, तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है
कि इतिहास-लेखकों को, और सामान्यतः शिक्षा-शास्त्रियों को किसी भी
प्रकार इतिहास को अवधीत करने, मिलावटी-रूप प्रस्तुत करने, अथवा
उसको ताङ्के-मरीङ्ने हेतु राजनीतिज्ञों, सम्प्रदायवादियों अथवा धर्मान्धि-
लोगों का हस्तक्षेप सहन नहीं करना चाहिये। अतः, इतिहास की अन्तिम
रूप में परिभाषा यह की जा सकती है कि यह भिन्न-भिन्न समयों पर किसी
देश की राष्ट्रीय-नात्तान्वित का उपभोग करने वाले व्यक्तियों के विगत
कागजानी का प्रभावी भाषा में बताया गया एक तथ्यात्मक और तिथिकमा-
नुसार वर्णन है। यह इससे अधिक और इससे कम कुछ भी नहीं होना
चाहिये। इसले सच्चे इतिहासकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह सत्य
बात को कह सकने का साहस बटोरे, और एक आक्रमणकारी को आक्रमण-
कारी तथा दुराचारी को दुराचारी कहे—ऐसा करते समय इस बात की
परवाह करने की ओर आवश्यकता नहीं कि वह अपने कम्मों को उचित
छहराने के लिए किस धर्म की दुहाई देता है।

: ४ :

इतिहासलेखकों ने किस प्रकार जनता को धोखा दिया है !

ज्ञान की अन्य किसी विधा में—शाखा में जनता को इतनी अधिक
लम्बी अवधि तक और अनवरत रूप से ठगा नहीं गया है जितना भारतीय
इतिहास की विधा में।

ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा करने वाले विद्यार्थियों, सरकारी कर्म-
चारियों और पर्यटकों की पीढ़ियों को इतिहास के नाम पर मनवाड़त साहित्य
दिया जाता रहा है। इन मिथ्या बातों को जनता में प्रचारित करने वाले वे
ही व्यक्ति हैं जिनको जनता ‘इतिहास-लेखकों’ के रूप में अग्राधि प्रेम करती
रही है और अटूट विश्वास उनमें जमाए रही है। कुछ लोगों ने यह कपट-
कृत्य जानवृत्तकर किया है, कुछ ने अनजाने में किया है और कुछ लोगों ने
कायरता-दश किया है वर्योंकि उनमें जनता के समझ यह घोषित करने का
साहस नहीं था कि उन सबों को इतिहास के नाम में धोखा दिया जा रहा
था।

उदाहरण के लिए, दिल्ली में कुतुबमीनार के नाम से पुकारे जाने वाले
२३८ फुट ऊंचे स्तम्भ का मामला लीजिए। इसके मूलोद्गम के बारे में
सभी तथाकथित इतिहास-लेखक और सामान्य जनता समान रूप में अनिवित हैं,
फिर भी जनता के सम्मुख जो इतिहास-ग्रन्थ प्रस्तुत किए जाते हैं उनमें
नितान्त झूठी बातों को सत्य-कथन के रूप में साध्य प्रस्तुत किया जाता है।
कुछ लोगों का कहना है कि इसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने, जो दिल्ली पर सन्
१२०६ ई० से १२१० ई० तक राज्य-शासन करने वाला गुलाम मुल्लिम
शासक था, बनवाया था। अन्य लोग कहते हैं कि इसे ऐबक के दामाद और
उत्तराधिकारी अल्लामश ने बनवाया था। अन्य विचार यह है कि अलाउद्दीन

विलंजी ने इसे अथवा कम-से-कम इसके कुछ भाग को तो अवश्य ही बनवाया था। जौया मत यह है कि फ़िरोजशाह तुगलक ने इस स्तम्भ को अथवा इसके कुछ भाग को बनवाया होगा। पांचवाँ मत यह भी है कि उपर्युक्त जार शासकों में से एक ने अथवा एक से अधिक किन्हीं भी शासकों ने अकेले अथवा संयुक्त रूप से इस स्तम्भ का निर्माण कराया होगा।

तबसे आश्चर्यकारी तथ्य यह है कि कोई भी इतिहास-ग्रन्थ अत्यन्त निष्ठापूर्वक, सत्यता से समस्त मामला स्पष्ट नहीं करेगा और जनता को विश्वास में लेकर साझ-साझ शब्दों में यह नहीं कहेगा कि इस बात के लिए कोई आधार नहीं है कि कुतुबमीनार को कुतुबुद्दीन अथवा इल्तमश अथवा बलाउद्दीन अथवा फ़िरोजशाह अथवा इनमें से दो अथवा अधिक ने बनवाया था क्योंकि ऊपर जिन चारों मुस्लिम बादशाहों के नाम इस मीनार का निर्माण-घेय दिया है, उनमें से किसी ने भी इसके निर्माण के बारे में मौखिक अथवा लिखित दावा नहीं किया है।

प्रत्येक इतिहास में सरलतापूर्वक यही कहा जाएगा कि कुतुबमीनार को कुतुबुद्दीन अथवा इल्तमश अथवा बलाउद्दीन या फ़िरोजशाह अथवा इनमें से दो अथवा अधिक ने बनवाया था। तथाकथित सभी इतिहास-लेखक जानते हैं कि उनके कथन झूठे और निराधार हैं, क्योंकि उनमें से किसी भी चादशाह ने स्वयं यह दावा नहीं किया है कि उसने यह स्तम्भ बनवाया था। उस प्रकार के मामले में प्रत्येक ईमानदार और कर्तव्यक्षील निष्ठावान इतिहास-लेखक का यह कर्तव्य है कि वह जनता को सभी पांचों विचार दें और मायं में यह भी कह दें कि इन विचारों के लिए कोई भी प्रमाण, उपलब्ध नहीं है। फिर भी, ऐसे तथाकथित इतिहास-लेखकों में से किसी एक ने भी ऐसा बातम नहीं किया है।

इतिहास-लेखकों को स्पष्टत: इस कुतुबमीनारी-कथा में विद्यमान विसंगतियों का ज्ञान है क्योंकि अखिल मारतीय इतिहास संगठन के वार्षिक समानोह के एकान्त में उनके कुछ नाची लोग इन पराम्परागत कथनों में असंगतियों में सम्बन्धित जीवन-दर्शन पढ़ चुके हैं।

जब इतिहास-लेखकों को इस बात की जानकारी है कि कुतुबमीनार का मूलांशम विचार का विषय है, और उपर्युक्त पांच मतों में से एक के लिए

भी कोई ठोस आधार विद्यमान नहीं है, तब क्या यह उनका कर्तव्य नहीं है कि वे किसी भी निर्णायक मत की घोषणा करने से संकोच करें? क्या यह भी उनका कर्तव्य नहीं है कि वे सभी तथ्य जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दें, और फिर वे यदि स्वयं भी इच्छुक हों, तो किसी भी विशेष मत के बारे में अपनी रुचि का उल्लेख भी कर दें। किन्तु वे जब इतने महत्वपूर्ण तथ्यों को जनता से छुपाते हैं, जब इतनी आवश्यक जानकारी को जनता के सम्मुख प्रकट नहीं होते देते, तब क्या उपने पावन कर्तव्यपालन की अवहेलना करने के लिए ऐसे तथाकथित इतिहास-लेखकों को सार्वजनिक रूप में दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिये? क्या उनपर महाभियोग नहीं लगाया जाना चाहिये? जबकि जनता इतिहास-लेखकों को उनके भारी-भारी बेतन देती है, उनकी पुस्तकों के मूल्य चूकाती है, इतिहास संगठन के समारोह-सत्रों में उपस्थित होने के लिए भत्ते और अवकाश प्रदान करती है, तथा परीक्षक बनाने व विश्वविद्यालय की वरिष्ठ-सभा की सदस्यता प्रहण करने की अनुमति जेसी अन्य सुविधाएँ उनको उपलब्ध कराती हैं, तब क्या जनता को यह आशा नहीं करनी चाहिये कि उनका सिर नीचा नहीं किया जाएगा और ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी उनसे छुपाकर नहीं रखी जाएगी?

इस बात पर यह विचार प्रस्तुत किया जा सकता है कि सभी विकल्पों का उल्लेख करना असम्भाव्य होगा क्योंकि उससे प्रत्येक विषय बहुत लम्बा हो जाएगा। यह सत्यता नहीं है। मैं ऊपर प्रदर्शित कर चुका हूँ कि किस प्रकार उपर्युक्त सभी पांचों मतों को दो या तीन छोटे बादशाहों में, सम्मूल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

फिर यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि इतिहासकार से यह कहने में क्या आश्रय है कि वह सभी विभिन्न मतों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करे? इसके उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूँ कि जनता के सम्मुख सभी तथ्यों का रखा जाना अत्यधिक महत्व की बात है। इस बात के दृष्टान्त के लिए आइए हम एक उदाहरण लें। कल्पना करें कि किसी व्यक्ति ने तीसरी कक्षा तक पढ़ने के बाद पांचिक अध्ययन समाप्त कर दिया है। हम यह भी कल्पना करें कि उसकी तीसरी की पुस्तक में कुतुबमीनार पर एक पाठ भी था। यदि उस पाठ के लेखक ने व्याजोक्तिपूर्ण स्वर में कह दिया है कि यह स्तम्भ

कुत्तुबुद्दीन द्वारा ही बनाया गया था, तो वह विद्यार्थी अपने मन में आजीवन यही काम बनाए रखेगा कि कुत्तुबुद्दीन ही उस मीनार का रचयिता, निर्माता यही था। वह वह भी नहीं जानेगा कि उसके विचार के लिए कोई भी आधार नहीं था। बाद में, बड़ि मेरे जैसा कोई अन्वेषक उस विचार पर विवाद करे, तो वह छापित इसे अत्यबहाय सिद्धान्त-वादिता की अवहेलना कहकर रद्द कर देगा और ऐसा करते हुए वह भी तकलीफ नहीं करेगा कि मैं अपने विचार के समर्थन में जो तक और साध्य दे रहा हूँ, उन्हें तो कम-से-कम एक बार वह लिया जाय। इस प्रकार, साध्य का दृष्टन राष्ट्रीय दृष्टिकोण में जन-प्रवक्ता का दुष्परिणाम होता है।

इन्हें विकार के सक्रियता का दुर्लभ रूप होता है। इस प्रकार के व्याजोक्तिपूर्ण और आधारहीन कथनों से दूसरा भयंकर कहना यह है कि यह उन युजायबों को समाप्त कर देता है जो अन्वेषण के लिए मुश्त होनी चाहिए थी। इन प्रकार, उदाहरण के लिए, यदि तीसरी वक्ता ने न्यायकोल्प न्याय तक कुतुबमीनार के सम्बन्ध में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी बारम्बार उन पाँचों भट्ठों को इस पद-टीप के साथ पढ़ते हैं कि वे पाँचों भट्ठ के बाल बगुआन होते हैं, तो अनेक जिज्ञासु व्यक्ति कुतुबमीनार के व्यास्तविक मूलोदृगम का पता लगाने के लिए तत्पर हो जाएंगे। अनेक लोग इसके इतिहास को समझ करने में अश्वा अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाश में लाने में अफल हो सकते हैं। किन्तु कुतुबमीनार के सम्बन्ध में सभी ऐतिहासिक पुस्तकों में व्याजोक्तिपूर्ण और आधारहीन कथन इतिहास में सूक्ष्म-अन्वेषण करने से प्रतिभावात अन्वेषकों को रोकते हैं। उन सब को यह लम्बा दिशा जाता है कि कुतुबमीनार का मूल तो असंदिग्ध रूप में सिद्ध किया जा सकता है, और अब उसमें किसी भी प्रकार का शोधकार्य आवश्यक नहीं है। यह योर गैंडिक ध्याति है जिसका उत्तर इतिहास-नेतृत्वकों से अवश्य ही निवा चाहिए।

किन्तु वही लकड़ा नहीं है। हमने जो कुछ कुतुबमीनार के बारे में कहा है, वही बात उन सभी भौगोलिक ऐतिहासिक नगरियों, मस्जिदों, मकानों, मिलों, अथवा शासीय भवनों, पुलों, तद्दरों और तालाबों के बारे में भी इष्टोच्च है। यिनका निर्माण-थ्रेप मुस्लिम खालिकों को दिया जाता है। तालाबहून वही ठड़ाहरान हो। इसके निर्माण की जागत ₹० लाख से

ह करोड़ रुपये तक और इसकी निर्माणावधि १० वर्ष से २२ वर्ष के बीच आंकी जाती है; इसा अफन्दी से अहमद महन्दीस, आस्ट्रेन-इ-वोरड्योक्स, जीरोनीमो बीरोनिओ अथवा बुरी तरह अब्दु बहाते हुए स्वयं शाहजहाँ में से कोई भी व्यक्ति इसका रूप-रेखांकन कार हो सकता है। इस प्रकार की घोर अनिक्षितता ताज महल के प्रत्येक विचरण की विशिष्टता है, जिसमें मृमताज की मत्यु और उसको दफ्तराने की तारीखें भी सम्मिलित हैं।

और फिर भी जैसा कुतुबमीनार के मामले में है, वैसा ही ताजमहल के बारे में भी इतिहास ने व्यावहारिक रूप से सभी तथ्य देते हुए यह एक पद-टीप जोड़ दिया है कि सभी समान रूप में निराधार और काल्पनिक हैं। भारत सरकार के पर्यटन और पुरातत्त्व विभागों के प्रकाशकों सहित सभी इतिहास-युस्तके एक ही बिना और निराधार मत प्रस्तुत करती हैं तथा यह घोषित करती है कि ताजमहल के सम्बन्ध में वही अन्तिम शब्द है। इसका दुष्परिणाम इतना भयावह है कि प्रत्येक व्यक्ति इसी धारणा को हृदयंगम किये रहता है कि ताजमहल के बारे में कोई भी अनिश्चितता नहीं है। इतना ही पर्याप्त है कि वे सब इकट्ठे होते और उन सब टिप्पणियों को मिलाते जो उनमें से प्रत्येक ने किसी भी विशेष विवरण के बारे में संग्रह की है, अथवा जो कुछ उनको पढ़ाया गया है, अथवा जो उन्होंने पढ़ा है अथवा मुना है, तो वे शीघ्र ही अनुभव कर लेते कि वे तो एक बड़े भारी कपट-जाल के शिकार हो गये हैं। यह तो ठीक वैसी ही घटना हुई है कि कोई छाविभिन्न नामों, कामों पर अलग-अलग भार से धन और वस्तुएं जमा करता फिरे। जब वह गिरफतार हो जाता है और धोखा खाए सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्र होते हैं, तभी उनको यह अनुभूति हो पाती है कि उन सभी लोगों को धोखा देने के लिए उस रुग्न ने कितनी भिन्न-भिन्न बात प्रत्येक व्यक्ति से अलग-अलग की है। यथार्थ रूप में तो वही बात भारत के प्रत्येक मध्यकालीन ऐतिहासिक भक्ति, मस्तिष्क, किन्तु और नगरी के बारे में घटित हो रही है। उनके मूल के सम्बन्ध में अनाम-शनाम कहानियाँ कहकर जनता को चुन्दू बनाया जा रहा है। मजा यह है कि ये सभी कहानियाँ एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्न हैं। यदि जनता इन्हीं सावधान मान हो कि प्रत्येक मध्य-कालीन नगरी और भवन के बारे में सभी वर्णनों का संग्रह करे, तो उसे

स्पष्ट जात हो जाएगा कि उसे किस प्रकार दुःख बनाया गया है और धोखा दिया गया है।

हम एक तीसरा दशहरण भी तेरे। वह इस भवन के बारे में है जिसे इतिहास में अकबर का मकबरा कहकर बोली बासारी जाती है। यह बागरा ने दलर में लगभग ८० लोगों की हुरी पर सिकंदरा में बना हुआ है। यह भात-जाह परिज्ञा हिन्दू राजभवन है, फिर भी इसे विनम्रतापूर्वक, निराधार त्रीयोगित किया जा रहा है कि इसका निर्माण अकबर के मकबरे के रूप में किया गया था। इतिहास-लेखकों ने जनता से यह तथ्य छुपाकर रखा है कि वहाँ भी अकबर ने अबवा उसके किसी भी दरबारी इतिहास-लेखक ने यह दाढ़ा किया है कि अकबर ने अपने जीवन-कानून में ही अपना मकबरा बनवा लिया था, फिर भी इतिहास-लेखकों का एक वर्ग है जो विनम्रतापूर्वक, निराधार और असंगत स्वर में इस भवन का निर्माण-श्रेय अकबर को देता है और कहता है कि अपनी भावी मृत्यु की आवश्यक सम्भावना-वश ही इसका निर्माण अकबर ने करा लिया था। इतिहासकारों का एक अन्य वर्ग है जो राजनीतिज्ञों के धूत, अपूर्ण और अस्पष्ट कथनों में विश्वास करके यह मत प्रकट करता है कि इस भवन का निर्माण अकबर की मृत्यु के बाद उन्होंने करवाया था। इतिहास-लेखकों का एक अन्य वर्ग भी है जो (राजनीतिज्ञों की मानि) नमझोंते की बात करता हुआ अपना मत प्रकट करता है कि इस भवन का कुछ भाग अकबर ने बनवाया था और शेष भाग उन्होंने ने। इन तीनों मतों में प्रकट किए गये विचारों के लिए वास्तव में निम्नमात्रा भी आधार नहीं है। तथा तो यह है कि मदि गूढ़ार्थ समझा जाय तो इन बातों का ध्योनी प्रमाण उपलब्ध है कि (यदि अकबर मच्चमुच्च ही उस भवन के दफनाया गड़ा है तो) वह उस पूर्वकालिक हिन्दू राजभवन में गड़ा हुआ है जिसमें वह अपनी मृत्यु के समय निवास कर रहा था।

आग्नीष इतिहास ने जूठ का वितना विश्वास अस्यार दूस दिया गया है और चोने-चाले विद्यादिलों को भाज भी विस सत्-साहित्य कहकर तोतों की भाँति विश्वासर में रखा जाता है, उसे हटाने के लिए कठोर प्रयत्न करते होने और इस कार्य में कई वर्षों का समय लग जाने की पूर्ण सम्भावना

है। वे भी अपने कम में उन्हीं रटी-रटायी झूठों को अन्य लोगों को भी पढ़ाते-सिखाते हैं।

विश्व को इस प्रकार भव्यकर रूप में धोखा देने के लिए जिम्मेदार कौन है? निश्चित रूप में इसके उत्तरदायी ये तथाकथित इतिहास-लेखक ही हैं जिनको सामान्य जनता अपनी आंखों पर बैठाती रही है और अपने प्रिय 'इतिहास-लेखकों' के रूप में अमर्यादित, अंधाधून्ध विश्वास उनमें प्रकट करती रही है। इनमें से कुछ तो जान-बूझकर, बहुत सारे जनजाने में और कुछ अन्य लोग मात्र कायरता-वश हीं इन घोर असत्यों, विकराल झूठों को प्रसारित-प्रचारित करने में सहायक रहे हैं। अब समय आ गया है कि भारतीय जनता अपना भी मत प्रकट करे और इस चलते आ रहे धोखे को रोकने के लिए जौर से आवाज करे। अब उपर्युक्त समय है, कि वे इन तथाकथित इतिहास-लेखकों से जवाब माँगें कि उन्होंने ये भूल-चूक अथवा इतिहास में विकृतियाँ क्यों होने दी हैं, अथवा क्यों जान-बूझकर उनको बिगड़ा है?

यदि हमारे गलती करने वाले इतिहास-लेखकों ने विनम्र और आधार-हीन कथन प्रस्तुत न किए होते और प्रत्येक मामले में सावधानतापूर्वक, सभी तथ्यों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया होता, तो वे दुरभि-सन्धि अथवा उपेक्षा करने के आरोप से ही न बच गये होते, अपितु उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में इतिहास के उद्देश्य की सहायता भी कर दी होती क्योंकि उसमें पाठकों की अनेक पीड़ियाँ गहनतर अन्वेषण-कार्य में प्रवृत्त हुई होतीं। अतः, विश्व को यह जात हो जाना चाहिये कि सभी मध्यकालीन ऐतिहासिक भवनों और नगरियों के सम्बन्ध में इसे भर्यकर धोखा दिया जा रहा है, इसे पवधार्ष किया गया है, और अब, इसीलिए, इस विश्व को माँग करनी चाहिये कि उन भवनों और नगरियों में से प्रत्येक के बारे में सभी तथ्य सामने लाये जाएं और उनके मूलोद्गम और निर्माण के बारे में पूरी-पूरी जाँच की जाय।

: ४ :

इतिहास का पुनर्लेखन : क्यों और कैसे ?

कुकि ज्ञानमण का सर्वप्रथम वादात इतिहास ही होता है, इसलिए ज्ञानमण की अवधि जितनी अधिक होती है, आहत—शिकार देश का इतिहास उतना ही अधिक विकृत और चिन्हित हो जाता है।

इसलिए, भारत जैसे देश का, जो विदेशी प्रभुत्व की १,२३५ वर्षीय गुलामी की दीर्घावधि बाद स्वतन्त्र हुआ, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य अपने इतिहास का पुनर्लेखन ही होना चाहिये था। यदि यह देश इस महत्वपूर्ण कार्य की उपेक्षा करता है, तो यह उपेक्षा-कार्य वह पूरा जोखिम उठाकर ही करता है तथा इस प्रकार की उपेक्षावृत्ति के दुष्परिणाम अति भयावह और विनाशक होग क्योंकि बहुत-सारे महत्वपूर्ण मामलों पर किसी भी राष्ट्र का दृष्टिकोण इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उस राष्ट्र के नागरिकों को किस प्रकार का इतिहास पढ़ाया गया है।

प्रश्नगवण चला जा सकता है कि भारत के शासकों (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दल) ने भारत का इतिहास पुनः लिखने की आवश्यकता न समझने के कारण अबवा इस बात की परवाह न करने के कारण हमारे सम्मुख एक अवलन्त और दुःखद उदाहरण इस बात का प्रस्तुत किया है कि जो देश अपने इतिहास के पुनर्लेखन की परवाह नहीं करता है वह किस प्रकार अपने पूर्व-कालिक कामको का मनोवैज्ञानिक रूप में गुलाम फिर भी बना ही चला आ रहा है।

उदाहरण के लिए, नाम से स्वतन्त्र भारत अभी भी भारतीय नागरिक सेवा (आई. एस. एन.) द्वारा नियन्त्रित प्रशासन से चिपटा हुआ है, इसमें अभी भी वह प्राचीन राजसत्त्व जारी है जिसे ब्रिटिश लोगों ने फूट डालने के लिए प्राप्त किया था, इसमें आज तक भी सभी स्तरों पर अंग्रेजी भाषा

और अंकों का उपयोग किया जा रहा है, तथा विश्व-राजनीति में अमुरक्षित राष्ट्र के रूप में उदीयमान होने के भव्य से ब्रिटिश लोगों की अंगुलि छोड़ने में दर के कारण यह अभी भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (कामनचेल्य) का एक सदस्य बना हुआ है। इसके सभी राजदूत अंग्रेजियत के शिकार हैं, इसकी सम्पूर्ण जनता प्रातःकाल सर्वप्रथम चाय और कॉफी का पान करती है, यह अभी भी अंग्रेज अथवा उसीकी भाँति दिखायी देने वाले व्यक्ति (जैसे जमीन, रूसी व्यक्ति आदि) से आणकित होती है, इस देश की सशस्त्र सेनाएँ अंग्रेजी-सिपाही की नकल करने में अभी भी गवं करती हैं, और जैसा 'नागालैण्ड' के नाम से प्रतिबिम्बित होता है, यह अभी भी अपने प्रान्तों के नाम इंगलैण्ड के अनुसरण पर रखता है। ये तो कुछ उदाहरण-मान्य हैं जिनसे सुस्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि विश्वास किया जाता है कि २०० वर्षीय पुराना ब्रिटिश राज्य शासन सन् १६४७ ई० में भारत पर से सदा के लिए समाप्त हो गया था, तथापि भारत के शासकों की मानस-तरंगों पर किस प्रकार ब्रिटेन का अभी भी अधिशासन चलता है।

किन्तु जो बात इससे भी अधिक आश्चर्यजनक, दुःखदायी और वास-दायक है, वह यह है कि अपनी पूर्वकालिक ब्रिटिश दासता के जुए को सहन करना जारी रखने में भारत के शासकों ने पूर्वकालिक मुस्लिम प्रभुत्व के ८०० वर्षीय प्राचीन गुलामी को भी रद्द नहीं किया है।

उपर्युक्त कटू सत्य का पूर्ण दिग्दर्शन हमारे प्रशासकों ने मुस्लिमों के लिए एक सामान्य नागरिक संहिता बनाने अबवा अन्य सभी नागरिकों का प्रयोग्य नागरिक संहिता से सम्बद्ध करने के लिए किसी प्रकार का पर उठाने से भयभीत होने में, उर्दू-अरबी और फारसी जैसी विदेशी भाषाओं को मान्यता व प्रोत्साहन देने की उनकी धर्मनिष्ठापूर्ण मार्गों के सम्मुख घृटने टेकने में, पाठ्यक्रमों अबवा सरकार द्वारा प्रेरित पुस्तकों में हिन्दू देवी-देवताओं के सन्दर्भ निकाल देने के लिए सहमत होने में, मुस्लिम मन्त्रियों व अधिकारियों को नियुक्त करने की विवशता अनुभव करने में, हिन्दू बहुत जनसंख्यक हिन्दू देश में इस्लामी छुट्टियाँ स्वीकार करने में, प्रकट रूप में इस्लाम-पक्षपाती सम्मेलनों में सम्मिलित होने का दबाव अनुभव प्रकट करने में, भारत के प्रति घोर शब्दों रखने पर भी तुर्की-ईरान व अरब देशों की

नीतियों के प्रति प्रशंसनी करने को बाध्य होने की भावना में, आधुनिक विश्व में उनके प्रियदेवन, धर्मान्ध-भाव और नगण्य महत्व के बाद भी उनको चायन्सी करने में, कम्पीर की मुस्लिम बहुसंख्या को दण्डबत् करने की जिज्ञासा अनुभव करने में, मुस्लिम नियम उल्लंघनकर्ताओं के विरुद्ध कोई कठोर कायंबाही करने में असहाय अवस्था का अनुभव करने में, पाकिस्तान इसकी कायंबाही करने में असहाय अवस्था का अनुभव करने में, पाकिस्तान इसकी कायंबाही करने में असहाय अवस्था का अनुभव करने में और यद्यपि भारत-विभाजन करने का अनुभव हिन्दुओं से मुस्लिमों को पूरी तरह पृथक् कर देने का ही था, यद्यपि एक पर्याप्त विश्वाल मुस्लिम जनसंख्या को अपने देश में पूर्ण आश्रय दिए रहने में हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर रखा है।

हम, इस प्रकार, साप्त देखते हैं कि कहने में पूर्णतया स्वतन्त्र होने पर भी भारत ने अपने पूर्वकालिक दोनों स्वामियों—मुस्लिमों और त्रिटियों—को सामाजिक गुलामों में स्वयं को कुरी तरह, ज्योंका-न्यों जकड़ रखा है।

इसी दासता, गुलामी के ही कारण भारत सैनिक दृष्टि से कमज़ोर और त्रिटिया दृष्टि से निराशित बना हुआ है।

बादि भारतीय प्रशासक इस प्रकार की दासता के मनोभावों से मुक्त नहीं होते, तो उन्होंने निश्चित रूप से ही सभी क्षेत्रों में विशिष्ट उन्नति की होनी और भारत की सम्मानित तस्वा ऐसा राष्ट्र बना दिया होता जिससे अप ही। अन्यरोटीय राजनीति और कृष्णनीति के विश्वाल समुद्र में अंगूल-नृम्बिन्द जंगीरों ने स्वयं को मुक्त करने और इच्छानुसार तेरने की भावना के प्रति भारत ने एक विचित्र अरुचि का प्रदर्शन ही किया है। यह कायरता गुलामी और दूसरे पर निर्भाव रहने (यो दृष्टि) की दीर्घ अवधि से उत्पन्न होती है—मार्गदर्शन और नेतृत्व के लिए विटेन, अरेबिया, तुकिस्तान और ईरान की ओर दैवते की दृष्टि के कारण उत्पन्न हुई है।

अति दीर्घकाल तक की पराधीनता भी गुलाम व्यक्ति को ऐसा बना देती है कि उसे जिन जंगीरों में बोधकर रहा जाता है वह उन्हीं को अपने जीवन का सहाय समझने लगता है। यह है तो पर्याप्त विरोधाभासी बात, ऐसे के लिए एक अंगूली काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया था और

उस कोठरी के मध्य में गाढ़े हुए एक खामों के साथ चौथी हुई एक जंगीर से उसे बांध दिया गया था। कारागार के निवास नियमानुसार ही, उसके सम्मुख एक पाल में पीने का जल और दूसरे पाल में कुछ भौजन ऐसे रखा दिया जाता था जैसे कोई पालतू जंगीर से बोधा कुत्ता हो। १५ वर्ष के बाद उस बन्दी को मुक्त कर दिया गया। वह डर्स-डर्स, आहिस्ता-आहिस्ता, अत्यन्त अवधानपूर्वक कारागार के फाटक से बाहर गया। अत्यधिक मन्द रोशनी की अध्यरूप उसकी ओरें बाहर के चमचमाते सूर्य के बकाश को देखकर चुंधिया गयों। निकटवर्ती सड़कों पर तेज़ गति से चलता हुआ यातायात उसे अत्यन्त विचित्र अनुभव होने लगा। कोई भी व्यक्ति उसको जानता हुआ अथवा उसकी परवाह करता हुआ प्रतीत नहीं हुआ। उसे प्रतीत हो रहा था कि यह सब अनि विचित्र और अनजाना समार उसके सम्मुख विद्यमान है। वह बन्दी, अब मुक्त हो जाने पर भी, अत्यन्त भयभीत अनुभव कर रहा था। उसने बाह्य-जगत् परागक नम्बो नज़र डाली, एक गहरी सीम ली और अपनी उसी पुरानी कोठरी की तरफ अचानक बहुत तेजी से दौड़ पड़ा। उसने विचित्र अपरिचित व्यापक समार में स्वतन्त्र घूमने के स्वानं पर, उसी कोठरी में कुत्ते के समान आश्रय-पूर्ण और सीमित अलित्तच को ही प्रमन्द किया। बन्दी जीवन ने उसके जीवन के प्रति आत्म-विश्वास को अकलीर दिया था, उसकी नींव बोखली कर ही थी। यही बात भारत के साथ घटित हुई है। नितान्त निराश्रयता, निराशा, हतभाष्य, और सम्पूर्ण आत्मविश्वास के अभाव की यह अनुभूति बन्दी व्यक्ति द्वारा अपना पुराना इतिहास भुला देने, और स्वतन्त्रताव मुक्त जीवन की व्यक्तियों को गंदा देने की विस्मृति का ही दुष्परिणाम थी।

अतः, यह अत्यावश्यक है कि देश के प्रत्येक नागरिक के हृदय में इनिहास की ज़िगारी को प्रश्वलित रखा जाय ताकि ऐसा न हो सके कि अपने अत्य इतिहास से अनभिज्ञ, पश्चाट-बहुसंख्या उसी जंगीर को चूमती रहे जिसने उसे बांध रखा था। यथार्थ रूप में तो भारत की बीमारी ही यह है। भारत का राष्ट्रीय स्वास्थ्य पुनः ठीक करने का एकमेव उपचार प्रत्येक नागरिक को मिलावटहीन—विश्व इतिहास पढ़ाना है। अतः, भारत की नम्बो दासता

की जब्धि में विकृत अथवा विनष्ट किया गया भारत का इतिहास पुनः

लिखा जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य हो जाता है।

बहुत समय तक गुलाम बने रहे देश (राष्ट्र) के लिए, उसके इतिहास

बहुत समय तक गुलाम बने रहे देश (राष्ट्र) के पश्चात्, अब हम इस प्रज्ञन

के पुनर्लेखन की आवश्यकता स्पष्ट कर देने के पश्चात्, अब हम इस प्रज्ञन

पर विचार करेंगे कि पुनर्लेखन का कार्य किस प्रकार किया जाना चाहिये।

हाम्पवादियों के समान किसी एक विचारधारा के कहर अनुयायी, वर्तमि वे गैर-साम्यवादी वीते युग में स्वतन्त्र थे तथापि, अपने ही देश का

इतिहास और विश्व के शेष भाग का इतिहास मानवता के आदिकाल से ही

उन लोगों के मध्य सतत चले आये संघर्ष के रूप में लिखने का यत्न करते हैं

जिसमें से कुछ के पास तब-कुछ है और शेष बहुसंख्यक भाग के पास सभी

बहुतांगों का सबंध अभाव है। इस प्रकार की विचारधारा पर आधारित

पुनर्लेखन सत्य, सम्पूर्ण सत्य और सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं तथ्य का

सम्यक प्रस्तुतीकरण कभी नहीं कर सकता यद्यपि इतिहास-यथार्थ रूप में

महीं बस्तु है।

इतिहास पुनर्लेखन के एक अन्य प्रकार को 'साम्राज्यवादी' विधि की

संज्ञा दी जा सकती है। शासकगण, जाहेर वे जाहरी देशों के ही अथवा स्व-

देश वे, अपनी सुविधानुसार इसे स्वीकार, प्रंगीकार कर लेते हैं। इस तथ्य

को उन नुस्खियों और बूरोपीय लेखकों के ऐतिहासिक कथनों से चरितार्थ

किया जा सकता है जिनका भास्तव्य अन्य-देशीय शासक-दल से था। वे

सभव-अपने गुलामों और बादशाहों को अथवा गवर्नरों और गवर्नर-जनरलों

को एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर प्रस्तुत करने का यत्न किया करते थे। उनके

साथेन्तिक हायाकाएँ, लूट-याटों और अपहरण व शीलभंग जैसे कुकमं-

सय बाजेशों की भी बहाने उदारता, युद्धिमानी, नारूम, त्याय के पुण्यकर्मों

के नाम में प्रस्तुत किया गया है और विदेशी मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखकों द्वारा

दण्डित किया जाना उचित था। शासकों की घोनवृत्ति वाले हिन्दू लेखकों ने

भी, वर्तमि इन कर्मों को नेतृत्व के कामों के मारे में मिठ करने में विफल

रहे हैं—आमतः हुए हैं। उनको किसी भी काम का नहीं—निरवंक कहकर

उपेक्षा करने का यत्न किया है। इस प्रकार, नायपकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त

इतिहास-लेखन का एक ऐसा अन्याय बन्नुपर करते हैं जिसमें घोरतम कूर

कर्म भी उदार कर्मों के रूप में अथवा यदि कुछ कहा ही गया तो हानिहीन प्रशासनिक अध्यायों के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है।

किन्तु, विदेशियों की तो बात ही दूर रही, स्वयं पथभ्रष्ट देशी शासक भी अपने राष्ट्रीय इतिहास को, मात्र अपने निरंकुण विचारों की सुविधा के लिए विकृत करने लगते हैं। कई बार इतिहास को विद्रूप, विकृत करने के उनके प्रयत्नों से स्वयं उनका ही सिहासन ढोल जाता है, उनका पतन—उनका सफाया हो जाता है। इतिहास के अटल तथ्यों की उपस्थिति में ऐसा अपकीति-कर पश्चायमन करने का एक हास्यास्पद उदाहरण सनातानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा इतिहास को दूषित करने की कायरतापूर्ण कोशिशों में प्रस्तुत किया गया था।

सन् १९५० के आसपास भारत के ढीले-ढाले, उनकी कांग्रेसी शासकों ने भारत के स्वातंत्र्य-आन्दोलन का इतिहास लिखने का व्यंग्य-बोर्क-काव्यात्मक प्रयत्न किया। अनेक सगठनों को आदेश भेज दिए गये कि वे जिन-जिन थेलों, प्रदेशों में हीं वहाँ से सम्पूर्ण जानकारी का संग्रह कर लें। इसका परिणाम यह हुआ कि उन भारतीय देशभवतों के सम्बन्ध में विपुल मात्रा में जानकारी का हैर संग्रह हो गया जिसमें तलबारों और शमशीरों, पिस्तोलों और बन्दूकों से विदेशियों के साथ युद्ध लड़ा था। पराक्रम और शोर्य के संघर्ष की इस पृथग्भूमि में सन् १९१५ से १९४५ पर भारत में कुलबुलाने वाले अनशनों और विरोध-दबहप किए गये प्रदर्शनों वाला गांधी-आन्दोलन लघु, भीरतापूर्ण, असंगत और उपहासास्पद प्रतीत होने लगा। अतः, तुरन्त आदेश भेज दिए गये कि पहले संग्रह किए हुए कागज-पत्रों को रद्द कर दिया जाय और इस जाच को मात्र कातर और निष्प्रभ गांधीवादी आन्दोलन तक ही सीमित रखा जाय। यह प्रदर्शित करता है कि किस शकार इतिहास का प्रवाह इतना शक्तिशाली होता है कि वह उन्हीं लोगों को आधात पहुंचाता है जो इसको तोड़ना-मरोड़ना चाहते हैं।

राष्ट्र के लिए उचित बात यही है कि तथ्यात्मक इतिहास लिखा जाय जिसमें एक कुदाल को कुदाल कहा जाता है, शीलभंग को शीलभंग कहा जाता है, नर-हत्याकाण्ड को नर-हत्याकाण्ड, लूट-ससोट को सूट-ससोट, और अन्य-देशीय—विदेशी व्यवित को विदेशी व्यवित कहा जाता है।

परकीय—विदेशी की पहचान करने का आधार उसका निवास स्थान न होकर उस व्यक्ति की मनोवृत्ति होनी चाहिए। यदि वह व्यक्ति —चाहे जो हो अबवा पुण्य—शपथपूर्वक कहता है कि प्रतिमाएँ तोड़ेगा, उर्दू, अंग्रीजी और कारसी अपवा अंग्रीजी का प्रचार-प्रसार करेगा, मार्गों व राजमार्गों पर संगीत बजाने पर आपत्ति करेगा, वाहरी देशों के नाम व वहीं ही देश-भूषण धारण करेगा, वेदों का तिरस्कार करेगा, गौओं का बध करेगा, वैचारिक-रायनीति अपवा धार्मिक प्रेरणाओं के लिए अन्य देशों की ओर देंगा, तो वह व्यक्ति परकीय है—विदेशी है। प्रायः भ्रामक रूप में विश्वास कर लिया जाता है कि जो भी व्यक्ति भारत को अपना देश समझता है, वह व्यक्ति भारतीय है। यह तो केवल आधी परीक्षा ही है। यदि वह व्यक्ति सभी हिन्दुओं को अपनी ही धर्मस्थिया में परिवर्तित करना चाहता है, तो वह तनिक भी भारतीय नहीं है। इतिहास हमें इसी बात की सीख देता है। नागरिक को परखने की विष्टतर विधि मात्र निवासस्थान को देखने की अपेक्षा देश की प्रतिमाओं, उसकी संस्कृति, जीवन-पद्धति, भाषा और धर्म के प्रति अपवा, अद्वा देखने में है क्योंकि निवासस्थान की प्रातं तो डक्कर और ओरंगजेब जैसे कूर, अत्याचारी लोग भी पर्याप्त मात्रा में पूरी करते थे।

इतिहास के इस तथ्य की अपर्याप्त समझ होने के दुष्परिणामस्वरूप ही भोज-भाले नागरिकों के दिमागों में भ्रष्ट, भ्रामक विचार जागृत हो चुके हैं। इसमें कुछ ये हैं—भारत की मिली-जुली, मिथित संस्कृति है; तिरंगे वैसा इतिहास एक मिले-जुले रंगों वाला छब्ज होना चाहिये तथा भारत में ऐसे लोगों को भी रहने दिया जाना चाहिये—उनको सहन किया जाना चाहिये, जो अपने ही साथी नागरिकों के गीर्घों और उनके देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ने-फोड़ने में भी विश्वास करते हैं।

इतिहास का उचित उत्थात्मक पुनर्जनन ऐसे सभी अयुवितयुक्त विचारों, भावों का उन्नीसन करने में सहायक होगा। अतः, जो लोग अल्प-संख्यकों का प्रश्नन करने के लिए इतिहास की दीली-जाली, कूलमुल, भ्रामक और काल्पनिक प्रारणाओं पर नियन्त्रण रखने की सामर्थ्य रखते हैं, वे ही

लोग भारतीय इतिहास के तथ्यात्मक पुनर्जनन का विरोध करते प्रतीत होते हैं।

इस सन्दर्भ में स्मरण रखने योग्य अन्य एक बात यह है कि इतिहास-पुनर्जनन के प्रयत्नों की बहुत सारे व्यक्ति यह कहकर निन्दा, अवहेलना करते प्रतीत होते हैं कि इतिहास तो वैयक्तिक 'व्याख्या' की वस्तु है, अतः, इसके बारे में कोई बात अन्तिम रूप से नहीं कही जा सकती है—नहीं इसकी कोई वस्तुपरकता हो सकती है। यह दृष्टिकोण गलत है, अशुद्ध है। आइए, हम भारत में सन् १८५७ ई० की उत्कान्ति का उदाहरण लें। तत्कालीन ब्रिटिश शासकों और उनके समर्थकों ने उस घटना को गदर कह-कर तिरस्कृत किया, जबकि दूसरे पक्ष के लोगों ने उसी बात को स्वातन्त्र्य-युद्ध की संज्ञा से विभूषित कर पश्चात्वी बना दिया। एक सच्चे इतिहास-लेखक को उनमें से किसी भी एक विचार के कारण विस्मित, भ्रमित नहीं होना चाहिये क्योंकि उस घटना को दिया जाने वाला नाम तो दृष्टिकोण पर ही निर्भर रहेगा। एक सच्चा इतिहास-लेखक तो उस संघर्ष के मूल में घटनाओं की नियंत्रिकमानुसार यथार्थता, युद्धों और हताहतों पर ही बल देगा। इस प्रकार की तथ्यपरक यथार्थता बाद में इतिहासकारों का मतैक्य स्थापित करने में सहायक हो सकती है कि वे इस संघर्ष, युद्ध और हताहतों का सम्यक् विचार करते हुए इसकी अवधि, इसमें परस्पर हुई मुठभेड़ों की संख्या कितनी थी, कितने लोग हताहत हुए थे और जिस क्षेत्र में यह संघर्ष लड़ा गया था—उसका ध्यान करते हुए इसे गदर अपवा स्वातन्त्र्य-युद्ध की संज्ञा दें। किन्तु इस प्रकार अपने मत की अभिव्यक्ति ही इतिहास का सार नहीं है। अधिक-से-अधिक इसे निरर्थक भृंगार, आहम्बर ही माना जा सकता है।

एक इतिहास-लेखक जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह वर्णन की गयी घटना के अनुरूप ही होनी चाहिये। भारतीय ऐतिहासिक वर्णन-ग्रन्थों के रचनाकारों ने न्याय, दया, देशभक्ति, ब्रह्मदुर्ली, शूरता, हत्याकाण्ड, दीन-भ्रंग और लूट-खस्ती के कामों की अभिव्यक्ति के लिए मधुर, प्रीतिकर, अतिधिक-कष्टों जैसी सदाशयता का प्रदर्शन अपवा दिखावा करने वाली भाषा का ही प्रयोग करने का यत्न किया है। वर्षपि दीर्घकालीन उपर्योग के कारण एक-समान भाषा का यह प्रकार मानक, आदर्श माना जाने लगा है, तथापि

आवश्यकता के कारण किया गया थह विषयगमन नियम-भंग और दिमागी कमज़ोरी है। दीर्घावधि तक विदेशी आधिपत्य के अधीन रहने के कारण, अन्य-देशीय—विदेशी मुस्लिम शासकों और ब्रिटिश प्रशासकों के अत्याचारों और जाकोशों की निन्दा करने के लिए कठोर भाषा का प्रयोग करके अपने शासकों को कृद करने का, सम्भवतः, साहस भारतीय लोग उस समय नहीं कर सके। किन्तु, स्वाधीनता के बाद तो यह असंगति, असामंजस्य तनिक भी होते हैं। साहित्य का तबतक कोई अर्थ नहीं है जबतक कि अवसर के उपयुक्त स्वर को यह आवश्यकतानुसार परिवर्तित नहीं कर लेता। इसकी परत नाटकों, उपन्यासों अथवा किसी घटना का विवेचनदेशवाहक द्वारा वर्णन करते समय प्रयुक्त भाषा से भी की जा सकती है। इसी प्रकार, एक सच्चे इतिहासकार को भी उपयुक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

: ६ :

भारतीय जीवन में मुस्लिम योगदान

सामान्य लोग 'भारतीय जीवन और संस्कृति में मुस्लिम योगदान' की प्रायः चर्चा करते रहते हैं। बहुत सारी अन्य पिटी-पिटायी साहित्यिक अभिव्यंजना के समान ही इस कथन को भी अन्वेषत् दोहराया जाता है। मध्यकालीन इतिहास अथवा समकालीन राजनीति में 'मुस्लिम योगदान' वाला यह अक्षय-वाक्यखण्ड प्रशंसाहं रूप में प्रदर्शित करने वाली चर्चा में अथवा लेखों, पुस्तकों में इस भाव से प्रायः प्रस्तुत कर दिया जाता है कि इसके श्रोता अथवा पाठक स्वयं को अत्यन्त लघु और नगण्य समझें, तथा वक्ता के हृदय में अपने विरोधियों को नीचा दिखा सकने में सफलता प्राप्त करने के कारण उल्लास और विजय की भावना व्याप्त हो।

इसके विपरीत, यह बात तो उलटी ही होनी चाहिये अर्थात् मुस्लिम योगदान—यदि इसे यह कहकर पुकारा जा सकता हो—न केवल भारत के नाम को ही शमिन्दा और कलंकित कर चुका है, अपितु सम्पूर्ण मानवता को ही इसने प्रताड़ित किया है—हादिक व्याधि पहुँचायी है। यह इस तथ्य का एक अन्य पक्ष और उदाहरण है कि विदेशी शक्तियों की १,१०० वर्षीय दीर्घावधि पराधीनता में भारतीय इतिहास किस प्रकार पूरी तरह उलट-पुलट दिया गया है। यह इस तथ्य को भी दर्शाता है कि किसी अपकृष्ट, तुच्छ वस्तु को किस प्रकार उत्कृष्ट, शेष वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसके महत्त्व और सातत्य के कारण, आइए, हम इस 'मुस्लिम योगदान' के रुद्रिवादी संदान्तिक दावे की तनिक सूक्ष्म समीक्षा करें।

भौरतीय संस्कृति में 'मुस्लिम योगदान' का यह दावा स्पष्टतः इस तथ्य पर आधारित है कि मुहम्मद-बिन-कासिम से लेकर बहादुरसाह तक र

तक के १,१०० वर्षों कालखण्ड में अरबों, तुकों, ईरानियों, अफगानों, अब्दीसीनियों, इराकियों, कजाकों और उज़बेकों ने भारत पर आक्रमण किये थे और जातन किया था।

मुहम्मद-विन-कासिम, मुहम्मद गजनी, मुहम्मद गोरी, तैमूरलंग, बाबर, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे बर्बर और अनपढ़ (अथवा जगमग अनपढ़ लोग) पुस्त-पैठिए और आक्रमणकारी लोग किस प्रकार का योगदान कर सकते थे? क्या भारत को लूटना, इस देश के भवनों को छ्वस्त और विनष्ट करना, इस देश के मन्दिरों को भ्रष्ट करना और मकबरों व मस्जिदों में परिवर्तित करना, यहाँ की महिलाओं पर बलात्कार करना, अन्य चाहरी देशों में गुलामों के हृप में बेचने के लिए यहाँ के बालकों और बालिकाओं का अपहरण करना, तथा संकड़ों की संख्या में पुरुषों की हत्या करना कोई 'योगदान' था अथवा प्रतिशोध, वैर-साधन? भारतीय महिलाओं ने जगमग प्रत्येक आक्रमण के समय 'जोहर' क्यों किया? क्या यह केवल मजाक ही था?

वे नभी आक्रमणकारी खर्बाइनीय और विना बुलाए मेहमान थे, जिनको हिन्दू लोग खदेढ़कर दाहर कर देना चाहते थे।

आशए, हम अपने भाषारण नामिक जीवन से ही एक उदाहरण लें। वह तर्क दिया जा सकता है कि किन्हीं डाकुओं का एक दल किसी युग्मित परिवार अथवा ग्राम के शान्तिमय जीवन पर आक्रमण करके उनकी समस्त धन-दौलत को लूटकर, पुरुष-बंग को भीषण यातनाएं देकर, महिला-बंग का शीलनय लगके, लड़कियों का अपहरण करके, लड़कों को अन्यत्र गुलामों के हृप में बेचकर और भावेजनिक नर-हत्याकाण्ड करके उनके नाग-दावा में कोई बहुपूर्ण योगदान करता है? क्या ऐसे दल को कोसा यादता चलाया जाता है और उसे इष्ट दिया जाता है, अथवा हताहतों—चित्र, उमर्हा परिवार अथवा ग्राम की ओर से एक प्रशस्ति-पत्र और सम्मान-पृष्ठ दिया जाता है?

उपर्युक्त इतिहास ने यह दूरी तरफ स्पष्ट हो जाता चाहिये कि गुण्डों,

लूटेरों और बर्बर अत्याचारियों के लूण्ड-के-झुण्ड नियुक्त करके, हिंदियाँ से लैस होकर दाहरण यातनाओं की विधि से भारत में अपना प्रवेश निश्चित करने वाले बाहरी देशों के मुस्लिम आक्रमणकारी भारत में कभी भी पसन्द नहीं किए गये थे। उन्होंने भारत को हर प्रकार से छ्वस्त, विनष्ट किया और इसे झुग्गी-झोपड़ियों की घनी बस्तियों, कच्ची-पक्की, टूटी-फूटी गन्दी मड़ियों के मुहल्लों, दरार वाले ध्वंसावशीयों और भीयण, नितान्त दखिला का दैशवना दिया। मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखक अलबरूनी ने, जो आक्रमणकारी मुहम्मद गजनी के साथ-साथ भारत आया था, स्वयं विल्कुल स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मुहम्मद गजनी ने हिन्दुओं का जीवन क्षार-क्षार कर दिया था और इसे हवा में उड़ा दिया था।

भारत ने इन घूसपैठियों और आक्रमणकारियों का कभी अभिनन्दन नहीं किया। इन क़ूर दानवों के क़ूरतम जघन्य अपराधों, अत्याचारों से मुक्ति के लिए भारत सदैव हृदय से प्रार्थना करता रहा। इसीलिए, यदा-कदा उत्पन्न होकर भारत-माता का संकट-मोचन करने के लिए यत्नशील राणा प्रताप अथवा शिवाजी को भारतीय लोग ईश्वर-प्रेषित और संरक्षण देने वाला महामानव मानते रहे।

यहाँ तक तो आक्रमणकारियों से सम्बन्धित बात रही।

फिर यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि इन बाह्य आक्रमणकारियों की एक बहुत बड़ी संख्या अपनी सन्तानों, अपने जी-हुजूरों और इस्ताम में धर्म-परिवर्तित हिन्दुओं को भारत में ही बसने के लिए छोड़ दी थी, इसलिए कम-से-कम उनको तो इस बात का क्षेय दिया ही जाना चाहिये कि उन्होंने तो भारतीय संस्कृति में कुछ 'योगदान' अवश्य ही किया था। किन्तु यह दावा भी अयुक्तियुक्त, अनुचित है।

जैसाकि अभिलिखित इतिहास से अति स्पष्ट है, मुस्लिम स्वामियों और उनके विदेशी दरबारियों और सैनिकों के बर्ग ने कभी भी स्वयं को भारतीय नहीं माना। वे स्वयं को सगवं ईरानी, तुकी, अरबी, कज़की, उज़बेकी, अफगानी और अबीसीनियनी तथा भारत में जन्मे अथवा धर्म-परिवर्तित मुस्लिमों को भी 'हिन्दुस्तानी' के तिरस्कार-सूचक नाम से सम्बोधित करते रहे। इस प्रकार, यद्यपि आरीरिक हृप से वे भारत में

निवास करने लगे थे, तथागि मानसिक रूप से वे भारत को लूटने और निर्धन बनाने की ज़ारूरत खाए रहे। उन्होंने अपना धन भारत से बाहर भेजा, स्वयं बनाने की ज़ारूरत खाए रहे। उन्होंने अपना धन भारत के बाहर छोड़ने ही देशों में जावियों की, और धार्मिक यात्रा के लिए भारत के बाहर छोड़ने ही देशों में सन्तों की पदवी दे दी जो भारत ही नहीं। उन्होंने, भारत में उन हत्यारों को सन्तों की पदवी दे दी जो भारत ही नहीं। क्या भारत की जनता के लिए भीषण आतंक थे। यह देखने के लिए, कि क्या भारत में बहु जाने मात्रने स्वतः ही सम्मानित नागरिकता सुनिश्चित हो जाती है, में बहु जाने मात्रने स्वतः ही सम्मानित नागरिकता सुनिश्चित हो जाती है, कि क्या भारत की जनता के लिए धूरस्व इवान से एक ग्राम पर डाका मारने और उस ग्राम की एक दल किसी दूरस्व इवान से एक ग्राम पर डाका मारने और उस ग्राम की उस दौलत लूटकर अपने मूल-स्थान तक ले जाने की अपेक्षा यह सुरक्षात्मक और सुविधाजनक समझता है कि उसी जाम में निवास किया जाय और पास और सुविधाजनक समझता है कि उसी जाम में निवास किया जाय और पास ये ही अपनी गहित कार्यवाहियाँ जारी रखी जाएँ। क्या ऐसे दस्यु-दल को शाय की जनसंख्या में एक बहुमूल्य और श्रीवृद्धिकारी जन-वृद्धि समझा जाएगा, और वह इस वर्ग को ग्रामीण नागरिक-संघ की ओर से सम्मानित कर प्रशस्ति-पद दिया जाएगा?

इस विश्वेषण से सुस्पष्ट हो जाना चाहिये कि मायदण्ड शारीरिक निवासन न होकर, आचरण ही है। जब कुतुबुद्दीन ऐबक (सन् १२०६ ई०) से बैकर बहादुरजाह जफर (सन् १८५८ ई०) तक के सभी मध्यकालीन मुस्लिम स्वामी-गण भारतीयों की अत्यधिक, विपुल बहुसंख्या को नीच, शायता ही समझते रहे, जिनकी गोओं को काटना जारी रखना, मन्दिरों को छल्ल करना और समर्पित की लूटना अनिवार्यतः आचरण का, तब उनको भाव इसीलिए तो भारतीय नहीं समझा जा सकता कि वे भारत में रहे थे। यबसे महस्त्रपूर्ण प्रश्न यह है कि वे भारत में बसे किस उद्देश्य से थे? इस मम्बन्ध में यह भी ध्यान में रहना चाहिये कि शक और हृण लोग भी तो जाकर मारकारियों के रूप में ही भारत में आये थे, किन्तु वे भारतीयों के नाम इन्हीं पूर्णता से जात्मसात ही नहीं थे कि आज भारत में कोई भी शक अथवा हृण नहीं है। इसके विपरीत, मध्यकालीन मुस्लिम लोग विदेशी ही नहीं रहे।

भारत में मुस्लिम राज्य की लगभग समाप्ति तक ही मुस्लिम स्वामी-गण, उनके दरवारी लोग और इस्लाम में धर्म-परिवर्तित व्यक्तियों ने स्वयं

को भारतीय बनाना तो दूर रहा, अपनी वेशभूषा, ढंग, नाम, धर्म, लिपि, भाषा, वाणी और दृष्टिकोण का विदेशी रूप बनाए रखने का प्रत्येक प्रयत्न किया—विदेशियों के रूप में अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखने के लिए द्वेष-भाव की भी रक्खा करते रहे। यह बाह्य-देशीय भाव इतना गहरा पैठ गया कि यह दृष्टिकोण आज भी जारी है। इस भावना से, भारत में इस्लाम धर्म समाप्त होकर, भारत पर अरब-ईरानी-तुर्की आधिपत्य की राजनीति बन गया। उनकी यह पृथकताबादी वृत्ति प्रखर रूप में अपने ही युग तक चलती रही है। इसी का विशिष्ट उदाहरण हमारे सम्मुख उस समव प्रस्तुत हुआ था जब अपने पृथक् निवासस्थान के रूप में पाकिस्तान के नाम पर सन् १९४७ ई० में भारत के दो टुकड़े कर देने की मांग की थी। ही, इसे अवश्य ही भारत में इस्लाम द्वारा अरेविया, ईरान और तुर्की के प्रति 'योगदान' कहा जा सकता है, तथापि यह भारत की कुन्सेवा ही है।

हिन्दुस्थान की जनता और संस्कृति को प्रेम करने की तो बात ही दूर है, मध्यकालीन मुस्लिम शासक-वर्ग हिन्दुओं के प्रति घोर धृणा का भाव बनाये रहे। इस बात का दिग्दर्शन संकड़ों मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों में से लगभग प्रत्येक में इस तथ्य द्वारा किया गया है कि उनमें से किसी एक में भी भारत की जनता को उनके विशिष्ट नाम से नहीं पुकारा गया है। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों में हिन्दुओं को "लुच्चे, चोर, डाकू, लुटेरे, ठग, गुलाम, वेश्या, नर्तकिया और काफिर" जैसे सर्वाधिक निकाल, अवमान-पूर्ण और अभद्र सम्बोधनों से पुकारा गया है। पाठ्यक्रमगत पाठ्य-पुस्तकों जिन लोगों ने लिखी हैं, उन अधिकाधिक इतिहास-लेखकों ने इस तथ्य को जनता से छिपाकर रखा है, उसे उजागर नहीं किया है। क्या किसी भाहत —शिकार देश के निवासियों ने से अधिकांश को सम्बोधित इस प्रकार के निकाल अपशब्द उस देश की संस्कृति में 'योगदान' है?

तीसरी बात यह है कि "इस्लाम स्वीकार करो अथवा भीषण मातनाओं द्वारा मरने को तैयार रहो" के आतंक से बचने के मूल्य के रूप में हिन्दुओं से धन-एंठने के लिए लगाया गया द्वेषजनक, कोर्धोत्पादक जिहाद-कर ही क्या इस्लाम द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रति महान् योगदान कहा जा सकता है? इसके विपरीत, यह तो एक अनिवार्यतः लगाया, एंठा जा रहा ऐसा कर

या जो हिन्दुओं पर ढंसा गया था और जिसे भारतीय संस्कृति पर आरोपित जोक-यदृग विदेशी कलम को सीखने के लिए उपयोग में लाया गया था।

जोधी बात यह है कि मुस्लिम शासनावधि में हिन्दुओं को एक रंगीन रंडन लगाना पड़ता था ताकि उनको मिलते समय कोई भी मुस्लिम उनका स्वामित्व न करे, उनकी शुभकामता न कर सके और न ही सामान्य शिष्टाचार निभा सके। यह इसको भारतीय संस्कृति के प्रति मुस्लिम योगदान कहकर पूछारा जा सकता है? दूसरे भड़ों में, एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के प्रति किए जाने वाले सामान्य शिष्टाचार से भी एक हिन्दू को बच्चित रखना तो स्वयं संस्कृति का अस्वीकरण था। मुस्लिम शासन के समय हिन्दू व्यक्ति को कुत्ता अथवा सुबर के समान (हंय) समझा जाता था।

कई बार इस बात पर जोर दिया जाता है कि यदि कुछ और नहीं भी हुआ, तो भव्य मकबरों, किलों, मस्जिदों, राजमहलों, पुलों और नहरों का निर्माण करके तो मुस्लिमों ने, कम-से-कम, भारत में महान् स्थापत्यकला में योगदान किया है। यह बात भी निराधार है क्योंकि मुस्लिमों ने मध्यकालीन मुग्हों में, भारत में एक भी मकबरा अथवा मस्जिद नहीं बनाया। सभी मध्य-कालीन मकबरे, मस्जिदें, किले, राजमहल, पुल और सड़कों जिनका निर्माण-थिये इस या उस मुलतान अथवा दरबारी को झूठे, असत्य ही दिया जाता है, अगहन, चलात्-अधिगृहीत हिन्दू-संरचनाएँ हैं जिनको मुस्लिम उपयोग में बनाया गया है।

इसी ओर, मुस्लिमों ने तो नदीधारों, नहरों, पुलों, राजमहलों, मन्दिरों, भवनों और किलों जैसी भव्य हिन्दू-संरचनाओं को बहुत बड़ी खल्पा में नष्ट किया है। विनष्ट होने से जो कुछ निर्माण बच सके, उनका उन्होंने मकबरों और मस्जिदों के हृष में दुरुपयोग कर लिया। कुछ अन्य भव्याचार, इधर-उधर खण्ड-विखण्ड छवंसावदोषों और मलबों के हृषों के हृष में आज भी दिखायी पड़ जाते हैं।

फ्रांस पुनः देखते हैं कि इतिहास को किस प्रकार पूरी तरह उलट-पुलट दिया गया है, क्योंकि भारत में कुछ भी निर्माण करना तो दूर रहा मुस्लिमों ने या तो भवनों को पूरी तरह छस्त कर दिया अथवा हिन्दू-भवनों

को हड्डप कर लिया और विद्रूपण, छण्ट-कर्म और विनाशन द्वारा उनको तोड़ा-फोड़ा या विकृत कर दिया, तथा भूठे निर्माण का दावा कर दिया। मध्यकालीन भवनों और ऐतिहासिक स्थलों के प्रत्येक दर्शनार्थी को एक अति महत्वपूर्ण सिद्धान्त स्मरण रखना चाहिए कि “निर्माण-कार्य सर्वं हिन्दू का है, जबकि विनाश-कार्य पूरी तरह मुस्लिम” है।

यदि यह विश्वास किया जाता है कि भारतीय संस्कृति में किया गया मुस्लिम योगदान नृत्य और संगीत के क्षेत्र में है, तो यह दावा भी, यह विचार भी निराधार, आधारहीन है। हिन्दू परम्परा में तो नृत्य और संगीत अति पवित्र धार्मिक कलाएँ थीं। मुस्लिम शासन-काल में इनको वेश्यालय और दरबारी मदिरापान तक घसीट कर ले आया गया। अतः, यदि कुछ हुआ तो वह यह कि नृत्य और संगीत दूषित होकर अवमूल्यन की इतनी पंकिलावस्था को, हीन स्थिति को प्राप्त हो गये थे कि आज भी प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति अपनी पुत्रियों और बहिनों को, अथवा स्वयं बालकों तक को नृत्य और संगीत सीखने के लिए भेजने से आज़कित होता है। संगीत के क्षेत्र में ‘मुस्लिम योगदान’ के रूप में प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए पूरी सम्भावना है कि लोग उन मुस्लिमों की विपुल संख्या की ओर इंगित कर देंगे जो अच्छे संगीतज्ञ माने जाते हैं। ऐसा दावा करने वाले लोग प्रायः भूल जाते हैं कि भवंप्रथम बात तो यह है कि ये संगीतज्ञ जिन राग-रागनियों का गायन करते हैं वे सभी अविस्मरणीय हिन्दू-मूल और प्राचीनकाल की हैं। दूसरी बात यह है कि संगीतज्ञों में मुस्लिमों की संख्या तुलनात्मक रूप में अधिक इस कारण-बश है कि उन संगीतज्ञों के पूर्वजों को भारत में मुस्लिमों के शासन काल में दरबार का संरक्षण प्राप्त था और उन लोगों को पानोत्सव के समय दरबारी रंगरेलियों के माथ-साथ वाच अथवा गायन करना पड़ता था। तीसरी बात यह है कि वे तबाकधिन मुस्लिम संगीतज्ञ भी मुस्लिम भेष में हिन्दू धर्म-परिवर्तित व्यवित ही हैं। इसलिए, संगीत में भी मध्यकालीन मुस्लिम स्पर्श ने इन पवित्र और अतिविकसित भारतीय कलाओं को निर्माण-सत्रीय बना दिया। चौथी बात यह है कि प्राचीन भारत में संगीत के गुण भवनों की भाँति जीवन-शायन करते थे। मध्यकालीन मुस्लिम-शासन में उन्हीं लोगों को अधीपति व्यवित बना दिया गया।

लोग कई बार मुगल-उद्यानों की चर्चा भी करते हैं। स्वयं इस शब्दाब्दी का निहितार्थ है कि मुगलों से पूर्व की अन्य मुस्लिम जातियों में से बहनी को भी उद्यान-शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं था। यदि, इसके विपरीत किसी को भी उद्यान-शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं था। यदि, इसके विपरीत यह भाना जाता है कि मुहम्मद-बिन-कासिम से प्रारम्भ करके जितने भी यह भाना जाता है कि मुहम्मद-बिन-कासिम से प्रारम्भ करके जितने भी मुस्लिम जासक आक्रमणकारी हुए वे सबके सब उद्यानों के शौकीन थे, तो 'मुगल-उद्यान' नाम की यह शब्दावली भ्रमजाल है। उपर्युक्त नामाबली 'इस्लामी उद्यान', अथवा 'मुस्लिम उद्यान' होगी। 'मुगल-उद्यान' किसी भी प्रकार नहीं। यहाँ, यह अनुभूति अवश्य साथ रहनी चाहिए कि सभी मुस्लिम आक्रमणकारी उन शूष्क, रेतीले स्थानों से आये थे जहाँ पीने का एक गिलास पानी लेने के लिए भी जलते-भुजते, रेगिस्तानी प्रदेश में भीलों तक चलना पड़ता था। क्या ऐसे व्यक्ति उद्यान लगा सकते थे? दूसरी बात यह है कि बब यह सिद्ध किया जा चुका है कि करमीर में निशात और शान्तीमार से नेकर गुलबर्ग, बीजापुर और बीदर-स्थित सभी ऐतिहासिक-स्थल अपहृत हिन्दू-संरचनाएँ हैं जिनका निर्माण-श्रेय झूठे ही इस या उस मुस्लिम सुलतान बख्बा दरबारी व्यक्ति को दे दिया गया है। यदि वे भवन हिन्दू भवन हैं, हिन्दू-मूलक हैं तो स्वतः यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके सामने लगे, बने हुए उद्यान भी हिन्दू ही हैं, भारतीय उद्यान हैं, मुगल बख्बा मुस्लिम उद्यान नहीं हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मुस्लिमों को उद्यानों का श्रेय देने में भी इतिहास पूरी तरह उचल-नुस्खा हो गया है। इस तथ्य का एक अत्यन्त नेतृत्वान्वयकारी, विशिष्ट दृष्टान्त शाहजहाँ के सरकारी रोजानामचे "बादशाह-नामा" के भाग-१ के पृष्ठ ४०३ पर उपलब्ध होता है जहाँ उसने स्वीकार किया है कि राजमहल राजा मानसिंह का भवन है, जिसको जब मुमताज को इकलाने के लिए अपने अधिकार में लिया, तब वह एक अत्यन्त भव्य, मुरम्मद, हरे-नरे उद्यान में बना हुआ था।

आधुनिक दृग का विचार करते हुए हम देखते ही हैं कि करमीर अपनी मुस्लिम-बहुसंख्या के कारण एक समस्या बाला राज्य बन गया है। मुस्लिम बहुसंख्या के कारण ही पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब भारत से पूर्वक् कर दिये गये थे। अनीमद मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिक पृथक्-तावादी आनंदी-नम। वो उन्ने बासे स्थान के क्षण में जात ही है।

यह कहना, कि भारत पर मुस्लिम आक्रमणों ने भारतीय, हिन्दू जीवन और संस्कृति में महान् योगदान किया है—जिसके लिए हिन्दुओं को आभारी, कृतज्ञ होना चाहिए, ऐसा ही है जैसा यह कहना कि रूस पर आक्रमण करके नेपोलियन और हिटलर ने भी सौविधत जीवन को समृद्ध करने की उत्कृष्ट ही प्रकट की थी। यह विचार-प्रणाली स्पष्ट रूप में बेहूदगी ही है। यदि आक्रमणकारियों और लुटेरों को उनके विकार देशों की संस्कृतियों में योगदान करने वाला ही समझा जाना है, तब तो नेपोलियन और हिटलर की आक्रमण सम्बन्धी योजनाओं को विफल कर देने के लिए इतिहास को येट ब्रिटेन और रूस की तीव्र भत्सना और निर्दा अवश्य ही करनी चाहिए।

न केवल भारत में, अपितु स्वयं अरेविया में भी—जहाँ इस्लाम ने सर्वप्रथम अपना सिर ऊपर उठाया था—इस्लाम और संस्कृति एक-दूसरे के विपरीत अर्थवोधक सिद्ध हुए हैं। जहाँ कहीं इस्लाम की पैठ हुई, वहीं उसने स्थानीय लोगों को विवश किया कि वे अपनी प्राचीन संस्कृति से घृणा करने लगें और उसे मुला दें। इस प्रकार, अरेवियन इतिहास भी इन शब्दों से प्रारम्भ होता है कि इस्लाम के जाविर्भाव से पूर्व अरेविया ऐसा देश था जो संक्षोभ, परेशानी में खोया हुआ था। इसी प्रकार, ईरानी, तुर्की, अफगानी, मिस्रवासी, अलजीरियाई और मोरक्कोवासी तथा मशाल व तलबार के बल पर इस्लाम में धर्म-परिवर्तित होने वाले लाखों लोगों को अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति इतना लजिज्जत होने पर विवश कर दिया गया है कि वे उनको रमृती और इतिहास से समूल नष्ट करने पर बाध्य हो गये हैं और कहने लगे हैं कि इस्लाम से पूर्व विश्व में सर्वज्ञ अन्धकार-ही-अन्धकार था। क्या वह प्रणाली, जो आतंक और यातनाओं द्वारा धर्म-परिवर्तन मात्र पर ही जीवित रही है, 'संस्कृति' शब्द पर अपना कोई दावा प्रस्तुत कर सकती है?

इन सभी तथ्यों पर विचार करने के उपरान्त भारत में किसी भी प्रकार के 'मुस्लिम योगदान' की जर्ना करना इतिहास-विरोधी बात है। ऐसा नहीं है कि उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ है। एक बुझानी मुस्लिम छाप पड़ी है, किन्तु इसे निश्चित रूप में योगदान तो नहीं कहा जा सकता। इसका दुष्परिणाम भारत की उच्च नैतिकता और अनुशासन का विनाश, और नितान्त आधिक-दारिद्र्य हुआ है। इस प्रभाव ने भारतीय जीवन का सर्व-

नाश कर दिया है और भारत की प्रतिभा व चरित्र को इतना परिवर्तित कर दिया है कि यह अपने वैदिक और संस्कृत मूलाधार से पृथक् हो गया है, तथा इधर-उधर भटकता हुआ मक्का व मदीना की ओर आधा रास्ता तय कर चुका है।

भारत, इस मध्यकालीन मुस्लिम योगदान के बिना, अधिक उल्लंघन और तुच्छी, सुदृढ़ और संयुक्त-संगठित रहा होता। यदि कहा ही जा सकता हो तो यह 'योगदान' अनिच्छुक, प्रतिवादी और प्रति अतिरोधी भारत पर थोपा, रोपा और मढ़ दिया गया था। इस प्रकार, यह अनावश्यक और अप्रिय-अवाञ्छनीय था। भारत इसके बिना भी अपना काम चला सकता था, और इसका कुप्रभाव दूर करने के लिए भारत को अनेक वर्षों तक अथक् परिव्रम करना पड़ेगा।

: ७ :

पुरातत्त्वीय अभिलेख किस प्रकार बनावटी रूप में प्रस्तुत किये गये हैं

विश्व की सरकारों, पुरातत्त्वीय कर्मचारियों, इतिहास के अध्येताओं-ठाक्कों और सामान्य जनता को सामान्य रूप से यह ज्ञात प्रतीत नहीं होता कि भारत के पुरातत्त्वीय अभिलेख अनेक प्रकार से बनावटी रूप में, असत्य रूप में, गढ़कर तैयार किए गये हैं।

उपर्युक्त तथ्य को 'भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान' द्वारा प्रकाशित उन पुस्तकों में पर्याप्त रूप से चरितार्थ किया गया है, जिनमें सिद्ध किया है कि ताजमहल को शाहजहाँ ने नहीं बनवाया था, किंतु पुर सीकरी की स्थापना अकबर ने नहीं की थी, और आगरे का लालकिला भी उसके द्वारा नहीं बनवाया गया था। इस प्रकार, लगभग प्रत्येक मध्यकालीन ऐतिहासिक भवन, पुल अथवा नहर का झूठा, असत्य निर्माण-थ्रेय विदेशी मुस्लिमों को दे दिया गया है, यद्यपि तथ्य यह है कि इनमें से प्रत्येक वस्तु का निर्माण, शताब्दियों पूर्व ही भारत के हिन्दू शासकों द्वारा कर दिया गया था।

इस प्रकार के असत्य, बनावटी प्रस्तुतीकरण का मूल कारण भारत की १२०० वर्षीय दीर्घकालीन दासता है जिसमें उसके विदेशी शासकों ने भारतीय पुरातत्त्व का मर्वनाश कर दिया है, उसके साथ मनमाना छिलकाया किया है।

भारत में १६वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन की स्थापना हेतु से पूर्व 'पुरातत्त्व विभाग' नाम की कोई वस्तु नहीं थी। भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व हुए दीर्घकालीन विदेशी मुस्लिम शासन में हिन्दू-भवनों को बनात्-प्रहण करने और उन्हीं को मस्जिदों व मकबरों के रूप में दुर्लयोग करने की

एक तम्भी अक्षयतीय कहानी थी। इसलिए, भारत में जब ब्रिटिश सत्ता आसनारूढ़ हुई, तब सभी ऐतिहासिक भवन बहुत पहले ही मकबरों और मस्जिदों में परिवर्तित होकर ऐरा-गैरा नत्य खेला, तुच्छ मुस्लिमों के आधिपत्य और बहजे में थे। जब ब्रिटिश लोगों ने भारत में सर्वप्रथम पुरातत्त्व विभाग की स्थापना की, तब उन्होंने मूढ़तावश सभी स्थानों पर विद्यमान रेसे ही मुस्लिमों से परामर्श किया और उनकी बतायी हुई सभी मन्त्रालय, असत्य बातों को अंकित कर लिया। ऐसी ही झूठी बातें भारत सरकार के सम्मानित पुरातत्त्व विभाग का मूल केन्द्र-भाग बन चुकी हैं।

इन भवनों पर स्वामित्व अथवा कब्जा किए हुए मुस्लिम लोग उन भवनों के मुस्लिम-पूर्व वास्तविक मूलोदृगम अथवा स्वामित्व पर सच्चा प्रकाश ढालने में रुचि नहीं रखते थे क्योंकि उनको आशंका थी कि यदि उन्होंने किसी भी भवन के मूलोदृगम के रूप में हिन्दू-मूलोदृगम स्वीकार कर लिया या उसकी चर्चा करती, तो उनका उस भवन पर से अधिकार—स्वामित्व या कब्जा छीन लिया जाएगा।

कुछ मात्रा में उनका धर्मोन्मादपूर्ण इस्लामी उग्रवाद भी उनको इस बात से रोकता रहा कि वे उन विजित अथवा अपहृत भवनों का निर्माण-भव्य उनके पूर्वकालिक हिन्दू स्वामियों को दे।

यह भी सम्भावना ही भक्ती है कि उन स्थानों पर विद्यमान वे मुस्लिम लोग इतने अधिकृत और अज्ञानों थे कि उन्हें स्वयं ही इस तथ्य की कोई जानकारी नहीं थी कि उन भवनों का कोई पूर्वकालिक मुस्लिम-पूर्व इतिहास भी था।

एक अन्दर संभावना यह भी है कि किसी भवन के बारे में बार-बार यह कहते हैं, कि वह किसी का मकबरा अथवा मस्जिद है, सबतः यह प्रत्यंच प्रत्यक्षित हो गया हो कि इस भवन का मूल-निर्माण ही उसी प्रयोजन से हुआ हो। तथ्य रूप में तो उनका आशय यह होना चाहिए था और ब्रिटिश कि हिन्दुओं से छीन लेने के बाद उन भवनों को मकबरों और मस्जिदों के बाज बिन भवनों की अकबर के, अथवा भक्तदरबार के, अथवा हुमायूं के

मकबरे के रूप में देखता है, उनका भाव-द्वारा इतना ही हो सकता है कि (यदि सचमुच ही वहाँ कुछ है तो) वहाँ पर वे विशिष्ट व्यक्ति दफनाए पड़े हैं। किन्तु यह कल्पना करना कि वे राजभवनों के सदृश विशाल, भव्य भवन उनके दफनने के स्थानों के स्मारकों के रूप में बनाए गये थे, घोर ऐतिहासिक और पुरातत्त्वीय भूल है। वे भवन तो बहुत पहले से विद्यमान थे। विदेशी मुस्लिम विजेतागण उन विजित भवनों में निवास करते रहे और कदाचित् वहाँ दफना दिये गये। उन विशाल, भव्य भवनों में इनका दफनाया जाना भी सन्दिग्ध है। यह भी ही सकता है कि उन भव्य भवनों के भीतर बनी हुई सभी अथवा अधिकांश कपड़े झूठी, जाली हैं और वे माल इसी मन्तव्य से बनायी गयी हैं कि विना एक भी रक्षक नियुक्त किये ही उन भवनों पर इस्लाम के उपयोगार्थ उग्रका कब्जा बना ही रहे।

यह घोर पुरातत्त्वीय असत्यता, झूठ किस प्रकार की है—मैं इस बात के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। ब्रिटिश सरकार ने जब भारत में पुरातत्त्व विभाग की स्थापना करनी शुरू कर दी, तब उन्होंने देखा कि ऐतिहासिक भवनों में से अधिकांश भवन मुस्लिम आधिपत्य और कब्जे में थे। अपने विषयाङ्क साम्राज्य की विरही स्मृतियों को संजोए हुए उन मुस्लिमों को इसी बात से पर्याप्त सन्तोष था कि कम-से-कम सभी भवनों को पूर्वकालिक मुस्लिम शासकों द्वारा बनाया हुआ ही घोषित कर दिया जाये। ब्रिटिश कर्मचारी अज्ञानवश इस छल-कपट का शिकार हो गए, और इसके कारण उन्होंने एक कृत्रिम, जाली पुरातत्त्वीय अभिलेख का केन्द्र-विन्दु रख डाला। प्रत्येक वस्तु को श्रूतपूर्व मुस्लिम शासकों, दरबारियों, और ऐरा-गैरा नत्य खेला से सम्बन्धित करने की उस अनुचित शीघ्रता में उन लोगों ने सत्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

इसीलिए विन्सेंट स्मिथ ने 'अकबर—महान् मुगल' नामक अपनी पुस्तक में ठीक ही शिकायत की है कि अमरकोट किने के पास, मिथ्य प्रान्त में जिस स्थान पर पुरातत्त्वीय सूचना-पट यह बताते हुए लगा है कि यहाँ पर अकबर का जन्म हुआ था, वह स्थान सही नहीं है।

इसी प्रकार पंजाब में कलातीर नामक स्थान पर कुछ हिन्दू धर्मावलीय हैं, जहाँ पर पुरातत्त्व विभाग की ओर से शिनावत के बाद पहुँचना-पट

लगाया गया है कि यह वैह स्थान है जहाँ पर १३वर्षीय किशोर अकबर को बादशाह घोषित किया गया था। यही वह स्थान है जहाँ अकबर को उसके पिता बादशाह हुमायूँ की मृत्यु का समाचार उस समय सुनाया गया था जब १३वर्षीय अकबर वहाँ पड़ाव डाले पड़ा था। हमें इस बात से कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु इसके बाद की तारीख के कुछ मुस्लिम तिथिवृत्तों में और पुरातत्त्वीय अभिलेखों में कुछ और भी दावा किया जाता है। वे यह कहते ब्रतीत होते हैं कि अकबर को उस स्थान पर मुगलों द्वारा निपित भवन में राजमुकुट पहनाया गया था, और आज जो छवंसावशेष वहाँ विख्यायी देते हैं, वे उन्होंने मुगल-भवनों के हैं। यह घोर असत्य और भ्रामक घारणा है।

अकबर, जो उस समय बालक ही था, उस स्थान पर किस प्रकार एक विजात मेवन निर्माण करा सकता था? उसका पिता भी वहाँ कोई भवन नहीं बनवा सकता था क्योंकि एक अन्य धर्मण्डी मुस्लिम सरदार बैरशाह द्वारा देश से बाहर खदेड़ दिये जाने के कारण, देश से बाहर १५ वर्ष तक रहने के बाद वह भारत में लौटा था। इसलिए, यदि कलानीर में निरिष्ट स्थान पर ही अकबर की ताजपोसी हुई थी, तो उसका अर्थ यह है कि वह उन समय एक पूर्वकालिक हिन्दू भवन में पड़ाव डाले हुए था जो पूरी तरह बनवा आंशिक रूप में बारम्बार होने वाले मुस्लिम आक्रमणों के समय नष्ट हो गया था। कलानीर के उस स्थल के बारे में हमारे पुरातत्त्वीय अभिलेख में इस पूढ़ि की आवश्यकता है।

लाल में पुरातत्त्वीय निश्चित पहचान किस प्रकार जाली रूप में की गई है, इसका तीसरा विशिष्ट उल्लेख मोहम्मद गवन की कब्र के रूप में मिलता है जो बीदर में है। मोहम्मद गवन एक घुमकड़ी और खोजी व्यवित था जो देव-महलव गुमता हुआ खोद्दो शताब्दी में पश्चिमी एशिया के मुस्लिम देशों में भारत में था पहुँचा था। वह एक बहुमी सुलतान का बरीर ही था किन्तु एक बहुत थोड़ी अनिश्चित अवधि भाव के लिए ही। उसका पनाथी समान रूप में हड्डी में दृश्य। उसकी हत्या भी उसी सुलतान के आदेशानुगार की गयी जिसका मोहम्मद गवन बजीर था। गोमान्तर की अस्तित्व गामक मुसलमान की नवरों में गिर जाता था, उसको

निष्पमित रूप से दफ्तराया भी नहीं जाता था। ऐसे शिकार व्यवित के गोरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते थे और उन बोटियों को चीलों और कुत्तों के खाने के लिए फैक दिया जाता था। मोहम्मद गवन का अन्त इससे कुछ अच्छा नहीं हो सकता था। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट थी कि सन् १६४५ ई० तक उसकी कब्र पहचानी नहीं जा सकी थी। फिर, अचानक कोई मुस्लिम उग्रवादी पुरातत्त्वीय कर्मचारी काम में जुट पड़ा, बीदर नगर और बहाँ सड़क के किनारे बनी हुई असंख्य, नगण्य, अनाम कब्रों में से एक को मोहम्मद गवन की कब्र घोषित कर आया। उस समय से ही सभी प्रकार के अन्वेषक जबरदस्ती उस कब्र को मोहम्मद गवन की कब्र के रूप में उल्लेख करने लगे क्योंकि अब उसपर सरकारी छाप और मान्यता उपलब्ध हो गयी थी। किन्तु अन्वेषकों को ऐसे पुरातत्त्वीय आदेश अन्धाधुन्ध मान्य नहीं कर लेने चाहिए। उनको चाहिए कि वे प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल के बारे में प्रश्न करें और उस स्थल की पहचान के बारे में पुनः लोज-बीन करें। इसका कारण यह है कि शीघ्रता में की गई आपा-आपी और, सरकारी सत्ता और पद का दुरुपयोग करते हुए उग्रवादी कर्मचारियों ने सत्य की पूरी तरह नृणांसतापूर्वक हत्या कर दी है। इसके पीछे दो भावनाएँ थीं। सरकारी कर्मचारियों के रूप में उनकी इच्छा रही होगी कि सरकारी अभिलेखों में उनका नाम अत्यन्त दक्ष व्यवितयों के रूप में लिखा जा सके जिन्होंने कोई उपयोगी पहचान का महत्वपूर्ण कार्य किया था। अनेक बार, मुस्लिमों के रूप में अपने विनाट, विगत भूतकाल के बारे में स्मृतियाँ सजीव कर उग्रवादी हादिक सन्तोष उनको भी प्राप्त हो जाया करता था।

मैं अब एक अन्य उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुझे बताया गया है कि एक या दो दशक पूर्व एक पुरातत्त्व कर्मचारी के मन में यह विचार आया कि अबुल फ़ज़ल की कब्र को खोजा जाय, मुनिशिचित किया जाय। अबुल फ़ज़ल तीसरी पीढ़ी के मुगल बादशाह अकबर का दरबारी और तथाकथित स्वयोगित तिथिवृत्त लेखक था।

इतिहास में उल्लेख है कि सन् १६०२ ई० के अगस्त मास की १२ तारीख को नरवर से १०-१२ मील की दूरी पर सराय बरार नामक एक स्थान के आस-पास अबुल फ़ज़ल को घात लगाकर मार हाता गया था और

१०

विश्व इतिहास के कुछ विलूप्त अध्याय

उनके दृष्टे-दृष्टे कर दिये गये थे। इस प्रकार की निरर्थक, अनिश्चित और सूती-सूतायी वातों से प्रारम्भ करने हए वह कर्मचारी निरिष्ट स्थान कर जा पहुँचा। उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़े छेद में बहुत सारी कड़े दृष्टर-दृष्टर विकरी पड़ी है। अफसरओं के अनुसार धारणा बनाने हए उन्होंने नममन वीचियों कड़ों में ने कुछ कड़ों का एक समूह चुन लिया और उह विचार कर लिया कि उनमें से एक तो अबुल फजल की कड़ होगी तथा ऐसे उनके उन परिवर्ती की होंगी जो उनके साथ ही उस घात में मारे गये होंगे। उनका इसन यह था कि उन जार या पाँच कड़ों में से अबुल फजल की कड़ को किस प्रकार पहचाना जाए। यह बहुत सरल प्रतीत हुआ। इन जार या पाँच कड़ों में से एक उन उन्ह कड़ों से कुछ इंच अधिक लम्बी थी। सुरुदत्त कर्मचारी के लिए वह पर्याप्त और बहुत बड़ी बात थी। महान् लक्ष्मण के लम्बानित दरबारी को उफनाने के पश्चिम स्थान के हृप में इसे दूरत चहचान लिया गया था। सुरुदत्तीय रंजिकाओं में भी इस तथ्य को इसी प्रकार लक्षित कर दिया गया। इसके इर्द-गिर्द कमरा बनाने के लिए और लक्ष्मण, एक स्थायी रूप में देवभाल करने वाले का बेतन भूगतान करने के लिए कुछ उन-गाँव मंजूर कर दी गयी थी। उस समय से इतिहास और सुरुदत्त के असाध्यान विचारी-रण विवर ही गये हैं कि वे उस स्थान को अबुल फजल की हत्या के रूप में सबन को जैशिक मान्यता दें।

सुरुदत्त कर्मचारी जो इन बातों का जान होना चाहिए था कि वह उन असम्भव जार्य करने जा रहा था। इसीके माध्यमाध्य, अबुल फजल की कड़ के लम्बान्त में अनिश्चितता के कारण उसके मन में अनेक सम्बद्ध प्रश्न अधिक उत्पन्न हो गया, सर्वाधिक चुलच्छ हो गया। अपनी हत्या के समय अबुल फजल के दरबार का एक अति प्रिय व्यक्ति था और उसकी गणना उनके लक्ष्मणों में की जानी थी—ऐसी शोषी बचाई है। यदि यह शोषी नहीं थी ? उन्ह का जो नहीं, यह क्या कारण है कि अबुल फजल ने अपने प्रिय लक्ष्मणों की जान ली ? उन्ह का जो नहीं, यह क्या कारण है कि अबुल फजल ने अपने प्रिय लक्ष्मणों की जान ली ? उन्ह का जो नहीं, यह क्या कारण है कि अबुल फजल ने अपने प्रिय लक्ष्मणों की जान ली ?

मंकवरों के विजाल लम्बूदों का निर्माण कहकर आममान पर चढ़ाया जाता है ? यह छोटा-न्मा प्रश्न ही इतिहास के विद्याधियों के समझ पह तथ्य स्पष्ट कर देने में पर्याप्त समय होना चाहिए कि मुस्लिमों ने अपने नृतक व्यक्तियों के लिए कभी भी विजाल, उत्तुग भंकवर नहीं बनवाए, और दूसरी बात यह है कि अबुल फजल दरबार पर आधित एक मामूली लादमो था, जिनके लिए अकबर लेशमान भी परवाह नहीं कर सकता था।

जब अकबर ने स्वयं ही अबुल फजल की कड़ को कोई परवाह नहीं की अब वह उसकी कड़ की पहचान में वह असमय रहा, तो ४५० वर्षों के बाद, यिना किसी विशिष्ट आधारभूत सामग्री पास में नहीं, नगम्य क्षेत्र में विकरी पड़ी संकड़ों कड़ों में से अबुल फजल की कड़ को किस प्रकार पहचान सकने की कोई आशा कोई पुरातत्त्व-कर्मचारी कर सकता था ?

ये उदाहरण इस बात के लिए पर्याप्त होने चाहिए कि पुरातत्त्व और इतिहास के कर्मचारी और विद्याधी-रण ऐतिहासिक (मध्यकालीन) स्थलों के सम्बन्ध में पुरातत्त्वीय पहचान की ओर अधिक विशेष ध्यान न दें, उन पर अत्यधिक विश्वास न करें। विभिन्न अन्तः-प्रेरणाओं, मनोभावों के कारण जूठी-सच्ची बातें लिखी गयी हैं। सभी पुरातत्त्वीय अभिलेखों की, अत्यन्त सावधानीपूर्वक संशोधित करने, पुनः देखने-भालने और संकलित करने की आवश्यकता है।

विचार ठीक, सही है। हमारा प्रयास थी हेवेल के दृष्टिकोण को मर्ही मिथ्करने का है।

थी हेवेल ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भिक भाग में लिखा है—“भारतीय कला की कुछ-कुछ किकर्तव्य-विमुद्दिकारी पूरबमूलयों में से अपना मार्ग प्रज्ञस्त करने वाला विद्यार्थी द्वारा प्रयोगीय लेखकों के बर्मीकरण और विज्ञेयज्ञ द्वारा प्राप्त संभवित हो जाता है। इन सब गलत छान्त धारणाओं का मूल कारण एक निश्चित विचार है—वह यह विश्वास है कि हिन्दू मस्तिष्क में सत्य-सौन्दर्य की भावना सदैव लुप्त रही है, और भारतीय कला में जो भी कुछ महान् है, उसका मुझाव अबवा प्रथम परिचय विदेशियों द्वारा ही दिया गया है।

फर्घ्युसन इन पूर्वांशों से किसी भी प्रकार अचूता, मुक्त नहीं था, और मुसलमानी-काले की भारतीय वास्तुकला के बारे में उसका विज्ञेयज्ञ आजकल प्रचलित इस जन-विश्वास की पुष्टि करता है कि हिन्दू और जिहादी मुसलमानों के आदर्शों के बीच एक खाइ निश्चित रूप में है, और कि जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनान्तरगत मुग्ल वास्तुकला का चरमोत्कर्ष उन हिन्दू-प्रभावों को दूर कर देने के बाद ही सम्भव हो पाया था जिन्होंने भारतीय-मुहम्मदी कला की तथाकथित ‘मिथित’ शैलियों को प्रभावित किया था। फर्घ्युसन स्पष्ट रूप में घोषणा करता है कि जहाँगीर और शाहजहाँ के निमिणों में हिन्दुत्व के कोई लक्षण, चिह्न नहीं हैं... और सन् १३६३-६४ ई० में तेमूरलंग द्वारा पुनर्निमित्त समरकल्द को वह बस्ती बताता है जो उस शैली पर प्रकाश हालेगा जिसे मुग्लों ने भारत में प्रचलित किया।

“भारतीय कला के मूलोदगम के लिए भारत से बाहर आकर्षे की इन लगातार दृति के परिणामस्वरूप अवश्य ही झूँके, असत्य निष्कर्ष निकलेंगे। आगरा-मिथित ताजमहल और मोती मस्जिद, दिल्ली की बामा मस्जिद और बीजापुर की शानदार मुहम्मदी इमारतें मुडेंग, इमोई, लजुराहो, खानियर और अन्यत्र बनी—न कम शानदार हिन्दू वास्तुकलात्मक शानदार इमारतों के कारण ही संभव हो पायों... जिनमें इस्लाम को चार चाँद लगाने के लिए हिन्दू प्रतिभा का उपयोग किया गया था...”。 व्यक्ति को इसका स्रोत आय-

मध्यकालीन वास्तुकला हिन्दू है—मुस्लिम नहीं

मुस्लिम यासन के ५०० वर्षों में और उसके बाद विट्ठि शासनावधि के २०० वर्षों में किये गये प्रचार-कार्य ने बृद्धिजीवियों के दिमागों को इस दृष्टिकोण कर दिया है कि वे सोग भारत के सभी ऐतिहासिक भवनों को इस्लामी वास्तुकला की उत्पत्ति और उसीके नमूने समझने लगे हैं। किसी दौरानिक इवाहि में निरन्तर ज्ञानक कवयों से होने वाली और हानि का यह एक अपेक्ष उदाहरण है।

लहान विट्ठि वास्तुकलाविद् थी ई० बी० हेवेल ने, जो मद्रास और कलकत्ता निष्ठत वास्तुकला सम्बन्धी विद्यालयों के प्रधानाचार्य थे, उस वयस्क भूल का पता लगाकर नैतिक-संसार की महान् सेवा की थी, जिसने इतिहास, पुरातत्व और वास्तुकला के समस्त संसार को तबा ऐतिहासिक भास्तुकला के इतिहासियों की दिग्भ्रमित कर दिया है।

मध्यकालीन वास्तुकला के बारे में थी हेवेल का मत अन्य लोगों के मत के लिया जिल्हा है—इस तथ्य को परख इसी बात से की जा सकती है कि इसकी नमूनित पूर्वक का जीर्णक ‘इतिहास आकिंटेक्चर—इट्स एक्स्प्रेसी, मुक्कर प्रूफ हिस्ट्री फ्राम दि कल्टर मुहम्मदन इन्वेजन ट्र दि एवेन्यू है’ (भारतीय वास्तुकला—शर्षम मुस्लिम आक्रमण से आद्यतन—एक्स्प्रेस एक्स्प्रेसियन, आकार-प्रकार और इतिहास) है इवकि उन्हीं स्मारकों आकिंटेक्चर से है। चूंकि इस्लाम-विरोधी दो वक्तव्यों में से केवल एक ही वक्तव्य, नहीं ही वक्तव्य है, इत्यतिप्रयत्ने यह जान करना आवश्यक है कि उत्तरते वस्तुकलीन भवनों की मुस्लिम कहने का थी परसी शाड़ि का विचार अत्र है, जबकि उन भवनों को हिन्दू कहने वाला थी हेवेल का

इसेन्ट्राल द्वारा भारतीय धरती में रोपित परम्परागत भारतीय संस्कृति में मिलेगा, जो अपनी कलात्मक अभिव्यञ्जना की चरमसीमा पर मुगल आनंदान की स्थापना से पूर्व ही पहुँच गयी थी।

"झांगल-भारतीयों और पर्यटकों को सिखाया-पढ़ाया गया है कि वे पूर्ववर्ती (प्रथम) की प्रज्ञना करें और मुगलों की ललित, सौन्दर्य-भावना की प्रज्ञना के पुल बांधें; बिल्लु जब भारतीय शिल्प और चित्रकलाएं अपने चरमोत्कर्ष पर थीं उस पूर्ववर्ती हिन्दू-काल के विशाल वास्तुकलात्मक निर्माण विरले ही कभी उनका इशान अपनी ओर आकर्षित कर पाते हों, जाह विशालाकार भव्यता और शिल्पकलात्मक-कल्पना में वे किसी भी मुगल-इमारत से बड़-बड़कर हैं। स्वयं 'मुगल वास्तुकला' शब्दावली भी ड्रामक है क्योंकि तब्य तो यह है कि भारत में कोई मुगल निर्माण थे ही नहीं...। बैला हम पूर्वानुमान नगाते हैं, मुगल वास्तुकला अरबों, फारसियों अथवा पश्चिमी निर्माणार्थी की कामल सौन्दर्य-भावना की साक्षी न होकर हिन्दू बला-प्रेमी प्रतिमा को असाधारण मामंजस्यपूर्ण शक्ति की साक्षी है।

"इस कथन की सत्यता न केवल प्रलेखात्मक साक्ष्य से ही प्रदर्शित की जा सकती है जो विश्वमनीय हो। भी सकता है और नहीं भी, अपितु स्वयं अवतों के अकाद्य स्वाध्य से भी प्रदर्शित की जा सकती है।"

"स्वयं नौकदार मेहराब ने भी भारत से ही धार्मिक महत्व प्राप्त किया जिसके कारण जिहादी मुसलमानी निर्माणार्थी ने इसे ग्रहण कर लिया..." इस जाहर स्वयं वही लक्ष्य भारतीय है जिसको देखकर सभी पश्चिमी लेखकों ने मास्तु की देखीय वास्तुकला में जिहादी मुसलमानी वास्तुकला को पृथक् विलिन्दिता प्रदान की थी। यदि यह विचार आज के यूरोप में सभी वास्तु-कला अधिकारियों को विद्योधी दर्तीत होता है, जो उसका कारण यही है कि ऐसी जैसी जैसी ने चित्र, स्पैन, अरेकिया और फारस के जिहादी मुसलमानों ने अपने उपनिषदावन के लिये में भारतीय—मुहम्मदी वास्तुकला को भावन है, तो उनके इन प्रभाव इसलिए बालं ऐतिहासिक साध्य की दृष्टि जिहुल शर्त का लेखा-दीखा नहीं किया है जो भारत में वास्तु-कलात्मक मामणी से अलग होता है।

"उन सभ्य-ओग लघुने विश्व-अभियान पर चले, तब उनके मूर्तिभंजक

धार्मिक-उन्माद के प्रथम शिकार पश्चिमी एशिया के बौद्धों—यूणिन भूति-पूर्वकों के मन्दिर और मठ ही थे। उनके (धार्मिक) कानून के आदेशों के विपरीत जो कुछ उन्हें रोप प्रदान करता था, मूर्तियों की चकनाचूर करके और शिल्पकलात्मक अलंकरण की विनष्ट करके—आली आलों वाले भवनों—पूर्ववर्ती बौद्ध-देवालयों को—जिनकी पुल्ला दीवारें ही गेप रह गयी थीं—प्रायः मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया गया था।

"बौद्ध-अनुयायियों, पुजारियों की पीढ़ियों का अद्यायुक्त माहूचर्य इन अपवित्र देवालयों से फिर भी चलता रहा, और इस्लाम के प्रतिगादकों ने उनको मुहम्मदी भावना से स्पष्ट करना आवश्यक समझा। अतः मेहराब—बुद्ध की मुद्य मूर्ति, प्रतिमा का आला—मक्का नामक पवित्र नगरी की दिशा की संकेतक हो गयी। आस्था के प्रतीक हृषि इसे रेत में अथवा प्रायंना करने की चटाई में छोज लिया गया।

"आलों की प्रतिमाओं और शिल्पकलात्मक अलंकृतियों को दूर कर दी, तथा आपको तुरन्त ही अरबी मेहराब, आडम्बरपूर्ण मेहराब, पवित्र मेहराब आदि उपलब्ध हो जाएंगी।

"भारत में काफिरों के सभी मन्दिरों को अरबी इतिहास-लेखकों ने जो तिरस्तगरपूर्ण नाम दिए—बौद्ध खाना अथवा 'बूद्ध घर'—वे इस्लाम के साथ बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक सम्बन्धों के अनेक प्रमाणों में से हैं। बौद्ध प्रभाव एशिया और यूरोप की सीमाओं से भी अधिक पश्चिम में ज्यादा दूरी तक पैठ गया। श्रोफेसर पिलष्टडसें पेट्री को सिकन्दरिया में अशोक के धर्म-प्रचारकों की उपस्थिति का प्रमाण मिल गया है; और दर्वी शताब्दी और परवर्ती मूरिज राजमहलों व मस्जिदों में तथाकथित अजव-नाल संदूळ मेहराब का सादृश्य सरलतापूर्वक ७वीं शताब्दी के अजन्ता स्थित बौद्ध अध्याय-गृह में कमल-पवित्र मेहराबों में छोज लेने का कारण मिल में भारतीय शिल्पकारों की विद्यमानता है।

"बौद्ध कला पूर्व शताब्दियों में सारे पश्चिमी एशिया में फैल चुकी है, और बौद्ध-हिन्दू कला उस समय चरमोत्कर्ष पर थी जब भारत की मुहम्मदी आदिमणी का प्रबन्ध आपात पहुँचा था।

"अरबी इतिहास-लेखक अलबहनी ने हिन्दू निर्माणार्थी के निर्माण की

देखकर आश्रय और सराहना प्रकट की थी। उसने कहा था, 'हमारे लोग जब उन निर्माणों को देखते हैं, तब उनपर आश्रय करते हैं, और उनका जब उन निर्माणों में अज्ञवय होते हैं—उनके जैसा कुछ निर्माण कर सकना चाहिए कि पाने में अज्ञवय होते हैं—उनके जैसा कुछ निर्माण कर सकना तो दूर की बात है।'

"अबुल फ़ज़्ल ने लिखा था—'यह तो वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारी कल्पना-शक्ति से भी परे की बात है; उनकी समता वास्तव में संसार में कोई नहीं कर सकता।'

"गजनी का मुलतान महमूद हिन्दू-निर्माताओं की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सका। वह जब गजनी लौटा था, तब अपने साथ ५,३०० हिन्दू बन्दी से गया—असंदिग्ध रूप में, जिनमें मेरे अधिक संख्या कारीगरों और शिल्पकारों की थी... मुगल ज्ञानदान के संस्थापक तैमूरलंग ने उनका उपयोग दाँच जताई दी बाद किया था।

"जब मुहम्मदी ज्ञानदानों—अरबों, तुकीया मंगोलों ने स्वयं को हिन्दू-स्थान में मुद्रा रूप में स्वापित कर लिया, तब जिसे हम विशुद्ध जिहादी मुसलमानी या अरबी विशिष्टताएँ कहते हैं उससे प्राचीन भारतीय अथवा बौद्ध—हिन्दू प्रकारों के प्रति प्रत्यावर्तन अधिकाधिक प्रत्यक्ष हो जाता है।

"भारतीय-मुहम्मदी वास्तुकला के फ़र्मूसन ने जो तेरह स्थानीय विभाजन किए हैं, उनमें से गुजरात, गोड़ और नुकीली मेहराबों के बावजूद बीजापुर के विभाजन भी सामान्य कल्पना और विवरण में पूरी तरह हिन्दू है। जैसा कल्पन कहता है, अहमदाबाद की जामा मस्जिद और अन्य मस्जिदें 'प्रत्येक विवरण में—प्रत्येक प्रकार में हिन्दू अथवा जैन है।' नवाचिक महत्वपूर्ण दी शैलियों में अधृत मुगल और बीजापुर शैलियों में, कल्पन और अन्य सभी लेखकों ने हिन्दू तत्त्व की पूरी तरह उपेक्षा कर दी है, और उन दोनों शैलियों को भारत से बाहर का समझ लिया है... ताजमहल और बीजापुर के महान् स्मारकों की प्रेरणा कहाँ से आयी—इस रूप का वता लगाने के लिए हमें जिस कला का अध्ययन करना है, वह भारतीय कला ही है, न कि अरबी, प्राचीन अथवा पूरोषीय कला। सेंट पाल बीजापुर के महान् रमारक उनसे कही अधिक भारतीय हैं।"

दिल्ली को लूटने और जलाने वाले घोर, चिकट इस्लामी आक्रमणकारी तैमूर लंग ने स्मृति-प्रन्थों में पाप-स्वीकार किया है कि मध्यकालीन मुस्लिम लोगों में किसी भी प्रकार की निर्माण-कला-कौशल का इतना अमाव था कि उनको उन्हीं हिन्दुओं के जीवन सुरक्षित रखने के लिए बाध्य होना पड़ा जिनके प्रति वे घोर धृष्णा का भाव हृदय में रखते थे। इसका कारण मान्न इतना था कि दिल्ली से उन लोगों को सुदूर इस्लामी प्रदेशों में भेज दिया जाय जहाँ जाकर वे लोग भारत में बने हिन्दू-मवनों के समान ही भव्य और सुन्दर भवन बना सकें। तैमूर लंग ने पर्यंतेक्षण किया है कि बन्दी बनाए गये हिन्दुओं का खुला कल्पे-आम करने का आदेश देने से पूर्व मैंने हृकुम दिया कि उन लोगों में से, जो अपने-अपने शिल्प में कुशल कारीगर और यन्त्र-विद हों, उनको छाटकर एक तरफ़ कर दिया जाय; इसलिए कुछ हजार शिल्पकारों को छाटा गया और मेरे अगले आदेशों की प्रतीक्षा की गई। इन सब लोगों को मैंने उपस्थित शाहजादों और अमीरों में तथा मेरे ही अधिराज्य में अन्यत्र सरकारी काम पर नियुक्त व्यक्तियों में बौठ दिया। मैंने, अपने साम्राज्य के केन्द्र समरकन्द में एक ऐसी जामी मस्जिद बनवाने का निश्चय किया था जिसकी तुलना किसी भी देश की मस्जिद न कर सके; अतः मैंने आदेश दिया कि सभी निर्माता तथा संग-तराश मेरी अपनी विशेष सेवा के लिए अलग रखे जाएं। ('मलफूजाते-नैमूरी' का ईलियट और डासन कुन अनुवाद, भाग III, पृष्ठ ४४७)।"

ऊपर दी गयी तैमूर लंग, अबुल फ़ज़्ल, अलबर्नी और महमूद गजनी की स्वीकृतियाँ श्री हेवेल के इस पर्यंतेक्षण को पुष्ट करती हैं कि विश्व के किसी भी भाग में जिहादी मुसलमानी कला नाम की कोई वस्तु नहीं है, भारत में होने का तो प्रश्न ही नहीं है। समरकन्द, बगदाद, मक्का और सिकन्दरिया जैसे सुदूर देशों में भी सभी प्राचीन और मध्यकालीन भवन हिन्दुओं द्वारा विकसित वास्तुकलात्मक शैलियों, तकनीकों और गुणों के अनुरूप ही बनाए गये थे।

परसी बालन, फ़र्मूसन और उन्हीं का अनुसरण करने वाले विश्व भर के अन्य लोग मिथ्याचारी जिहादी मुसलमानी वास्तुकला में अपना अचिकर

विश्वास दसाकर छोपित हुए हैं। विहारी मुलतानी वास्तुकला उनकी विश्वास दसाकर छोपित हुए हैं।

इस छोपर हेवेल सत्य के बहुत ही विकट पहुँच रहा था। किन्तु उपर कल्पना का एक भाग ही है। विहारी मुलतानी वास्तुकला उनकी विश्वास दसाकर छोपित हुए हैं। हेवेल यह मठ स्थापित करने में वित्कुल सही जानकारी ही निकली रही। हेवेल सहज स्थल में ही मही है। धर्मान्धि चुगामदिवों और चाटुकारों द्वारा मध्यकालीन इस्लामी तिथिवृत्तों में किए गये हे दावे निराधार, असत्य हैं कि मुस्लिम मुलतानी और दरबारियों ने बहुत भारे भवनों का निर्माण कराया था। उनपर कभी भी, कोई विश्वास नहीं करना चाहिये।

केवल 'आडबहत हिन्दू राजमहल है', 'कलहपुर नीकरी हिन्दू राजमहल है', और 'आगरे का नामकिना हिन्दूमहल है' शोपक वाले मुश्चिद्द शोप-जन्मी ने इन्होंने दूष ते हिंदू किया जा चुका है, करमोर से कन्या-कुलायि तक आगरे ने नियुक्त करी मध्यकालीन ऐतिहासिक भवन असंदिग्ध रूप में मुस्लिम पूर्वजात के हिन्दू-महल है। उनको तो केवल विकित व शब्द लिया जाना और बाद में मुस्लिम उपयोग में ले जाया गया था। यह बात है कि दरबारियों द्वारा नक्काशों और मस्तिशों के रूप में उपयोग में लाये जाने को वे सभी भवन हिन्दू ननिटों और भवनों जैसे दीख पड़ते हैं। अर्थात् इन्हें, मुख्यत्व जौर वास्तुकला के विश्वायियों व विद्वानों तथा ऐतिहासिक घटकों के दर्शनायियों को इस नवी उपलब्धि का ज्ञान हो जाना चाहिए। इस उनको कर्त्ता उपर्याप्ति कराया जाए, जनुमानों, दक्षियानुभी करनामों, निदानों व चर्चन-कुर्त्तों में विवरण कर सुधार कर लेना चाहिए।

अब यह देखें की उनकों ने की विचित्र सुधार करने की आवश्यकता है अर्थात् वे जान, जिनको ने मुस्लिम प्राचुर्य के अन्तर्गत बने विश्वास करते हैं, जानकारी के मुस्लिम वास्तु विवरण हीने से बहुत जहल ही निर्मित हो चुके हैं, मुस्लिम वास्तुविवरणों में उन छड़ों को हापिया लिया जा और अपने

ही उपयोग में लाने लगे थे। कदाचित् उनको भी यही जानकारी थी, क्योंकि हम, उपर उनका यह वक्तव्य पहले ही उद्धृत कर आये हैं कि "प्रलेखात्मक साध्य विश्वसनीय भी हो सकता है, और नहीं भी हो सकता है।" इस बारे में पुनः श्री हेवेल सहज स्थल में ही मही है। धर्मान्धि चुगामदिवों और चाटुकारों द्वारा मध्यकालीन इस्लामी तिथिवृत्तों में किए गये हे दावे निराधार, असत्य हैं कि मुस्लिम मुलतानी और दरबारियों ने बहुत भारे भवनों का निर्माण कराया था। उनपर कभी भी, कोई विश्वास नहीं करना चाहिये।

६

आक्रमणकारी तैमूरलंग की स्वीकृति— पुरानी दिल्ली का जामा-मस्जिद हिन्दू मन्दिर है

उच्चादी इस्लामी तिथिवृत्तों और प्रबन्ध विटिश इतिहासकारों ने अनजाने ही पर्याप्त समय से यह छूठी कथा प्रचारित कर रखी है कि पीछी के मुश्ल बादशाह शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली की स्थापना की थी और इसके सातकिले ब जामा-मस्जिद का निर्माण कराया।

शाहजहाँ की ओर से किए जाने वाले उन तीनों दावों को इतिहास में कोई आधार प्राप्त नहीं है। पुरानी दिल्ली का भूलोदगम, कम-से-कम, पाष्ठों के समय से तो ही ही क्योंकि महाभारत में निगमबोध-घाट जैसे दिल्ली के अनेक विशिष्ट स्थानों का उल्लेख पर्याप्त संक्षय में किया गया है। सातकिला एक प्राचीन हिन्दू किला है। और तथाकथित जामा-मस्जिद एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर है—इसका साक्षी अन्य कोई छोटा-मोटा व्यक्ति न होकर सबसे आक्रमणकारी तैमूरलंग है जो शाहजहाँ के राजगढ़ी पर बैठने के २३० वर्ष पहले दिल्ली पर महामारी की तरह ला गया था।

शाहजहाँ को दिया जाने वाला ज़ि-यश सब्य ही इस दावे की असत्यता साक्षात् है। यदि शाहजहाँ को पुरानी दिल्ली स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है, तो सातकिले और तथाकथित जामा-मस्जिद का पृथक् उल्लेख कीजिए। क्या वे दोनों अद्यत पुरानी दिल्ली के ही अंदर नहीं हैं? यही तथ्य, कि शाहजहाँ को अद्यत एक समृद्ध नगर स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है और फिर उसी नगर के मध्य भवन-निर्माण करने का यह भी दिया जाता

है, प्रदर्शित करता है कि ये तीनों दावे ही असंगत, अनियमित हैं। इतिहास में इनका कोई आधार नहीं है।

हम जब यह कहते हैं कि इतिहास में इनका कोई आधार नहीं है, तब हमारा भाव यह होता है कि शाहजहाँ द्वारा इस जामा-मस्जिद को बनवाने के बारे में किए जाने वाले दावे की पुष्टि करने के लिए न तो शाहजहाँ के दरबारी-प्रलेखों में और न ही अन्य किसी व्यक्ति के पास कागज का टुकड़ा भी है। इसके विपरीत, शाहजहाँ से २३० वर्ष पूर्व हुए एक मुस्लिम आक्रमणकारी की साक्षी हमें उपलब्ध है जिसमें वह कहता है कि तथाकथित जामा-मस्जिद एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर है। भारत में अनाहूत, बलात्, अपने बर्बर नर-पिण्डाच झुण्डों के साथ प्रवेश करने वाले विदेशी इस्लामी आक्रमणकारियों की लम्बी सूची में सर्वाधिक कुख्यात व्यक्तियों में एक व्यक्ति यह तैमूरलंग है। भारत के विभिन्न भागों पर किए गये उसके अत्यन्त भयावह नर-संहारों में अनेकानेक कूरताएँ समाविष्ट की थीं। अनेक बार तो, एक ही अवसर पर लाखों की संख्या में हिन्दुओं को मार-मूर्खी की तरह काट डाला गया था। इन भीषण नर-संहारिक-कुकूत्यों में से कुछ तो पुरानी दिल्ली की गलियों में सन् १३६८ ई० में ही किए गये थे जिसमें के अवसर पर। पुरानी दिल्ली में उस समय के पड़ाव के सन्दर्भ में ही तैमूरलंग ने तथाकथित जामा-मस्जिद का हवाला दिया है। 'मलफुजाते-तैमूरी' शीर्षक में लिखित अपने संस्मरणों में उसकी टिप्पणियों का निहितार्थ स्पष्ट है कि तथाकथित जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर था। अधिक महत्व की बात यह भी है कि तैमूरलंग उस शाहजहाँ का प्रत्यक्ष पूर्वज है जिसे पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद बनाने का झूठा निर्माण-श्रेय दिया जाता है। तैमूरलंग शाहजहाँ के बंश-वृक्ष में पितृ-पक्ष की लगभग १०वीं पीढ़ी पूर्व का पूर्वज है। फिर, शाहजहाँ उस भवन का निर्माता कौसे हो सकता है जिसे उसके पूर्वजों में से एक पूर्वज ने लगभग दस पूर्व-पीढ़ियों के अवसर पर देखा था।

हम, आगे तैमूरलंग के संस्मरण 'मलफुजाते-तैमूरी' के अपेक्षी अनुवाद का हिन्दी भाषान्तर प्रस्तुत करते हैं (इलियट और डालन, भाग III, पृष्ठ ४४५-४४६)।

पुरानी दिल्ली नगरी को लूट

महीने की ईदी हारीख को हुई कुछ घटनाओं के कारण पुरानी दिल्ली नगरी को लूट हुई। जब सैनिक हिन्दुओं को बन्दी बनाने गये... तो उनमें से बहुत-से हिन्दुओं ने अपनी-अपनी तलवारे खोंच ली और प्रतिरोध, मुकाबले को तैयार हो गये। इस प्रकार युद्ध की चिनगारियां प्रज्ञवित हो गईं और लहापनाह व सीरी से पुरानी दिल्ली तक सम्पूर्ण नगर में फैल गये। राजमा तुक़ मार-काट व लूट में लग गये। हिन्दुओं ने अपने हाथों से अपने घरों में आग लगा दी, उनमें अपनी महिलाओं और बच्चों को जला दिया, और लड़ाई के लिए दौड़ पड़े और मारे गये। उन्होंने युद्ध में अत्यन्त उत्तमाह, तंबो, कृती व बहादुरी दिखायी। वृहस्पतिवार को और शुक्रवार की नारी यात्रा, लगभग १५,००० तुक़ मार-काट करने, लूटने और विनाश करने में लगे रहे। शुक्रवार की प्रातः होने पर, मेरी सारी सेना, जो अब मेरे नियन्त्रण में न रही थी, नगर को और चली गयी, और उसने नर-संहार करने, लूटने तथा लोगों को बन्दी बनाने के अतिरिक्त अन्य कुछ सोचा ही नहीं। अगला, अनिवार का दिन भी ठीक उसी प्रकार चीता, तथा लूट की सामग्री इनी अधिक थी कि प्रत्येक (सैनिक) व्यक्ति को ५० से १०० तक छापड़ी, और तब बच्चे बन्दी के रूप में मिल गये। अगले दिन रविवार को मुझे बताया गया कि काफिर हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या पुरानी दिल्ली की मस्जिद-जामी में एकत्र हो गये थे—अपने साथ शस्त्रास्त्र और खाद्य-नामग्री भी ले गये, और अपनी सुरक्षा—प्रतिरक्षा करने की तैयारी कर रहे थे। मेरे कुछ सैनिक बब उधर की गश्त पर गये, तो उनको मार डाना गया। मैंने जहाँपनाह परिक और अली सुलतान तबाही को लुटन आदेश दिया कि वे कुछ सैनिक अपने साथ ने जाएं और काफिरों व मूतिपूजकों से ईंधर के घर को साफ कर दें। उन्होंने तदनुसार इन काफिरों पर हमला किया और उनको घान से मार डाना। पुरानी दिल्ली तब लूट ली गई... सीरी, जहाँपनाह और पुरानी दिल्ली नाम की दिल्ली की नीमी नगरियाँ तब लूट ली गई थीं... सीरी से पुरानी दिल्ली तक पर्याप्त था एक पर्याप्त किला है!... काफिरों के जिहाद करने के लिए मैं

हिन्दुस्तान आया था। कुछ लाख काफिरों और मूतिपूजकों को मैंने भीत के घाट उतारा था... मैं तीन कोस चलकर फिरोजाबाद के किले तक गया, जो जमुना नदी के किनारे पर स्थित है और सूलतान फिरोजशाह द्वारा बनाए गये निर्माणों में से एक है। मैं स्थल-निरीक्षण के लिए इसके अंदर गया। मैं मस्जिद-जामी गया, जहाँ मैंने अपनी पूजा-अचंता (नमाज) पढ़ी और सर्वशक्तिमान प्रभु की कृपा के लिए सराहना की तथा उसका धन्यवाद किया।"

इस्लामी शब्दावली में 'जामी (जामा) मस्जिद' अथवा 'मस्जिद-जामी' 'मुख्य मन्दिर' का शब्दक शब्द है। तैमूरलंग कहता है कि काफिर लोग अपनी रक्षा करने के लिए मस्जिद-जामी में जमा हो गए थे। वह आग कहता है कि उसने उस भवन का काफिरों और मूतिपूजकों से रहित करने का आदेश दिया। तैमूरलंग उस भवन को मूतिपूजकों से रहित करने का आदेश तबतक नहीं दे सकता था जबतक कि हिन्दू लोग उस भवन में मूतियों की पूजा न करते रहे हों। तैमूरलंग ने जामा-मस्जिद के स्थल से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सूत्र भी हमें प्रदान किया है। वह कहता है कि जब हिन्दू-प्रतिरोध से पुरानी दिल्ली को बिलग कर दिया गया, तब वह तीन कोस अर्थात् छः मील चला और सबसे पहले फिरोजशाह कोटला पहुँचा। वहाँ उसने उस स्थल का निरीक्षण किया और फिर एक लाख हिन्दुओं को हत्या करने तथा हिन्दुओं द्वारा अपने मन्दिर के रूप में नित्य पूजा करने वाले उस भवन को हथिया लेने का सुअवसर प्रदान करने हेतु अल्लाह का धन्यवाद करने के लिए मस्जिद-जामी चला गया। पुरानी दिल्ली की जामा मस्जिद के रूप में जात भवन सीरी से लगभग छः मील है और फिरोजशाह कोटला से मुश्किल से एक मील की दूरी पर है। अतः यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि तैमूरलंग उसी भवन की ओर ईंगित कर रहा है जिसे बाज भी पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद के रूप से हम सब याद करते हैं। यह भी स्पष्ट है कि ५७३ वर्ष पूर्व जब तैमूरलंग पुरानी दिल्ली में था, तब तथा कथित जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर था जिसमें तैमूरलंग के लूट-घाट करने वाले, आग लगाने और नर-हत्या करने वाले नर-दाक्षसों से अन्तिम संघर्ष करने के लिए हिन्दू लोग एकत्र हो गये थे।

पुरानी दिल्ली वह इसलिए कहताती कि यह प्राचीनतम सबसे पुरानी दिल्ली है। प्राचीन दुर्ग अर्थात् पुराना किला के समान ही यह कम-से-कम बहारत-युग की है। यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि आज से ३५०० वर्ष पूर्व भी तंमूरलंग इसे पुरानी दिल्ली ही कहता है। तंमूरलंग ऐसे फिरोदगाह कोटला जाकर और फिर तथाकथित जामा-मस्जिद जाकर पुरानी दिल्ली और जामा-मस्जिद का स्पष्ट निर्देश करता है—ठीक उसी प्रकार, जिन नामों से ये दोनों स्थल आज भी, २०वीं शताब्दी में पुकारे जाते हैं।

यदि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली की स्थापना की होती, तो यह पुरानी दिल्ली न पुकारी जाती क्योंकि यह तो उस समय नवीनतम दिल्ली होती थी विश्वास लोगों की भारतीय राजधानी कलकत्ता ही थी। किन्तु पुरानी दिल्ली का यह नाम अविस्मरणीय युगों से चला आ रहा है क्योंकि प्रत्येक पीढ़ी का यह मूल-दिल्ली के नाम में ही जात रहा है। उस प्राचीन नगर में जो भी इसके प्राचीन हिन्दू-भवन विद्यमान हैं जो घुमावदार गलियों में हैं किन्तु तंमूरलंग के विघ्वासों, अपहरणों के फलस्वरूप जिस प्रकार मुख्य हिन्दू मन्दिर जामा-मस्जिद में परिवर्तित हो गया, उसी प्रकार भगवती काली के प्राचीन हिन्दू मन्दिर अब काली मसिजिदों के नाम से सम्बोधित हो रहे हैं। हमारीमन्दिर में, यह बात सम्पूर्ण भारत में हुई है। अनेक नगरों में मध्य-कालीन काली मसिजिदें हैं। आधुनिक उद्दृष्टि वाली में 'काली' का अर्थ अवाग वर्ण है इवकि वे सभी काल्यनिक, कल्यनातीत मसिजिदें अनिवार्यतः मूर्छन्वित वर्ण हैं। इनपर सफेदी की हुई है। उस विसंगति का स्पष्टीकरण है। मसिजिद 'काली' वर्णों कहताती है जबकि उनपर सफेदी पुती हुई उनके प्राचीन हिन्दू नाय लाख-लाख चलते आ रहे हैं।

तंमूरलंग की विषयी का अन्य प्रमाण इस तथ्य में उपलब्ध है कि यिन्हीं के यी नाम ऐसे प्रचलित नहीं हैं जो सिद्ध करते हों कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली में जामा-मस्जिद बनाई थी।

शाहजहाँसमकालीन दृष्टि से भी यह भवन मन्दिर है। इसके गुम्बदों के भीतर उन्हें यह ही मस्जिद पुर्णीय नपूर्ण दृष्टव्य है। मुस्लिमों के

गुम्बदों पर पुष्प-नमूने नहीं होते। दृष्टान्त के रूप में, चाणक्यपुरी में स्थित पाकिस्तानी राजदूतावास के गुम्बद देखे जा सकते हैं। इस तथाकथित जामा-मस्जिद में सीधे, स्थूणाकार सुनहरी शिखर भी हैं। दूसरी ओर, मुस्लिम शिखरों की समाप्ति अधंचन्द्र और तारक में होती है। जामा-मस्जिद के सभी प्रवेशद्वार दिल्ली के लालकिले, आगरे के लालकिले और फतहपुर सीकरी के प्रवेशद्वारों के नमूनों से ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। दिल्ली और आगरे के लालकिले तथा सम्पूर्ण फतहपुर सीकरी हिन्दू संरचनाएँ सिद्ध की जा चुकी हैं। इस सम्बन्ध में, हम पाठकों का ध्यान थी हंसराज भाटिया द्वारा लिखित 'फतहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर' एवं 'आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है' शीर्षक दो शोध-पुस्तकों की ओर आकृषित करना चाहते हैं।

अन्य महत्वपूर्ण विवरण यह है कि उन सभी भारत-स्थित विश्वास मध्यकालीन भवनों में, जिनको मुस्लिम-मस्जिद होने की बात कही जाती है—चाहे वे पुरानी दिल्ली की तथाकथित जामा-मस्जिद ही अथवा अन्य निर्जन, दुर्गम स्थान में बनी एकाकी मस्जिदें हों, तीन मेहराबों वाले उपासना गृह बने होते हैं। एक खुदा और एक पंगम्बर की बात करने वाले इस्लामी धर्मशास्त्र में इनका कोई महत्व नहीं है। किन्तु तीन मेहराबों का हिन्दू के लिए तो विशेष महत्व है क्योंकि हिन्दू लोग बहारा-विष्णु-महेश की देव-तथी में विश्वास करते हैं। वह विश्वास करता है कि देव-तथी के बीचों रूप ही विश्व का क्रमशः सूजन, पालन और विघ्वास करते हैं। पुरानी दिल्ली की तथाकथित जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर है क्योंकि इसमें हिन्दू देव-तथी के लिए उपर्युक्त तीन मेहराबें हैं।

इस प्रकार, किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर, पुरानी दिल्ली की तथाकथित जामा-मस्जिद एक प्रत्यीन हिन्दू मन्दिर ही सिद्ध होती है। प्रत्येक सूज इसी तथ्य की ओर दृग्भाव करता है कि यह उपासनागृह पाण्डवों की प्राचीन दिल्ली का सर्वप्रथान, मुख्यतम मन्दिर रहा होगा। यदि इसके चारों ओर पुरातत्त्वीय खुदाइयों की जाएं तो आगा है कि इस भवन के असाधारण ऊंचे मंज के नीचे एक तलघर दिखाई दे जहा हिन्दू मूर्तियों को उस-जलूल ढंग से ढूसा अथवा गाढ़ दिया हो।

अभी हाल में ही, कुछ मीनारों में दरारें पड़ जाने की खबर सिखी थी।

सम्भव है कि इन तथाकथित मीठोरों के ऊरोरी भाग तैमूरलंग अथवा उसके परवर्तियों द्वारा विजयोपरान्त जोड़े गये इस्लामी परिवर्धन हों। भवत के केन्द्रीय प्रांगण के चारों ओर बने हुए विश्वाल छायादार बरामदे व लम्बी दीर्घी हैं उस प्राचीन मन्दिर की धर्मशालाएँ हो सकती हैं।

ऐसी अनेक विचारणीय बातें व ग्रनाम हो सकती हैं। हमारी शोध पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद नाम से पुकारी जाने वाली इमारत के मूलोदगम में दुबारा, आदित, अन्वेषण की आवश्यकता की संकेतक है। यह जाहाजिक और अन्धविश्वास अनुचित है कि यह भवत अपनी प्रारंभिक जड़दस्त्या से ही मस्जिद है। इतिहास के विद्वावियों, विद्वानों, अनुसन्धानकर्ताओं, पुरातत्वज्ञों, पर्यटकों, पर्यटन-कर्मचारियों, आगन्तुकों और मार्गदर्शकों को इब भाव कही-मूनी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिये जबकि उभी साहप इस निष्कर्ष को और इंगित करते हैं कि तथाकथित जामा-मस्जिद पुरानी दिल्ली नामक प्राचीन नगरी के मुख्य मन्दिर के रूप में ही स्थापित हुई थी। जो लोग कहते हैं कि यह शाहजहाँ द्वारा ही बनाई गई मस्जिद है, उनके दावे को परखने का सीधा-साधा और शीघ्र परीक्षण है। उनको वे प्रत्येक, दस्तावेज प्रस्तुत और प्रकाशित करने चाहिये जो सिद्ध करते हैं कि शाहजहाँ ने इनका निषण किया था और उसे वर्तमान न्यासियों के वृत्तों को साँझा गया था।

: १० :

पुरानी दिल्ली की स्थापना पाण्डवों ने (न कि शाहजहाँ ने) की थी

यह जन-विश्वास निराधार, अयुक्ति-युक्त है कि 'पुरानी दिल्ली' नगर की स्थापना पाँचवीं पीढ़ी के मुगल बादशाह शाहजहाँ ने की थी। इतिहास में इसका कोई आधार नहीं है। पुरानी दिल्ली की विद्यमानता, इसका अस्तित्व पाण्डवों के युग तक सोज निकाला जा सकता है। पाण्डवों की राजधानी, सुप्रसिद्ध इन्द्रप्रस्थ नगरी में पुरानी दिल्ली नामक नगरी के साथ-साथ मीलों दूर तक प्राप्त विशाल भवनों का छवस्त सेव्र भी सन्मिलित था।

इस्लामी आक्रमणों की एक हजार वर्षीय और दिल्ली पर शासन की छः सी वर्षीय अवधि में विदेशी प्रचारकों ने निरन्तर और अयक प्रयत्न किये कि सभी नगरों और महत्वपूर्ण भवनों के हिन्दू मूलोदगम की बात जन-मानस से विलुप्त हो जाये और यह विश्वास मन में जम जाय कि ये सभी मुस्लिम संरचनाएँ थीं। जिटिश लोगों ने भी, जो उन मुस्लिमों के उत्तराधिकारियों के रूप में भारत में सर्वोच्च सत्ता की भाँति सत्तासीन हुए, पूर्वकालिक धूर्ततापूर्ण दुष्प्रयत्नों से पूर्णतया अनभिज्ञ होने के कारण, उसी निष्या विचार की पुष्टि कर दी और उसे आगे प्रचारित, प्रसारित करना प्रारम्भ कर दिया। १२०० वर्षीय दीर्घकालीन दुराचरण के परिणाम-स्वरूप भारतीय इतिहास सब प्रकार से विकृत हो चुका है। उस घोर, भयावह विकृति का एक नेतृत्वमेषकारी उदाहरण 'पुरानी दिल्ली' नामक नगरी का मूलोदगम है। इसी कारणबश हम इधर-उधर विलरे पड़े उस विशाल माल्य-मूल्य का विवेचन करना चाहते हैं जो अभी भी यह सिद्ध करने के लिए उपलब्ध है कि दिल्ली की महानगरी कम-से-कम उतनी ही पुरानी

है, जिनकी पुरानी महाभास्त्र-युग की कहानी है। दिल्ली-महानगरी से मेरा तात्पर्य न केवल पुरानी दिल्ली नगरी है, अपितु इसमें वे सभी वरिष्ठोंप धर्माचार्य शम्मिति हैं जिनकी नाम-यणना श्री (जिसका ध्रष्टव्य-कथारण 'श्री' किया जाता है), शोङ्क लाल, विजय-मण्डल, पुराना किला, गोर गढ़, दीन दग्धाह, किंचिकरी, तदाकथित निहामुदीन मकबरे के चारों ओर और विजयरंगी कर्णहर, तदाकथित कुतुबमीनार के चारों ओर फैले हए इवमाचार्य, किंचित्ताह बीटना, तपाकथित देवमपुर मस्जिद, और अन्य बहुत नाम एवम्, जनाम मकबरों और मस्जिदों के रूप में की जाती है। वे सभी मानुषिक कर में उन हिन्दुओं के भव्य और विजात मनिदरों, भवनों, छिन्नों और राजमहलों के रूप हैं जिन्होंने दिल्ली की यज्ञस्थी और मुदिशाल, द्विमठ महानगरी की स्थापना की थी।

जनता की विद्या विजय हो रही है जो देश के एक नाम से दूसरे नाम से भी बतायी जा सकती है। इसका नाम है देश-दर्शकिया के विशाल ममताओं का दृष्टि

मानने के लिए विशाल सराय (जिन्हें अर्मेणियालाई कहते हैं) थी। इस विश्वास के बारों और जो धर्मगायत्रीय देखते हैं, वे अधिकांशतः इन्हीं के हैं। मुस्लिम आक्रमणकारियों अथवा वापरकों द्वारा उनका निर्भाग किया जाना नो दूसरी बात रही, उनको तो उन्हीं लोगों द्वारा निर्देशनापूर्वक, मप्रयत्नम्-दूसरोंटा तथा छ्वस्त्र किया गया था। यह नो इस बात का एक दृष्टान्त मात्र है कि बाज जो इतिहास हमें पक्षाया-सिखाया जाना है, वह न केवल विषून है, अपितु उलट-युक्त भी कर दिया गया है। कठोर का मान्यता यह है कि उन्हीं मुस्लिमों को महान् निर्माता मानकर आकाश पर चढ़ाया जा रहा है जिन्होंने प्राचीन हिन्दू-भवनों, राजप्रासादों, राजमहलों और मन्दिरों का बिनाएँ किया था।

इस अनुभूति मात्र में ही दिल्ली का सच्चा इतिहास जानने की महत्त्वात् हो जानी चाहिये। सहायारतकालीन युग में बड़े-बड़े नगरों को प्राय 'प्रस्थ' प्रत्यय-सूचक नाम से पुकारा करते थे; यथा लिलाप्रस्थ (आधुनिक लिलपट), पाणिप्रस्थ (पानीपत), गम-प्रस्थ (आधुनिक अगरा), वृक-प्रस्थ और छल्द-प्रस्थ (दिल्ली)।

पुराना किला उपनाम प्राचीन दुर्गे सामान्यतः सबसे पुराना विश्वमन्त्र भवन माना जाता है, और इसका सम्बन्ध पाण्डवों से रखा माना, विष्णवा किया जाता है। यदि यह स्वीकार किया जाता है कि पुराना किला सबसे पुराना भवन है, तब तो उगी तक-पढ़ति के अनुमार पुरानी दिल्ली (अर्थात् जिसे हम पुरानी दिल्ली कहते हैं) दिल्ली-महानगरी का सबसे प्राचीन भाग ही है।

चिटिंग नोंगो ने पास में ही एक नगर बसाया और उसे 'नयी दिल्ली' नाम से मान इसी कारण सम्बोधित किया कि उब उस्सीने उन्होंनें अतावदी के प्रारम्भ में भारत में अपने जागरन को मुहूर किया उब एक 'पुरानी दिल्ली' पहले ही बिल्कुल थी (यथापि वह 'नयी दिल्ली' संज्ञा भी अमृद्ध त्रै पर्याक्रिये हम आज 'नयी दिल्ली' कहते हैं, वह क्षेत्र ही अवश्य अति प्राचीन भवनों के ऐतिहासिकों में भरपूर है)। नगर का यह भाग 'पुरानी दिल्ली' नहीं कहलाया यदि उसको शाहजहाँ ने बनाया हुआ पर्याक्रिया द्वारे पर तो वह अवश्यों को लवचितम् दिल्ली जात होनी चाहिए

सुमय उन्होंने आनी दिल्ली बसाने का विचार किया था। अतः, यह तथ्य सब लोगों की दृष्टि में स्पष्ट हो जाना चाहिये कि पुरानी दिल्ली का नाम पड़ने का कारण केवल यह है कि प्रत्येक पीढ़ी को ही यह नगर प्राचीनतम् दिल्ली के नाम से जात रहा है, और इसीलिए यह कम-से-कम उतना पुराना है जिसका पुराना महाभारत काल।

है जिसका पुराना महापात्रता नाम है। एक अन्य कारण से भी वह दावा अप्राह्य, अस्वीकार्य है कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली बतायी। कारण यह है कि माना जाता है कि प्राह्यजहाँ ने नामक एक नगर बसाया था। यदि वह बात सत्य है, तो शाहजहाँनाबाद नामक एक नगर बसाया था। यदि वह बात सत्य है, तो पुरानी दिल्ली हमें पुरानी दिल्ली के रूप में न मिलकर शाहजहाँनाबाद अथवा नयी दिल्ली के रूप में मिलती। शाहजहाँ द्वारा एक नयी स्थापित नगरी को दिया गया नाम अकारण ही वायुमण्डल में नष्ट, विलुप्त नहीं हो जाया होगा, और न ही उसका बैकल्पिक 'पुरानी दिल्ली' नाम प्रचलित हुआ होगा। इससे अप्रत्यागित रूप में हमें एक अन्य दोष, विकृति का ज्ञान हो जाता है—वह यह है कि शाहजहाँ और उसके चाटुकारों ने 'पुरानी दिल्ली' नामक नगर के ऊपर अपना 'शाहजहाँनाबाद' नामक नया नाम घोषने की भग्यूर कोशिश की तबाही, वह बुरी तरह विफल रही, क्यों अविस्मरणीय आजीन हिन्दू धरमदर में 'पुरानी दिल्ली' का नाम इतने गहरे, सुपुष्ट रूप में बहे रहा चुका था कि इसकी दुष्प्रयत्न के ६०० वर्षों के काल में भी वह उसाइ न जा सका।

इसमें बड़ा यह कह देना ममीचीन है कि शाहजहाँ ही पहला विदेशी मुस्लिम शासक नहीं था जिनमें प्राचीन हिन्दू दिल्ली का नाम बदलने का बत्त किए। उग्रसंग सभी मुस्लिम शासकों ने पहले भी यह दुप्रथल्यत्व किया था। यही कारण है कि (सौरी के छापटोच्चारित रूप में) 'धी' का स्थापना-अंग असाधारण चिन्हों को दिया जाता है, तुगलकावाद का गियासुद्दीन तुश्णीन का, कुतुबशाही लेख का कुतुबुद्दीन का, सुदूर-स्थित फिरोजशाह कोटा के अमिरिक्ष हीलवास लेख का श्रेष्ठ भी फिरोजशाह को और 'पुराना दिल्ली' लेख का थेंगे शेरशाह को दिया जाता है। शाहजहाँ के प्रतिशासक दूसारे ने भी 'पुराना दिल्ली' के ऊपर 'दीन-पनाह' नाम दोपने का लक्ष्य भी तृप्तिय रिपो किया था। ऐसा नाम जल नहीं पाया था, इसलिए

शाहजहाँ ने भी अपने युग में एक नया इस्लामी नाम देने का यत्न किया। इस प्रकार 'नामकरण' करने के इस लेल में इतिहास-लेखक धोखा ला चैठे हैं और यह विष्वास करने लगे हैं कि प्रत्येक मुस्लिम ने, चाहे उसने मात्र पाँच वर्ष की अवधि के लिए ही राज्य किया हो, बड़े-बड़े भव्य नगरों और शानदार भवनों को बनवाया था, चाहे वह स्वयं अन्य आकमणकारियों द्वारा घुसपैठियों और अपने ही घरेलू संघर्षों में सदा व्यस्त रहा हो। यह परम्परा तो सभी लोगों में विद्यमान है कि के बिजित भवनों अथवा नगरों के नाम बदल देते हैं। क्या हमने स्वयं भी नयी दिल्ली स्थित वायसरीगढ़ हाउस का नाम राष्ट्रपति-भवन नहीं कर दिया? तब किसी भावी इतिहास-लेखक का यह लिखना भूखंतापूर्ण नहीं होगा कि नयी दिल्ली के राष्ट्रपति भवन का निर्माण स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति द्वारा २०वीं शताब्दी में कराया गया था?

शाहजहाँ से बहुत बर्ष पहले भी 'पुरानी दिल्ली' नगर के अस्तित्व का प्रमाण आक्रमणकारी तैमूरलंग की एक टिप्पणी से भी प्राप्त होता है। यह वह कूर व्यक्ति था जिसने सन् १३६८ ई० में दिल्ली में भयंकर नर-हत्याकाण्ड कराया था। यह घटना शाहजहाँ के सिंहासन पर बैठने से २३० वर्ष पूर्व की है। तैमूरलंग ने अपने समृद्धि-प्रन्थ में (इल्लियट और डासन, पृष्ठ ४४२-४४३) 'पुरानी दिल्ली' का उल्लेख किया है। शाहजहाँ द्वारा पुरानी दिल्ली की स्थापना का आभ्रह करने वालों की कायरता अथवा अज्ञानता की कल्पना कीजिये जबकि २३० वर्ष पूर्व ही, स्वयं शाहजहाँ के अपने पुर्वज द्वारा 'पुरानी दिल्ली' के बारे में किया गया उल्लेख हमें प्राप्त ही है। इसी प्रकार भारत के अन्य नगरों की स्थापना करने का श्रेय भी मुस्लिमों को व्यर्थ ही दे दिया गया है—यद्यपि वे सभी प्राचीन हिन्दू नगर हैं। कुछ उदाहरण देखें—अहमदाबाद को बसाने का श्रेय अहमदशाह को, अल्लाहबाद का श्रेय अकबर को और फ़िरोजाबाद व हिसार की स्थापना का वर्ण फ़िरोजशाह को दे दिया गया है यद्यपि वे सब प्राचीन हिन्दू नगर हैं जिनपर विदेशी नाम और निर्माण-ध्वेष घोप दिये गये हैं।

पुरानी दिल्ली की हिन्दू पुरातनता का एक अन्य महत्वपूर्ण संकेतक इसकी प्राचीन रमणीय-भूमि है जो निगमबोध घाट के नाम से प्रसिद्ध है।

विश्व इतिहास के कुछ विलोप्त अध्याय

परमरामन हिन्दू धर्म के अनुसार इमानाम-भूमि नगर के एक अन्तिम छोर पर होती है। निरमदोष घाट पुरानी दिल्ली का उत्तरी अन्तिम छोर ही है, जहाँ इसकी बासिन्दा भारी दीवार को ढेखकर कहा जा सकता है। इस निरमदोष घाट का बारम्बार उल्लंघन हिन्दू महाकाव्य बताता है। इस निरमदोष घाट का बारम्बार उल्लंघन अपने मम्बन्धियों के दाह-महामारी में किया गया है। पाष्ठव-ज्ञानामन अपने मम्बन्धियों के दाह-महामारी में किया गया है।

पुरानी दिल्ली की आवार के इतिहासी अन्तिम छोर पर—उत्तरी अन्तिम छोर के अनुसार ही—अनुसा सदी का राजवाट भाग है। पाष्ठव लोग दिल्ली के इन लोकों के अनुसार ही—इन्दिप्रस्तार वाम पड़ा। पुरानी दिल्ली का राजवाट लोक निरमदोष घाट हक्क का विस्तार होता है। इस वात का अकाद्य घाट है जिसकी दिल्ली पालियों के समय से ही विद्यमान रहा है क्योंकि निरमदोष घाट का उल्लंघन महामारी में बारम्बार किया गया है।

जहाँ यह समझ है कि न्यूयर्क-लालिले का मृतोदगम भी चिर-अदीन वास्तव करने का ही है। वह दुर्दिगम्य प्रतीनि होता है क्योंकि किले के विकास अनुसा सदी के उट का नाम राजवाट उन हिन्दू राजाओं से पड़ा है जो अपने नियम स्वातं और कर्म की पुणि के निए नदी-धारा तक आया रहते हैं।

इन चालिकों ने दोबारे पालियों के बीच से ही मम्बन्ध रखती हैं अपनी सदी, वह नो नियमित है कि नालिला एक प्राचीन हिन्दू राजकुलीन स्वर नर-उनी प्रकार स्थित है जिस प्रकार हम नोमनाय को एक प्राचीन विन्दु रखते हैं, परन्तु इसका नियम कम-ने-कम सात बार तो होता है।

नालिले एक प्राचीन हिन्दू स्थानिक विद्य करने वाला एक अद्वितीय, अनुसार अपने राजकुलीन हिन्दू चिल्ह है जो गजा के अपने 'वाम महल'—विश्व वह जे उट विलोप्त घट में विद्यित होता जा सकता है। अभी तक, सब जे अपने इसका अनुसूत्यं और चालिकोंपुने स्वर में मूरिष्यम अड़ चढ़ के नियमित है जिस उट का विद्य जाना रहा है। अन्तः पाठों में पुनः कम्बल सूत्र विश्व, पाठोंमेंपुने देवे देवा यह गरम से—हृदयगम

करते हैं कि यह चिल्ह एक अद्व चन्द्र नहीं, अपितु तलवारों का एक दोढ़ा है जिसकी मूठे परस्पर मिली हुई है और जिनके फलक ऊपर की ओर सुने हुए हैं। वे तलवार-फलक राज-धक्कित के दोतक हैं जो सम्पूर्ण प्रशासन का आधार है। मूठों के ठीक ऊपर, संगमरमरी फलक के मध्य में पवित्र हिन्दू कलश है। यह राज्य-शासन के पुनीत धार्यार का प्रतिविम्ब है। इसके ऊपर एक कमल-कलिका रखी है जो धन, समुद्रि और शान्ति की प्रतीक है। इस कलिका से एक तुला ऊपर गयी है जिसके दोनों पलड़े यमतल हैं—जो यह धोयित करते हैं कि प्रशासन का मुख्य कार्य सभी लोगों के निए न्याय मुरक्कित, सुनिश्चित करना है। इसी फलक में पूरी तरह चमचमाले हुए मध्य-दिवसी सूर्य के अनेक छोटे-छोटे प्रतिविम्ब देखे हुए हैं, क्योंकि अधिकांश हिन्दू राजकुल अपनी वंशोत्पत्ति सूर्य भगवान् से मानते थे, और उनका प्रभुत्व दिन के प्रचण्ड तेज के समान था जो जबु को झूलसाता था और अपने नाशिकों को अमीष्ट ताप प्रदान करता था। ऊपर बनी हुई मेहराब में विशाद रंगों में चमकते हुए सुनहरी राजकुलीन सूर्य का एक बृहत्तर प्रतिविम्ब है। वह सूर्य फलक को अपनी छत-हर्षी मेहराब में स्थित होकर सम्पूर्ण फलक पर प्रकाश-किरणों को चिकिण करता है। तलवारों के दो फलक-विन्दुओं पर दो शंखाकृति विद्यमान हैं जो भगवान् विष्णु के प्रतीक हैं क्योंकि राजा संदेशक और पालक विष्णु भगवान् का अवतार माना जाता है। दो बड़े-बड़े आकार दाने शंख उस फलकाधार के निचले, दाएँ-बाएँ कोने में भी चित्रित हैं जो सकते हैं।

इस वात की जाँच करती जानी चाहिये कि उपर्युक्त राजचिल्ह पालियों का अवयव ध्यारद्वयी शताब्दी के सम्मान अनंगपाल का अवयव किसी परवर्ती हिन्दू राजा का है, किन्तु नियमित है कि यह इस्तामी अवयव किसी उत्तर-कालीन हिन्दू रा तो नहीं है। यह भी ही सकता है कि यह राज-कुलीन हिन्दू राजचिल्ह अनि विरली और प्राचीन हिन्दू उपर्युक्त हो, जिसे कई शताब्दियों तक लाली-करोड़ों लोगों ने देखा है, किस भी इसे इस्तामी-मूर्णोदगम की वस्तु मानकर भव रह भूल करने रहे हैं। इस राजचिल्ह में अन्य भवनों में बने हए उनी प्रकार के अन्य हिन्दू राजचिल्हों को लौट निकालने की वृत्ति जागृत होनी चाहिये तथा विद्यानों को यह जात करने

को प्रेरणा द्वारा होनी चाहिये कि वे पता सगाएँ कि क्या इस फलक का मम्बता पाण्डवों से हो सकता था।

मम्बद्ध पाण्डवों में हा सकता था।

इस लालकिले के भागों का रूप-रेखांकन 'हृष्णचरित' तथा वाणभट्ट
की 'कलादम्बरी' जैसे प्राचीन संस्कृत साहित्यों में वर्णित राजकुलीन कक्षों
में पूर्णतया मेल खाता है। इस बात को रेखाचित्रों और तुलनात्मक
आदि से पूर्णतया मेल खाता है। इन दोनों संस्कृत-
फलकों द्वारा स्वर्गीय श्री बासुदेवगण अग्रवालजी ने इन दोनों संस्कृत-
खण्ड चन्द्रों के सांस्कृतिक व्याख्यन में स्पष्ट दर्शाया है। श्री अग्रवाल भूत-
पूर्व पुरातत्त्वीय अधिकारी और बाद में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में
शास्त्रज्ञ-विद्या के प्राचार्य रहे हैं। हमारी यह शोध-उपलब्धि कि कश्मीर
में कन्याकुमारी तक की सभी प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतें मुस्लिम-पूर्व काल
की हिन्दू संरचनाएँ हैं उस समय तक व्यापक रूप में सर्व-ज्ञात नहीं हुई
थी जब भी अग्रवाल की मृत्यु हुई, और कदाचित् वे भी अन्य लोगों की
धारित ही इस ज्ञान सारणा को अपने हृदय में संजोए रहे कि ताजमहल,
लालकिले और ऐसे ही अन्य भवनों को विदेशी मध्यकालीन मुस्लिम राज्य-
शासकों ने ही भारत में बनवाया था। फिर भी, वे यह टिप्प : किये बिना
नहीं यह लके कि दिल्ली स्थित लालकिले के भीतरी कक्ष प्राचीन संस्कृत
साहित्य में वर्णित हिन्दू ग्राटों से सम्बन्धित भवनों से पूरी तरह मिलते-
हुए हैं। उन्होंने वृपनी इस उपलब्धि को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करने के लिए
अनेक गुण और अनेक रेखाचित्र बनाये हैं। हमारी यह उपलब्धि,
कि दुर्घटी दिल्ली की वृपनी संरचनाएँ, इमारतें पाण्डव-काल तक की
हुए हैं, उस विद्वान् द्वारा अप्रत्याशित समर्थन प्राप्त करती है जिसका
कारण हमारी और होना तो दूर रहा, निश्चित रूप से उस वर्ग से मेल
कारण या जो यह भानता रहा है कि भारत स्थित सभी मध्यकालीन भवनों
का निर्माण मस्त्ररों, जिन्होंने और मस्त्रदाओं के रूप में विदेशी मुस्लिम धर्म-
स्थापितों द्वारा कराया था।

नामांगण एवं समाजीय भी लालकिले के अन्दर बने हुए भवनों की हिन्दू चित्तिकलाओं का इसी लालकिले के पिछाहे परकोटे के माय-साथ पैदल बचपन संसार सहन में अल्पवर और बही बने भवनों को देखकर कर सकता है। उनकी कलागमी गुम्बद, इनकी छाँ, उन छिठों से निकली हुई

खूंटियाँ, अष्टकोणी छतरियाँ व बुजें, तथा पूर्व कालिक नदी-धाट तक जाने वाली शंकु-आकार की मेहराबें उन दर्जनों के मानस में अदम्य रूप में यह भावना उत्पन्न कर देंगे कि हिन्दू तीर्थों के नदी-धाटों के समान ही यह स्थान है जहाँ पर इसी प्रकार के हिन्दू भवनों की भरमार रहती है।

राजधानी से कुछ फलांगों की हूरी पर ही एक अति प्राचीन हिन्दू गढ़ है जिसे आजकल फिरोजशाह कोटला नाम से पुकारा जाता है। उस बोर्ड हुए इस्लामी नाम के कारण पर्यटक और पुरातत्वीय साहित्य ने यह जानकारी प्रस्तुत की है कि उस छवस्त भवन को मुस्लिम सुलतान फिरोजशाह तुगलक ने ही बनवाया था। फिरोजशाह ने न तो यही दावा किया है कि उसने किसी बस्तु का निर्माण कराया था और न ही वह कोई ऐसा अभिलेख हमारे पास छोड़ गया है कि उसने किसी भी भवन-निर्माण का आदेश दिया था। उसका राज्य-काल तो भयंकर हारों का दम-धोटू काल था, जिनमें से दो बार तो बंगाल में मुंह की खानी पड़ी थी और अन्य दो बार सिन्ध में। फिरोजशाह से दो पीढ़ी छोटे एक शम्से-शीराज अफ़ीक नाम के चाटुकार ने अपने पितामह को लाभ पहुँचाने वाले के पव भूमि कुछ अस्पष्ट अनिवित भवन-निर्माण के दावे कर दिए हैं। और इस तथ्य को छुपाने दृकने के यत्न में कि फिरोजशाह ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग उत्तुंग अशोक-स्तम्भ वाले छवस्त हिन्दू-किले में गुजारा था, उसने यह असत्य मनगढ़न्त कथा प्रचारित कर दी कि फिरोजशाह दिल्ली की उत्तर दिशा में स्थित किन्हीं गाँबों से दो अशोक-स्तम्भ उखड़वाकर दिल्ली ले आया था—यहाँ आ जाने पर एक स्तम्भ तो उसने अपने 'किले' पर लगवा लिया और दूसरा पहाड़ी पर गढ़वा दिया। एक धर्मान्धि, मध्यकालीन मुस्लिम सुलतान अपने 'किले' के ऊपर कभी भी ऐसा काफ़िराना, हिन्दू स्तम्भ नहीं लगवाता जिसपर हिन्दू धर्मादेश अंकित हों। वह तो इसको छवस्त ही कर सकता था। किन्तु फिरोजशाह ऐसा न कर सका क्योंकि उसे डर था कि यदि उसने उस स्तम्भ को उखड़वाया, तो तबसे ऊपरी मंजिल में बड़ा भार छिद रह जायेगा, और जब वह स्तम्भ 'धड़ाम' करके गिरेगा, तो उसके नीचे अनेक निकटवर्ती भवन नष्ट हो जाएंगे। अतः, इसी प्रकार से छवस्त-कोठ के एक भवन में फिरोजशाह ने अपना निवासस्थान बन लिया और उस

पर तभी अशोक-स्तम्भ की छत-छाया में ही जैसे-जैसे काम चलाता रहा। पर तभी अशोक-स्तम्भ की छत-छाया में ही जैसे-जैसे काम चलाता रहा। निकटवर्ती अन्य खोलों को उसके पूर्व-कालिक विदेशी आक्रमणकारियों ने छब्बत किया था। दरबारी चापलूसों को तब यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना आवश्यक था कि किरोजशाह ने धृणित, अति प्राचीन हिन्दू स्तम्भ बाले महल में निवास करना किस प्रकार सहन कर लिया। उन चापलूसों ने इतिहास में इसीलिए यह असत्य कहा ठूस दी कि स्वयं किरोजशाह ने, केवल कौतुक-वश ही अति दूर-स्थान से एक अशोक-स्तम्भ उखाड़ लिया था और उसे दिल्ली स्थित अपने महल पर लगवा लिया था।

उपर्युक्त विज्ञेयण से हम जो कुछ निष्कर्ष निकालते हैं वह यह है कि फिरोजगाह कोटला के नाम से जात राजप्रासाद सम्राट् अशोक का अपना राजनहृत है क्योंकि इसकी छत के ऊपर उसका अपना धर्मदिशा-स्तम्भ लगा हुआ है। इस राजमहल की द्वारस्त-अवस्था भी इस बात का प्रमाण है कि मुहम्मद गवानी के प्रारम्भिक घ्यारहवीं शताब्दी से आगे के अनेक इन्हाँमें आज्ञायण का यह महल बड़ी तरह शिकार हुआ है।

अशोक के राजप्रासाद का लालकिले से लगभग एक मील के भीतर ही
स्थित होना इस बात का एक अन्य प्रमाण है कि जिसे हम आज पुरानी
दिल्ली कहते हैं, वह महामारत-युग से ही अस्तित्व में थी और इसकी
स्थापना शाहजहाँ द्वारा १७वीं शताब्दी में कदापि नहीं की गयी थी।
प्रचलित मान्य काल-क्रम के अनुसार सम्राट् अशोक ईसा से पूर्व तीसरी
शताब्दी में राज्याकाद थे, और शाष्ठी लोग ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व
जीवित थे।

स्ट्रॉट अर्थोक के लिए यह सहज, स्वाभाविक ही था कि वह अपना किना पाण्टकों को पुरानी दिल्ली के बाहर ही बनवाये।

पुगानी दिल्ली नगर यमुना नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है। यह भी शार्धीन हिन्दू परम्परा के मनुकूल ही है क्योंकि दिल्ली के नागरिक अपने निवास स्थान और नदी में आड़े होकर उद्दीयमान भूर्ये को पूर्व दिशाभिमुख द्वारा अधर्मीद इने के लिए पर्याप्त भोर की घड़ी में ही यमुना-तट पर रहने लगे।

जीव जागरूकता और जीव दीर्घ स्थिति अथवा रोगों के कारण खास यमुना-

तट तक नहीं जा सकते थे, उनके लिए प्राण्डवों ने एक नहर बुदवायी थी जो उस स्थान से गुजरती थी जिसे हम आज चौदानी चौक कहते हैं। यह प्राचीन राजमार्ग उस समय इसके मध्य से बहने वाली यमुना नहर की जल-धारा से दो भागों में विभाजित था। इसके दोनों ही किनारों पर हिन्दू पुष्टीष पौधे, पवित्र पौधे जैसे तुलसी तथा मन्दिर बाट थे। वर्तमान गौरी-शंकर मन्दिर उन्हीं में से एक है। अनबरत मुस्लिम भावों के बीच नहर उन मन्दिरों व घाटों के मनवे से भर गयी जो मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा छ्वस्त किये गये थे। इसलिए यह कल्पना करना गलत है कि फिरोजशाह ने इस नहर का निर्माणादेश दिया था। इसके विपरीत उसके राज्य में तो यह नहर बुरी तरह पुर गयी थी, पट गयी थी।

प्राचीन लालकिने से आजकल फतहपुरी मस्जिद के प्रबलित नाम से विल्यात शिव मन्दिर तक विस्तृत धुरी के बारों और गलियों और उप-गलियों का एक बिशाल जाल फैला हुआ था जिसके भीतर रहने वाले निवासियों की रक्खा एक बिशाल नगर-प्राचीर उसी भाँति करती थी जिस प्रकार कोई सीप भीतर रखे अनमोल मोती को हृदय से स्टाए रखता है। अतः पुरानी दिल्ली के नगर का अध्ययन प्राचीन हिन्दू नगर-योजना के एक अनुपम, श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में करना आवश्यक है।

पुरानी दिल्ली महानगरी के उस राजमार्ग व नहर के एक छोर पर लालकिला उपनाम लालकोट से जात हिन्दू सम्राट् का राजमहल व किला स्थित था। दूसरे छोर पर शिव मन्दिर या चूंकि शिवजी भारत के शासक-वर्ग अर्थात् सत्रियों के कुलदेवता थे। वे दोनों एक मील से अधिक की दूरी पर स्थित हैं। अन्त्य 'पुरी' इसके प्राचीन संस्कृत नाम का प्रमाणक प्रत्यय है। 'फतह' इस्लामी शब्द एक 'विजित' हिन्दू बस्ती का ढोतक है। अतः आज जिसको फतहपुरी मस्जिद विश्वास किया जाता है, वह एक प्राचीन हिन्दू राजकुलीन मन्दिर है। इस निष्कर्ष की आगे भी पुष्टि उस लक्ष्य मण्डपाकार आले से ही जाती है जो मुख्य प्रवेशद्वार के केन्द्र में ऊपर बना हुआ है। जैसी सामान्य हिन्दू पद्धति है, उसी के अनुरूप भगवान् शिव की सन्तान भगवान् गणेश की प्रतिमा उसी छोटे आले में प्रतिष्ठित रहा करती थी।

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

आइए, हम अब उस तथाकथित तुकंमान दरवाजे के भीतर, आगे चलें। दोनों फलांग तक उस संकरी मली में चलने के बाद, बाईं ओर एक बन्द गली दिखलायी पड़ती है। भीतर की ओर कुछ गज चलने पर, व्यक्ति, जिसे दिल्लीयी पड़ती है। भीतर की ओर कुछ गज चलने पर, व्यक्ति, गली दिखलायी पड़ती है। भीतर की ओर कुछ गज चलने पर, व्यक्ति, गली दिखलायी पड़ती है। इसके बिल्कुल ऊपर एक प्राचीन हिन्दू भवन है। इसपर अब जाता है। इसके बिल्कुल ऊपर एक प्राचीन हिन्दू भवन है। इसपर अब जाता है। इसका प्रवेशद्वार द्वाराप्रकाष्ठ (लिटन-पोस्ट) (स्पाह) मस्जिद कहते हैं। इसका प्रवेशद्वार द्वाराप्रकाष्ठ (लिटन-पोस्ट) (स्पाह) मस्जिद कहते हैं। इसके दोनों पाइयों में दो पतली बुज़ं-मीनारें हैं। मुस्लिम, प्रकार का है। इसके दोनों पाइयों में दो पतली बुज़ं-मीनारें हैं। मुस्लिम, कम-से-कम भारत में तो विजित हिन्दू-भवनों को मस्जिद के रूप के उपयोग में जाने हेतु उन भवनों को सफेदी करने के अभ्यस्त हैं। फिर उस 'सफेद' मस्जिद के 'काली' नाम होने का कारण क्या है? उत्तर बहुत सहज, सरल है। काली भगवान् शिव की शक्ति, एक हिन्दू देवी का नाम है जो क्षत्रियों व बर्तावी भारत के शासक-बर्ग द्वारा आराध्या रही है। जब उस काली मन्दिर को आजमणकारी मुस्लिमों ने अपने अधिकार में कर लिया, तब उसका नाम 'काली मस्जिद' रख दिया गया। अतः यदि कोई व्यक्ति 'पुरानी दिल्ली' को अनि बुमावदार गतियों में घूमे-घामे, वहाँ की छान-बीन करे, तो उन्होंने इसकी असंदिग्ध जगहों पर अति प्राचीन हिन्दू-भवन प्राप्त हो सकते हैं। वे महाभाग्यवान वे आजकल मस्जिदों और मकबरों के नाम से ही जान जाते हैं। शब्दंगवान् वह भी कह दिया जाय कि इसके चारों ओर चारों ओर आदि के बग्गे में आधिकारों की भौति रहने वाले व्यक्ति भी उन हिन्दू शब्दंगवानों के बग्गे हैं जो उन हृषियाये गये मन्दिरों के पुजारी अथवा अन्य सेवकों के लाए गए उपर्युक्त थे।

आइए, हम अब उस गली से बाहर आ जाएं और तुकंमान दरवाजे की ओर पीछे करें। उसी संकरी गली में आगे बढ़ें। उस दरवाजे से लगभग एक मीन बाला की तरफ, तेंग गतियों के अन्दर जाकर, भारी दीवारों का दमकों बाल बच्चे ही हुई पड़ता है। जहाँ सुलतान रजिया और प्रथम गतियों में एक छान-बीन वाली भवन के अन्दर दफनायी हुई पड़ी

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

हैं, इसलिए यह विश्वास करना क्या बेहूदगी नहीं है कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली की स्थापना की थी?

शाही पारिवारिक अन्तकंलहों की मुगाँ पुरानी मुस्लिम परम्परा में ही सुलतान रजिया को निर्देशतापूर्वक कल्पन कर दिया गया था। उसकी मृत्यु से कुछ दशक पूर्व ही दिल्ली में मुस्लिम जासन स्थापित हो पाया था। चैकि वह एक भीड़भाड़पूर्ण बस्ती के एक विशाल भवन में दफनायी पड़ी है। इसलिए स्पष्ट है कि १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस्लामी जासन के आगमन के समय भी अपनी घुमावदार गतियों के साथ ही यह प्राचीन दिल्ली नगर विद्यमान था, और इसी कारण यह एक प्राचीन हिन्दू नगर होता सिद्ध है। यह अति लघु विवरण उस मान्यता को पूरी तरह अस्वीकृत, निरस्त कर देता है, जिसके अनुसार कहा जाता है कि शाहजहाँ ने १७वीं शताब्दी में पुरानी दिल्ली की स्थापना की थी।

हमारे अपने ही युग में प्रचलित, अजानी विटिश कर्मचारियों द्वारा प्रसारित एक जन-विज्वास के अनुसार दिल्ली की सात नगरियाँ थीं। यह एक भयंकर भूल, घोर ब्रुटि है। बहुत सारी अन्य प्राचीन भारतीय नगरियों के समान ही दिल्ली भी सात दीवारों से घिरी हुई थी। पहली दीवार वह है जिसमें दिल्ली दरवाजे से कझमीरी दरवाजे तक फैली—पुरानी दिल्ली वसी हुई है। दूसरी दीवार में अशोक का वह राजमहल परिवेष्टिया जिसे आजकल 'फिरोजशाह कोटला' नाम से पुकारते हैं। उस दीवार की आँख-रेखा उस तथाकथित विशाल 'खूनी' द्वार से पहचानी जा सकती है जो सम्राट् अशोक के राजप्रासाद के बाहर राजमार्ग पर टेढ़ा खड़ा है। तीसरी दीवार वह भी जिसमें इन्द्रप्रस्थ सम्पत्ति (ऐस्टेट) नामक क्षेत्र सम्मिलित था, जहाँ आजकल 'इण्डियन इंस्टीच्यूट ऑफ प्रिलक एडमिनिस्ट्रेशन', महा-लेखाकार का कार्यालय आदि भवन स्थित हैं। चौथी दीवार 'पुराने किले' के निकट से जाती थी। नेशनल स्टेडियम को जाने वाले एक विशाल प्रवेशद्वार सहित उस दीवार के छवंसावशेष सफेद और लाल हिन्दू नमूनों-युक्त प्राचीन हिन्दू मान-प्रतिष्ठा सहित अभी भी देखे जा सकते हैं। पांचवीं दीवार में वे छवंसावशेष घिरे हुए थे जिनको हम आज निजामुद्दीन के मकबरे के चारों ओर फैले हुए देखते हैं। छठी दीवार में विजय-मण्डल, होस लाल

और बेगमपुरी महिनद नाम से ज्ञात ध्वंसावशेष सम्मिलित थे। सातवीं शताब्दी में वे क्षेत्र स्थित हैं जिनको आजकल कुतुबमीनार-संकुल, तुगलकाबाद और सूर्यकुण्ड क्षेत्र कहते हैं।

भवनों और मन्दिरों से भरपूर, तथा विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक और विकलित सामाजिक व राजनीतिक प्रणालियों की सृजना करने वाले और प्राचीन हिन्दुओं के यश-गौरव, धन और शक्ति की तथा उनकी नगर-योजना मुविस्तृत महानगरी दिल्ली—इतनी अधिक व्यापक फैली हुई थी।

इसी के भीतर हजारों खम्मों वाले राजमहल भी थे जिनके सन्दर्भ पूर्वकालिक मुस्लिम राज्यों के तिथिवृतों में प्रायः मिल जाते हैं। लाल महल और चौसठ-बम्भा जैसे अन्य भवन भी ये जिनके कुछ भागों को महल आज हुमायूं और सफदरजंग के मकबरे के पास देखा जा सकता है। जो भी तथाकथित निजामुदीन के मकबरे के पास देखा जा सकता है। जिनको आज हुमायूं और सफदरजंग के मकबरे के रूप में विश्वास किया जाता है, वे भी प्राचीन हिन्दू राजमहल हैं।

प्राचीन भारत में नगरों और ताल्लुकों की प्रायः एक अटूट शृंखला थी जो उत्तर से दक्षिण की ओर फैले हुए थे। हम ज्यों-ज्यों दक्षिण की ओर जाने हैं, हमें तथाकथित तुगलकाबाद, बल्लभगढ़, छत्तीपुर, कोसी कलाँ, डौग, भरतपुर, कुम्हेर, गोदर्जन, गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, काँकरौली, नगरबंत, सिकन्द्रा, आगरा, किरोली, कन्वाहा, फतहपुर सीकरी एक अटूट शालगंव, शृंखला में ही मिलते हैं।

प्राचीन दिल्ली में (दाहर्म के लिए) निषमदोध घाट से लेकर (प्राचीन हिन्दू राजकुलीन वैभव की स्मृति दिलाने वाले) राजघाट तक नदी-घाटों का एक अटूट गौरवाली शृंखला थी। किन्तु मुहम्मद-बिन-कासिम से बहादुरगाह तक तक विदेशी आक्रमणों और धार्वों की हजार-वर्षों अवधि में इन सभी नगरियों और नदीघाटों, राजकीय भवनों और मन्दिरों को जहां-गिराय, विस्त बैखवा अस्तित्वहीन कर दिया गया था। अब: इस शाश्वतों को देखा चाहिये कि दिल्ली कुछ मुस्लिम उप-नगरियों का एक शहर है। इनके स्थान पर, यह स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीन दिल्ली कम-कम सूर्यकुण्ड से कश्मीरी दरवाजे तक—स्थूल रूप में लगभग बीच ही भी फैली हुई थी। यह विशाल महानगरी निरन्तर इस्लामी

आकामक धारों के कारण यव-तत्र एकाकी वस्ती अथवा ध्वस्त झेव वाली हो गई थी। किन्तु वे ध्वंसावशेष आज भी निष्पत्त, विवेकी व्यक्तियों की प्राचीन हिन्दुओं के यश-गौरव, धन और शक्ति की तथा उनकी नगर-योजना एवं सुरक्षा-प्रणाली की गौरवावस्था का दर्शन करा सकते हैं।

यह जन-विश्वास निराधार है कि दिल्ली में मात्र पुराना किला ही पाण्डव-काल से सम्बन्धित है। कुरुवंश के राजघराने में १०० कोरव, पांच पाण्डव राजकुमार, अनेक वयोवृद्ध ज्येष्ठ सम्बन्धी-गण, पलियाँ, राज-कुमारियाँ, और विपुल संख्यक परिचर थे। ये सभी मात्र पुराने किले में ही सीमित नहीं रह सकते थे। अतः प्राचीन ध्वंसावशेषों से सर्वत्र भरा-पड़ा दिल्ली का सम्पूर्ण क्षेत्र ही महाभारत-काल से सम्बन्धित है।

: ११ :

दिल्ली का लालकिला हिन्दू लालकोट है

दिल्ली के लालकिले में प्रकाश एवं ध्वनि कार्यक्रम का चमत्कार देखने के लिए ट्रिक्ट सरोदरे बाते व्यक्ति उन्होंने ही इस तथ्य से अनभिज्ञ रहते हैं कि उनको तो इस किले की कथा का मात्र एक अंश ही दिखाया जा रहा है, और इसलिए उनकी व्यय की गई धनराशि का उनको पूर्ण प्रतिफल मिल नहीं रहा है।

यह चमत्कारी प्रदर्शन उसी घिसे-पिटे कथन से प्रारम्भ होता है कि नौची के मुख्य तंत्रात् शाहजहाँ ने इस लालकिले को १७वीं शताब्दी में बनवाया था। यह तो ऐतिहासिक भव्यकर भूल है। लालकिला तो शाहजहाँ ने जलाओवियों पूर्व भी अस्तित्व में था, विद्यमान था।

जनरल कनिष्ठम ने, जिसे भारत में पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण का आयोजन कार्य संबंधित नौशा नया पा, यह पूर्व अनुमान करके मूल, प्रारम्भिक गलती कर दी है कि भारत में स्थित सभी पर्याकालीन भवन मुस्लिम आक्रमण-कारियों द्वारा बनवाये गये हैं।

उनकी इतिहास-नेतृत्वों ने उग्रपूत अनुमान को अन्धाधुन्ध दोहराया है, जिसा था, अनुभव किए ही कि ये सभी अनुमान मात्र जनरल कनिष्ठम की शरण पर ही आधारित हैं। लालकिले के इतिहास से दृश्यमान हो जाता है कि इह प्रकार की पूर्व-वारणी नितनों भव्यकर और भ्रामक हो सकती है, जिसे पक्का तत्त्व वे हिन्दुस्तान के भवनों से सम्बन्धित हैं जिनका निर्माण-अध्ययन एक विदेशी द्वारा बना दिए गयियों को दिया जाता है। जनरल कनिष्ठम ने किसीकिंवा और तुलसीकों को निर्माण-अध्ययन दिया है।

कनिष्ठम के 'विचार' आधार को ऐतिहासिक शोधकार्य में तबतक कोई स्वाम नहीं घिनौरा चाहिये जिबतक यह 'विचार' प्रबल साक्ष्य और

संशोधन तर्कों से समर्पित, पूष्ट न हो। यह कुछ करना तो दूर, कनिष्ठम ने अपने रुढ़िवादी निष्कर्षों को अनिवार्य 'यदि' और 'किन्तु' 'परन्तु' से भर दिया है। अगले प्रतिवेदन के पृष्ठ १५२ पर उसने लिखा है: "यदि इस प्रकार लालकिले का स्थान अनंगपाल की स्थिति से निश्चित किया जाय, साथ ही लौह-स्तम्भ का भी छ्यान रखा जाय, तब महान् भव्य प्राचीन किला जो अब कुतुबमीनार के चारों ओर फैला हुआ है, पूरी सम्भावना है कि वही लालकोट है जो अनंगपाल द्वारा बनवाया गया था।" मह अवतरण पालक को उस अत्यन्त संदिग्ध और अस्थिर धारणा का दिग्दर्शन कराने में पर्याप्त होना चाहिये जिसपर भारतीय पुरातत्त्व और इतिहास मूलरूप में आधारित है। जनरल कनिष्ठम की अयुक्तियुक्त मीमांसा इस तथ्य से और भी साझा हो जाती है कि यद्यपि दिल्ली में एक भवन 'लालकिला' नाम से जात है, किर भी वह इसको अन्यत्र खोजता रहा है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि दिल्ली में लालकिले का स्थल छान-बीन लिया जाय।

सर्वप्रथम, हमको यह स्मरण रख लेना चाहिये कि 'लालकिला' शब्द-बली लालकोट शब्द का यथार्थ, परिपूर्ण अनुवाद है। स्मरण रखने वाली दूसरी बात यह है कि दिल्ली में प्राचीन भवन एक ही है जिसे दृष्टिगोचर कर लालकोट कहा जा सकता है। वह वही लालकिला है। अन्य कोई ऐसा भवन नहीं है जिसपर यह विवरण पूरा खारा उतरता है।

जनता को यह भी बताया गया है कि शाहजहाँ के शासनकालीन दरबारी कागज-पत्रों में उपलब्ध ऐसा एक भी टुकड़ा नहीं है जो शाहजहाँ द्वारा लालकिला निर्माण करने के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का भ्रम उत्पन्न करता हो। यदि शाहजहाँ ने किले का निर्माण किया होता, तो भूमि-अधिग्रहण, इसका सर्वेक्षण, किले के रूप-रेखांकन, और दैनंदिन मौंगाये गये सामान आदि के देयकों और प्राप्तियों से सम्बन्धित कागज-पत्रादि भी तो उपलब्ध होते।

लालकिले के भीतरी भाग में बहुत सारे इस्लामी शिलालेखों की भर-मार है, किन्तु उनमें से किसी में भी शाहजहाँ द्वारा कुछ भी निर्माण करने का दावा नहीं किया गया है। ये सभी शिलालेख ऊँ-जलूल, लक्षणत उत्कीणकि हैं जो वैसे ही हैं जैसे भ्रमणकर्ता लोग अन्य व्यक्तियों के भवनों

६४

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

को छपने नाम, स्थान आदि लिखकर विद्युप कर देते हैं। उदाहरण के लिए हम एक शिलालेख प्रस्तुत करते हैं जिसमें कहा गया है: "ईश्वर महान् है, ईश्वर पावन है। वे रंग-बिरंगे भवन और आवास कितने सुन्दर हैं। (वे) ईश्वर पावन है। वे रंग-बिरंगे भवन और आवास कितने सुन्दर हैं। (वे) ईश्वर पावन है। वे कहना है कि उच्चात्मा देवदृढ़ उनपर दृष्टि-उच्चाकाश का भाग है। ऐसा कहना है कि उच्चात्मा देवदृढ़ उनपर दृष्टि-उच्चाकाश का भाग है।" आदि-आदि। शिलालेख में ऐसी ही बहुत सारी पात करने के इच्छुक हैं।" आदि-आदि। शिलालेख में ऐसी ही व्यर्थ की जाते अंकित हैं। क्या वास्तविक निर्माता अपनी सम्पत्ति को ऐसी व्यर्थ की जाते अंकित है? क्या कोई निर्माता स्वामी का नाम, लिखावटों से विद्युप भद्रा करते हैं? क्या कोई निर्माता स्वामी का नाम, निर्माण-तिथि, भूल्य और निर्माण-प्रयोजन को अंकित करने वाला शिलालेख नहीं लगवायेगा, यदि उसे कुछ लिखावकर प्रदर्शित करना ही है? किन्तु भारत में इस्लामी शिलालेख पे कुछ नहीं करते।

हम यही विशिष्ट-आपन्तुक-महाकथा अर्थात् दीवाने-खास में अंकित पद को प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसमें कहा गया है: "यदि धरती पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यहीं है, यहीं है।" वह पद यहीं अक्समात् समाप्त हो जाता है। पाठक को कुछ भी नहीं बताया जाता कि भवन को स्वर्ग बताने वाला कौन है, किसने इस भवन को बनवाया था, कब और कितना धन इसमें खर्च हुआ था।

लालकिले के दर्शनार्थी यह भी ध्यान में रखें कि आरामगाह उपनाम खास महल उपनाम खाबगाह नामक केन्द्रीय भाग में प्राचीन हिन्दू राज-चिह्न अर्थों भी बना हुआ है जिसे कोई भी देख सकता है। इसमें ऊपर बनी एक मेहराब के ऊपर देवीप्यमान सूर्य का एक बड़ा प्रतिविम्ब समाविष्ट है। इसके दोनों पक्षों में पवित्र हिन्दू वक्षर 'ॐ' है।

महराब के ठीक नीचे एक फलक है जिसमें सूर्य के अनेक छोटे-छोटे प्रतिविम्ब चित्रित हैं। उनके सध्य न्याय-नुला है। न्याय-नुला की तुला का केन्द्रीय-चक्र हिन्दू कमल-नाल से निकल रहा है। कमल-नाल स्वयं पावन हिन्दू कलश (कुम्ह) पर स्थित है। कलश के ठीक नीचे तलवारों के फलक का एक युग्म है जो मूँठ-मूँठ भिड़ाकर रखा गया है—फलक ऊपर कोण्डक के रूपों में मुड़ते हुए तुला की चीव में ले लेते हैं। हिन्दुओं के लिए अति पवित्र चार तले उस स्टॉपिक फलक में देख जा सकते हैं। इनमें से दो बाये दोनों में हैं। और अन्य दो फलक-आधार के पास दायें-

खास महल की छत से वर्षा का पानी बाहर निकालने के लिए बनी नालियों के मुख बराह, मत्स्य तथा ऐसे ही पशुओं की आकृतियों के बने हुए हैं। यह एक विशिष्ट हिन्दू-पद्धति है जो मुसलमानों द्वारा मूत्रिपूजक समझी जाती है। यह भी सिद्ध करता है कि लालकिला और इसके भीतरी भाग हिन्दुओं द्वारा और हिन्दुओं के लिए ही बनाये गये थे।

इससे हमें इतिहास-शोध का एक दुर्बोध घोखा और निपट सरल मूहता ज्ञात हो जाती है। ऊपर जिस तलवार-फलक का हमने हवाला दिया है, उसे सदूच इस्लामी अद्वैत चन्द्र कहकर जनता को धोखा दिया गया है। अतः हम फोटोशाफ्टरों, कलाकारों, दर्शकों, पर्यंतेकों, इतिहासकारों और पुरातत्वज्ञों से अनुरोध करते हैं कि वे संकड़ों की संख्या में लालकिले में जाएं और इस फलक को दुबारा इसलिए देखें कि तथाकथित अद्वैत चन्द्र तलवारों का जोड़ा है, जिसकी मूँठे स्पष्टतया दर्शनीय हैं। उनको सन्तुष्टि हो जायेगी। इससे किले की शाहजहाँनी कथा का भण्डाफोड़ हो जाता है। क्योंकि वह कल्पित अद्वैत चन्द्र ही, आद्यतन, किले के मुस्लिम-निर्माता होने के प्रबल प्रमाण के हृप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। इसके विपरीत, हमने ऊपर अनेक ऐसे हिन्दू-प्रतीक-चिह्नों की विद्यमानता उस फलक में इंगित की है जो इस्लामी लेण-माल भी नहीं हैं।

तस्वीहखाना और तोशाखाना जैसी इस्लामी शब्दावली को बलात् किले पर थोपने के अथक प्रयत्नों की शताब्दियों के बादजूद किले के भीतरी भागों के साथ प्राचीन हिन्दू शब्दावली ज्यों-की-त्यों संलग्न है। अभी तक प्रचलित प्राचीन हिन्दू शब्दावली हैं—रंग महल, छोटा रंग महल, शीश महल, भाद्रपद (भादो), श्रावण (सावन) महल, मोती महल, लृप्य महल, हीरा महल। लाहौरी दरवाजे के अन्दर दुकानों वाला (संस्कृत 'छत्र' से) छता (बाजार), केशर-कुण्ड (मुसम्मत जैसे अणुद रूप में उच्चरित) मान-सम्मान बुजं आदि-आदि। मोती महल, लृप्य महल और हीरा महल तो नाम को ही शेष बचे हैं। वे सब मुस्लिम आकर्षणों और परवर्ती अल्याचारी मुस्लिम-जासनकाल में नष्ट हो गये।

तुला वाला हिन्दू राजचिह्न जिस राजोचित भाग में है उसी के कझ-द्वारों पर गजमस्तक बने हुए हैं जिनपर महावत बैठे हैं। यदि मुस्लिमों ने

लालकिला बनवाया होता तो उन्होंने कमरों के दरवाजों के कुण्डों पर मूर्ति-पूजक महावर्ती बने गज-मस्तक कभी न बनवाये होते। इसी प्रकार की जीविताकार गज-प्रतिमाएं दिल्ली-दरवाजे के दोनों ओर बनी हुई हैं। दर्शकों जो बिताकार गज-प्रतिमाएं दिल्ली-दरवाजे से प्रवेश की अनुमति नहीं है, किन्तु इस द्वार से बाहर निकल सकते हैं, तथा उसी समय इन हाथियों को देखा जा सकता है। इन गज-प्रतिमाओं का निर्माण निटिंग बायसराय लाई कर्जन द्वारा उस समय कराया था जब उसे ज्ञात हो गया कि मूल हिन्दू गज-प्रतिमाओं के १२५ टुकड़े करके किले के भीतर भूमि में गाढ़ दिये गये थे। मुगल शासनावधि में पधारे फाँसीसी प्रवासी बनियर के अनुसार वे हिन्दू-गज प्रतिमाएं 'हाथी दोज' दरवाजे पर नगाइखाने के बाहर दोनों ओर दायें-बायें खड़ी थीं जहाँ आज सन् १८४७ ई० के समृद्धि चिह्न संग्रहीत हैं।

किले की बास्तुकला पूर्णतः हिन्दू है। इसके गुम्बद सबके सब, पुष्पाच्छादित हैं। प्राचीन अयोध्या-नगरी के समान ही यह किला अनियमित अष्टकोणी निर्माण है। इसकी चूड़ी, छतरियाँ और कलशों सभी अष्टकोणी हैं। केवल हिन्दू लोगों में ही आठ दिशाओं के नाम हैं। उन्हीं लोगों ने इन आठों दिशाओं के आठ दिक्षापाल निश्चित किये हुए हैं—वे सभी अलौकिक हैं। इन प्रकार अष्टकोणी आकृति का हिन्दू परम्परा में एक विशेष महत्व, माहात्म्य है। हिन्दू देवताओं और सम्राटों का दसों दिशाओं में प्रभुत्व, माध्यमित्य माना जाता है।

प्रत्येक सबन का जिस्तर आकाश—स्वर्ण की ओर, और इसकी नींव पानाल नींक की ओर इंगित करते हैं। अतः यदि कोई भवन अष्टकोणी बनता है, तो यह स्वतः इसी दिशाओं का परिचायक होता है जो हिन्दू परम्परा में अति संगत बैठता है।

लालकिले के पिछवाएँ पुल से सम्बन्धित एक किलेबन्दी बाला मोरचा है जो यशूना नदी के माथ-मिलता है। किले का वह भाग सलीमगढ़ कहलाता है। जूँकि सर्वीम शाहजहाँ का पिता था इसलिए उसका नाम किले से जुड़े होना इस द्वार का स्पष्ट प्रमाण है कि यह लालकिला शाहजहाँ के पिता के समय में भी बिश्वामान था। किले के भीतर मोती मस्जिद का निर्माण-यथा शाहजहाँ के बेटे और गजेव की दिया जाता है। यही तथ्य, कि घोर धर्मनिधि

शाहजहाँ ने भी स्वर्य किसी मस्जिद का निर्माण नहीं कराया था, सिंदू करता है कि वह किले में बलात् रहने लगा था—किसी भी प्रकार इसका निर्माता नहीं था। अन्यथा उसने किले के भीतर ही किसी मस्जिद को तो बनवाया होता।

एक अन्य प्रमाण जो प्रलेखात्मक है—शाहजहाँ के काल का चित्र होना है। बोडलियन पुस्तकालय, आक्सफोर्ड में सुरक्षित रखे इस चित्र में, उसमें दिये गये शीर्षक के अनुसार, शाहजहाँ को दिल्ली के लालकिले में बने दीवाने-आम कक्ष में सन् १६२८ ई० में फ़ारसी राजदूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। उसी चित्र की प्रतिकृति 'इलस्ट्रेटेड बीकली आँक इष्टिया' के मार्च १६७१ के अंक में प्रकाशित है। चूँकि शाहजहाँ राजगद्दी पर सन् १६२८ ई० के फरवरी मास में बैठा था, इसलिए वह फ़ारसी राजदूत का स्वागत लालकिले में उसी बर्ष में नहीं कर सकता था, यदि किला उससे पूर्व विद्यमान न रहा होता।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'हर्ष चरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक अपनी पुस्तक में विशद-विवरणों सहित ऐसे चित्र प्रकाशित किये हैं जिनमें सिंदू होता है कि लालकिले के भीतर बने हुए राजकीय आवासीय भाग उसी पद्धति पर बने हुए हैं जिस पद्धति पर सकृत साहित्य (प्राचीन) में वर्णित भवन हिन्दू सम्भाटों के लिए बनते थे।

संक्षेप की दृष्टि से, बिना विशद व्याख्या के ही हम अब अनेकानेक प्रमाणों का उल्लेख करेंगे। हिन्दू सूर्य-चिह्न सबसे बाहरी द्वार से लेकर सब अधिक भीतरी भाग तक समूर्ण किले में उल्कीण है। इतना ही नहीं, तथा कथित मोती मस्जिद की भीतरी संगमरमर की दीवारों के ऊपरी भाग में भी हिन्दू सूर्य चिकित है। ठोस स्वर्ण का, इसी प्रकार का सूर्य-चिह्न उदयपुर के महाराणा के राजमहल में सुणोभित है। इस तथाकथित मोती मस्जिद में (जो मुस्लिम-सूर्वयुग में किले का निर्माण करने वाले हिन्दू राजवंश द्वारा निर्मित हिन्दू मोती मन्दिर था) प्रवेशद्वार के भीतर मैहराब के ऊपर परम्परागत पाँच फलों का समूह दो स्थानों पर रखा हुआ है। ये पंचकल ईश्वर को नैवेद्यम्, अथवा प्रसादम् के रूप में भेट किये जाते हैं।

आज से लगभग एक लालाक्षी सूर्य श्री० के० फोर्बेस द्वारा लिखित 'रममान' पुस्तक में उस शिलालेख का सन्दर्भ है जिसमें उल्लेख है कि हिन्दू सम्भाट अनंगपाल ने दिल्ली का लालकिला १५वीं शताब्दी में बनाया था। यह सम्पूर्ण समस्या का समाधान कर देता है।

शराब पीते थे और पोस्ट व अन्य नशीली वस्तुओं का अति उदारतापूर्वक सेवन करते थे।

वे इस्लामी शाहजाह लोग या तो नितान्त निरक्षर ये अथवा अधिक-सेवक कुरान की कुछ पंक्तियों को ही समझने की योग्यता उनमें उत्पन्न कर दी गई थी—यह वह तथ्य है जिसका उपयुक्त लेखा-ज्ञाता इतिहास, कला और वास्तु-विद्या के इन गोबर-गोण लेखकों ने करने का कभी बल नहीं किया है।

स्पष्ट है कि उन लोगों ने अपनी ऊँल-जलूल कल्पनाओं के भवावहृत अलौकिक, ऊट-पटांग निहितायों की ओर ध्यान नहीं दिया है जिन्होंने एक ही समय प्रेमी और वास्तुकला-विशारद के रूप में अत्यधिक प्रभावी पात्र होने का अभिनय करने के लिए शाहजहाँ और अन्य मध्यकालीन मुस्लिम राजवराने की प्रशंसा की है। मैं उनको 'ऊँल-जलूल' कल्पनाएँ कहता हूँ क्योंकि किसी भी मध्यकालीन मुस्लिम शासक हारा अथवा उसकी ओर से किया गया एक भी तत्कालीन, आधिकारिक ऐतिहासिक दावा नहीं है जिसमें कहा गया हो कि वह मुस्लिम व्यक्ति माना हुआ, निपुण वास्तुकलाविद था। इसलिए अत्यधिक मध्यप और नशीली वस्तुओं के सेवन से अत्यधिक द्रुत, भोगासक्त, मध्यकालीन मुस्लिम शाहजाहों को आश्चर्यकारी, विरले वास्तुकला-विशारद कल्पना करने का इन लेखकों का एक ही आधार था—अफवाह अथवा कही-मुनी बात।

भारतीय मध्यकालीन कला, वास्तुशिल्प, इतिहास और संस्कृति के अध्ययन की ओर विडम्बना इसी एक तथ्य से स्पष्ट रूप में प्रदर्शित हो जाती है कि महत्त्वपूर्ण विषयों के मूलाधारों को सत्यापित किये बिना, परन्तु बिना ही इतिहास-लेखकों अथवा वास्तुकला-विशारदों के रूप में यश-प्रतिष्ठित व्यक्ति व्यावसायिक क्षेत्र के लेखकों के रूप में गम्भीर, ध्यावसायिक पत्रिकाओं अथवा विश्व-संरक्षण प्राप्त उच्च-स्तरीय पुस्तकों में उपर्युक्त प्रकार के लेख प्रकाशित कराते रहे हैं। यह इस बात का भी दोतक है कि न केवल भारत में ही, अपितु समस्त विश्व में जहाँ भी कहीं भारतीय इतिहास और भारतीय-विद्या का अध्ययन व प्रशिक्षण किया जाता है, वहाँ की पाठ्यालाभों, महाविद्यालयों और उच्च-शिक्षा संस्थानों में इन विषयों के

: १२ :

प्रेमी और वास्तुकला-विशारद

इन्हीं में प्रकाशित, कला और संस्कृति की 'मार्ग' नामक पत्रिका के पुराने लेखों को देखते समय मेरा ध्यान अकस्मात् एक लेख के शृंगारी और लोभकारी शीर्षक की ओर आकर्षित हो गया। शीर्षक या, 'शाहजहाँ—प्रेमी और वास्तुकला-विशारद।'

एक दृष्टि से देखा जाय तो उस शीर्षक में कोई विशेष बात नहीं थी बदौलि नमस्त्र पिछली दोन शताब्दियों तक प्रायः इसी प्रकार की बातें अन्य बहुत सारे लोगों ने भी लिखी हैं जिनका निहित भाव यह रहा है कि कला-सेन्क्रम भारत में शाहजहाँ और कडाचित् प्रायः प्रत्येक मुस्लिम शासक न केवल कला, जिक्का और शृंगार का एक महान् संरक्षक ही रहा है, अपितु एक ऐसा निपुण वास्तुकलाविद हुआ है जो पलक झपकते ही और अत्यन्त सरलता से अपनी पेसिन की ढो-चार रेखाओं के इधर-उधर बुमाने-हिलाने मात्र से ही ऐसे आश्चर्यकारी भवनों के रूप-रेखांकन चित्र बना सकते हैं मात्र किसी अत्यन्त श्रेष्ठ वास्तुकलाकार ने बनाए हों, जिसमें अपनी कला-कौशल का प्रदर्शन किया गया हो और जिसे देखकर उच्चतर वास्तुकला के शारणिक द्वारा तथा नौसिखियों के समूह को लज्जित होना पड़े—उनका फिर नीचा हो जाय।

यही शब्दकुछ बात नहीं है। जैसाकि शीर्षक से प्रतीत होता है, निहितार्थ यह है कि शाहजहाँ (और इसी प्रकार प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम शासक) अपने अपने उग्रता के एक या अधिक कोमल-कमनीय तथा आलिङ्गनीय मार्गों के बाब ग्रा-ग्रनियों करते समय भी भवनों के मानचित्र तैयार कर रखता था। इतिहास में इन बात की भी गाढ़ी दी हुई है कि वे मध्यकालीन इतिहासी शासक—इमरान-मीर-बादशाह आदि अत्यधिक तेज़, उन्मादकारी

बारे में कितनी ओर उपेक्षा-वृत्ति और तटस्थता, उदासीनता अपनायी जाती है।

मुझे आशय होता है कि क्या कोई ऐसा वास्तुकला-विद्यालय भी होगा जो शृंगार और वास्तुकला के बारे में शाहजहाँ की यशोपलब्धि का अध्ययन करने वाले अपने भावी छात्रों को वायिक उपाधि-वितरण समारोह में ठीक शाही शाहजहाँ की परम्परा में 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' की मम्मानीय उपाधि देगा।

यदि वास्तुकला का कोई विद्यालय अपने स्नातकों को दी जाने वाली उपाधि में इस प्रकार का परिवर्तन करने को तैयार नहीं है, तो मैं विचार करता हूँ कि क्या इस कला का स्वयं प्रचार-प्रसार करने वाले व्यक्ति इतनी सावधानी बरतेंगे अथवा साहस दिखाएंगे कि अपने निवासस्थानों अथवा कार्यालय-परिसर के बाहर यह विज्ञापन-पट लगा लें—“श्री……, प्रेमी और वास्तुकला-विशारद।” यदि वास्तुकलात्मक प्रतिभा के साथ-साथ शृंगार गुण होने से शाहजहाँ की जान बढ़ती प्रतीत होती है, तो कोई कारण नहीं है कि व्यावसायिक वास्तुकलाकार के रूप में काम करने वाले छोटे-छोटे व्यक्तियों के व्यापार-कार्य में इस विज्ञापन-पढ़ति से वृद्धि न हो।

शाहजहाँ को 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' नाम से पुकारने का निहितार्थ यह है कि जान की सभी जात्याओं में से वास्तुकला शाखा मात्र ही इतनी अद्विष्टित और सौधी-संरक्षित है कि शृंगारिक वृत्तियों निष्प्रयोजन न होनेर वास्तुकलात्मक-निपुणता में सहायक है, और ताजमहल जैसे अत्यधिक अवनुकूल, निशाल और सब्द्य भवनों के निर्माण के मानचित्र बनाने के लिए किसी व्यावसायिक विज्ञापन अथवा व्यावसायिक उपकरणों की भी व्यावरणकला नहीं थी क्योंकि इतिहास में ऐसा उल्लेख कहीं नहीं किया गया है कि शाहजहाँ के अधिकार में कोई भवन-निर्माण रूपरेखांकन-उपकरण थे व्यष्ट उभने किल्पकला—वास्तुकला की कहीं कोई शिक्षा पायी थी। तथ्य अधिक अनिष्ट सम्बन्ध स्वता किसी वास्तुकला के विद्यालय की शर्तें पूरी पूरा वास्तुकलाकार हो सकता है—उसकी क्षमता, योग्यता प्राप्त कर-

सकता है। मुझे आशय होता है कि क्या वास्तुकला का प्रशिक्षण देने अथवा लेने वाले वास्तुकला का यथार्थ अध्ययन करने के स्थान पर इस प्रकार का कामुकतापूर्ण विकल्प स्वीकार करेंगे क्योंकि यही बात तो 'शाहजहाँ—प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' का वर्णन करके प्रस्तुत की जा रही है तथा इसी बात को ताजमहल के बारे में लिखी गयी सभी प्रकार की रचनाओं में प्रायः अनुमान किया गया है अथवा विविध प्रकार से प्रस्तुत किया गया है।

फिर भी, यह जैसा भी है, प्रेमी और वास्तुकलाकार के रूप में शाहजहाँ के वर्णन का कोई आधार इतिहास में उपलब्ध नहीं है। उसे 'प्रेमी' की संज्ञा से विभूषित करने का जो निहित भाव है, वह यह है कि पति के रूप में शाहजहाँ अपनी पत्नी मुमताज के प्रति अत्यधिक पत्नी-निष्ठ था और उसका अन्य महिला/महिलाओं से कोई रति-सम्बन्ध नहीं था। किन्तु इतिहास इस बात के विरोधी सन्दर्भों से भरा पड़ा है। मुगल-हरमों के बारे में ज्ञात ही है कि उनमें कम-से-कम पाँच हजार महिलाएं तो रहती ही थीं। इसके अतिरिक्त यह भी सर्वज्ञ ही है कि शाहजहाँ का अपने ही सम्बन्धियों की पत्नियों; यथा उसके साले शाइस्ता खान की पत्नी और खलीलुल्लाह खान जैसे दरबारियों की पत्नियों तथा जैसा बहुत भारे लोग सन्देह करते हैं, स्वयं उसकी बड़ी बेटी जहाँनारा से भी अवैध शारीरिक सम्बन्ध था। उसकी अपनी शृंगारिक रंग-रलियों की कुछ झलक 'ताजमहल हिन्दू राज भवन है' यीर्षक पुस्तक में प्राप्त होती है।

उसी पुस्तक में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि जिन असंख्य भवनों के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को दिया जाता है, उसने तो उनमें से एक का भी निर्माण नहीं किया था। इसके विपरीत, उसके दरबार के अपने तिष्ठिष्ठ अर्थात् 'बादशाहनामा' में उल्लेख है कि शाहजहाँ ने आदेश दिया था कि उसके राज्य में एक भी हिन्दू मन्दिर को बना दुआ लड़ा भत रहने दो। इसीलिए मात्र इलाहाबाद जिले में ही ७६ मन्दिर गिराये गये थे। ताजमहल भवन को भी जयसिंह से बलात् छीन लिया गया था—जैसा 'बादशाहनामा' के खण्ड I, पृष्ठ ४०३ पर दी गई आत्म-स्वीकृति से स्वयं सिद्ध है। अतः ऐतिहासिक बण्णों से छोटकर यदि कुछ विवेदण शाहजहाँ के साथ जोड़े

ही हों, तो 'प्रेमी और वास्तुकलाकार' न होकर 'अपहरणकर्ता और लग्नमट', 'विश्वसक और भ्रष्टकर्ता', 'प्रातनादाता और सूदखोर' और 'विद्रोही और धर्मान्धि' ही हो सकते हैं।

उपर्युक्त विशेषणों का उसके राज्य के वर्णनों में पर्याप्त आधार है वर्णांक जात ही है कि शाहजहाँ ने अपने पिता बादशाह जहाँगीर के विरुद्ध विश्वासी जाती थी, और शाहजहाँ का यह स्वभाव भी सभी लोगों को मालूम ही है कि वह जीवण दुर्बल यातनाओं का भय देकर पकड़े हुए इसाइयों और हिन्दुओं को धरकाता रहता था, ताकि वे मुसलमान बन जाएँ।

मुमताज के प्रति शाहजहाँ के असीम प्रेम के कारण ताज का निर्माण होना मानना भी अयुक्तियुक्त और अनेक दृष्टियों से बेहूदगी है। सर्व-इष्टम, किसी भी महिला के साथ सम्भोग की कामना पुरुष को निश्चक्षत, लम्बवंकारी और अयोग्य बनाने वाली प्रेरणा है। रति-शृंगार कभी भी किसी पुरुष में विशेष शक्ति उत्पन्न नहीं करता। पुरुष-स्त्री के प्रेमवश उत्पन्न होने वाली मात्र दो वस्तुएँ ही सर्वव जात हैं—लड़का अथवा लड़की। किसी भी हालत में कोई भवन नहीं। यह प्रारम्भिक मनोविज्ञान है, मानव-कास्त्र है। इसी प्रकार यह विश्वास करना भी एक अन्य बेहूदगी है कि शाहजहाँ ने मुमताज के मृत-पिण्ड पर तो सम्पूर्ण प्रेम बरसा दिया हिन्दु उसके जीवित रहते उसके लिए, कुछ भी नहीं किया। किसी महिला के जीवित रहते उसको लाह-श्यार न करते जाला व्यक्ति उसी महिला की मृत्यु के बाद उसके शर्व के प्रति अत्यधिक उदार, द्वीभूत नहीं हो जायेगा। यही, ताजमहल के निर्माण के कारण यदि 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' की उपाधि शाहजहाँ के लिए सर्वथा उचित समझी जाती है, तो यह ही मृत्युम वादशाहों के लिए इसी प्रकार के अनेक विशेषण जीवन नहीं बड़े लिने वाले में विश्वास किया जाता है कि उन्होंने और दिल्ली में तप्पदरबार का तथाकथित मकबरा और दिल्ली में तप्पदरबार का तथाकथित मकबरा व अन्य बहुत-से भवनों का निर्माण कराया था। उदाहरण के लिए, किसी निःसन्तान विधवा हमीदा बानू को, जो बादशाह हुमायूं के हरम की ५,००० महिलाओं में से एक थी, नियमित रूप से, दिल्ली में विशाल भव्य दुमार्यू का मकबरा

निर्माण कराने का श्रेय दिया जाता है। तब क्या इतिहास में हमीदा बानू को भी 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' के रूप में वर्णन नहीं किया जाना चाहिये?

इसीसे हम दूसरे प्रश्न पर आ जाते हैं। मध्यकालीन मुस्लिम शाहजादियों, सुलतानों और दरवारियों को असंघय मकबरे-समूह बनवाने के साथ-साथ असंघय मस्जिदें बनवाने का भी श्रेय दिया जाता है। अपनी पत्नियों, अथवा अपने पतियों के लिए भव्य मकबरे बनवाने वालों को यदि 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' कहकर पुकारना शोभनीय है, तो उन व्यक्तियों को भी, जिनके बारे में विश्वास किया जाता है कि उन्होंने अगणित मस्जिदों का निर्माण कराया था, 'प्रेमी और सन्त' अथवा 'प्रेमी-और वास्तुकला-विशारद', 'दिन में धार्मिक और रात में छिठोरे' अथवा 'नृत्य और मुन्दरी के प्रेमी' पुकारना शोभनीय नहीं है? काल्पनिक 'प्रेमी और वास्तुकला-विशारद' शाहजहाँ की इच्छा पर ही ऐसे अनेक विशेषण-पुरुषों की कल्पना की जा सकती है।

वास्तुकला सम्बन्धी पाठ्यक्रम निर्धारित करने वाले और वास्तुकला-विशारद के रूप में योग्यता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा रखने वाले व्यक्ति भारतीय मध्यकालीन इतिहास के विद्वानों से यह पूछकर अपेक्षा कार्य ही करेंगे कि वे इस बात की विशद व्याख्या करें कि शाहजहाँ ने महिलाओं के प्रति आसक्ति को वास्तुकलात्मक अध्ययनों में किस प्रकार जोड़ दिया था! यदि ये दो विधाएँ एक-दूसरे की पूरक समझी जाती हैं, तो कोई कारण नहीं है कि इस भूतल के मूर्खतम, जड़ व्यक्ति हारा भी जैक्षिक अध्ययन को नीरन, कड़ी मज़दूरी क्यों समझा जायें! अध्ययन की प्रत्येक जात्या को उतना ही शृंगारिक बनाया जा सकता था जितना विचार किया जाता है कि शाहजहाँ ने वास्तुकला के अध्ययन को शृंगारिक बना दिया था (अथवा उसका यही एकमात्र कार्य था?)।

यह देखना शोप रह जाता है कि वास्तुकलाकार बनने की तीव्र इच्छा रखने वाली महिला क्या अपना जैक्षिक भविष्य उज्ज्वलतार बना सकती है यदि शृंगारिक भावना से एक या अधिक पुरुषों से गेल-मिलाय बड़ाये। और चूंकि शाहजहाँ की सर्वज्ञता ५,००० रुपैयों और इन्हीं के साथ-साथ

उसकी अनेकों हम-दिस्तर अन्य महिलाएँ भी थीं, इसलिए प्रायोगिक रूप में यह पता करना जरा जटिल परीक्षण होगा कि क्या किसी वास्तुकलात्मक आज्ञावाद के लिए १ : ५००० का अनुपात ठीक होगा चाहे पुरुष हो अथवा महिला, अथवा इत्युपर्याय महिला का काम कुछ कम या अधिक संख्या में चल सकता था। कुछ भी हो, सही अनुपात निकालने वाले गणितज्ञों/सांख्यिकी-विशेषज्ञों का अच्छा व्यस्त समय व्यतीत हो जायेगा और समझवतः शाहजहां के स्तर का अथवा उससे भी बढ़िया आदर्श 'प्रेमी-वास्तुकला-विचारद' गुणी का सही आकलन पा सकते में उनका सम्पूर्ण जीवन ही समाप्त हो जायेगा।

इतिहास-ज्ञानक और वास्तुकलाकार तथा समझवतः मात्र 'प्रेमी' लोग भी ऐसे गणितज्ञों/सांख्यिकी-विशेषज्ञों के साथ सम्बन्ध रखना स्वाभाविक रूप में ही प्रभाव करेंगे जो शृंगारिक और वास्तुकलात्मक प्रशिक्षण की ऐसी सही स्थिति का ज्ञान उपलब्ध करने का प्रशीक्षण करें जिससे आदर्श 'प्रेमी और वास्तुकलाविद' प्रकट हो सकें। यह एक अन्य विचारणीय बात हो सकती है कि 'प्रेमी और वास्तुकलाविद' होने के लिए शाहजहां के समान सौधा किसी वादशाही खानदान का होना आवश्यक होगा या कोई कांगड़ा व्यक्ति भी इस पद को प्राप्त करने की आशा कर सकता है !

एक अन्य विचारणीय प्रश्न यह भी होगा कि सुव्यवस्थित शृंगारिक वादशाही प्रदान करने के लिए वास्तुकलात्मक संस्थाओं में सह-शिक्षा का प्रबन्ध रहेगा अथवा अपने अध्ययनों में शृंगारिक साहाय्य के लिए अपने नन्दयागत कार्य के बाहर पूर्ण अथवा अंगकालिक समय हेतु छात्रों को स्वयं ही अपने शृंगारी भाषी ढूँढ़ने होंगे।

'प्रेमी और वास्तुकलाकार' के रूप में शाहजहां का ऐतिहासिक निष्पत्ति शैक्षिक पुनर्विचार और पाठ्यक्रम सम्बन्धी-सुधार के लिए नयी समझवताएँ प्रस्तुत करता है। और यद्यपि इस तथ्य का इतने व्यापक रूप में अथवा आयः इस्तेव नहीं किया गया है कि भारत में प्रत्येक मुस्लिम सुलतान अथवा नवाब शाहजहां के समान ही निषुण, निपणात 'प्रेमी और वास्तुकलाकार' वा, नवापि विश्वासन ऐतिहासिक पुस्तकों का निहितार्थ देखते ही हमें जान होता है कि उन सभी शोधों के सम्बन्ध में मुक्त रूप से वर्णन

किया गया है कि उन सबों के संरक्षण में बड़े-बड़े हरम थे, वे सभी मादक-ओषधियों और तेज नशीले पदार्थों का भारी मात्रा में सेवन किया करते थे, तथा बड़ी-बड़ी संख्या में—अनायास ही मकबरों और मस्जिदों का निर्माण करा दिया करते थे। इस प्रकार, सभी शासक मुस्लिम खानदानों के सभी शाहजहां और शाहजहांदियों, कम-से-कम भारत में तो शेष 'प्रेमी और वास्तुकलाकार' सिद्ध होते हैं।

इस अटूट इस्लाम परम्परा से सन्नद्ध होने पर यदि कोई शिक्षा-सुधारक हमें 'प्रेमी और वास्तुकलाकार', 'प्रेमी और शिक्षक', 'प्रेमी और चिकित्सक', 'प्रेमी और विधि-वेत्ता', 'प्रेमी और यान्त्रिक', 'प्रेमी और अभियन्ता', और 'प्रेमी और विद्युत्-विशेषज्ञ' बनाने के लिए हमारे पाठ्यक्रमों में परिवर्तन करने की तत्परता दिखाने पर नैतिक-आपलियों का उत्तर देने पर विवश किया जाता है, तो वह समर्थ सुधारक गवं से चारों ओर देखकर उस नियम-निष्ठ व्यक्ति से कहेगा कि, "जाइए। और मुस्लिम व अंग्रेज विद्वानों और उनके अन्धे, मिथित अनुयायियों हारा तैयार किए गए मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पाठ्य-ग्रन्थों को पुनः पढ़िये, तभा चूप हो जाइये।" यदि कोई व्यक्ति सोचता है कि अश्लील साहित्य, वेड्यावृत्ति, मदिरा-पान अथवा मादक औषध-सेवन व्यक्ति के अध्ययन, या चरित्र या स्वास्थ्य या व्यावसायिक-यद को हानि पहुँचाता है, तो उसे चाहिये कि वह परम्परागत भारतीय इतिहास-ग्रन्थों का अध्ययन करे और ज्ञानार्जन करलाभान्वित हो। व्यक्ति असीमित रूप में खान-पान कर सकता है, शराब पी सकता है, और शिथिल, बलान्त हो सकता है, तथा फिर भी ही—इस सबके बावजूद अथवा इसी के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसलिए, आइये, हम सब भी कहें—"धन्य है 'प्रेमी और वास्तुकलाकार' शाहजहां जो हमारे समक्ष, मुक्त शैक्षिक अध्ययनों को किकतंद्य-विमूळकारी शृंगार के साथ जोड़ने में, एक अनुकरणीय ज्वलन्त उदाहरण छोड़ रहा है।"

: १३ :

अकबर के तथाकथित विवाह स्पष्ट रूप में अपहरण-काण्ड थे

भारत में तीसरी पीढ़ी के मुगल-शासक अकबर (मन् १५५६-१६०५) ने बहुमा अवाञ्छनीय रूप में प्रदर्शित किया गया है, और एक महान् व्यक्ति और मन्त्रित शासक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

उसके जीवन और चरित्र के प्रत्येक पक्ष का पूर्ण पुनर्विवेचन और सुन्दरीन लाभस्वरूप है। वह वैमा देवदूत नहीं है, जैसाकि उसे प्रस्तुत करने का इन किया जाता है। यहाँ में अकबर के जीवन और नियम के मात्र एक वज्र की ही चर्चा करना चाहता है, और वह है उसका वैवाहिक-कार्य, जिसको उसी ने जननमंगदाप-मीहाइँ और विचक्षण कूटनीति में गीति-स्वरसंगति और नवंयोग्य निवार्द्धों के अति-प्रणग्नित रूप में वर्णन किया गया है।

मैं, इस अध्याय में कुछ प्रतिनिधि, जूने हुए उदाहरणों की चर्चा करना चाहता हूँ। उसमें मैं राम-मं-कम दो तो अवन्य, पूर्व-चिन्तित हत्याकाण्ड थे। एक अपेक्षा जामता या जिम्मे एक पति को इसलिए उत्तेजित कर शिकार करना था कि उसकी पत्नी को हत्यियाया जा सके। अन्य मामले इस वार्दित्रय में वर्णित किए गये थे। इनके माथ ही कुछ ऐसे प्रयत्न भी दृष्टिकोणी ने मुद्द-वेत्त्र में युद्ध का वरण नहीं किया होता, तो वह भी अकबर के हमें जानी जानी-चीजों समाप्त करती, और ऐसी स्थिति में अबुल खिलाफ के रूप में प्रस्तुत कर दिया होता।

अकबर के जिम वैवाहिक-सम्बन्ध की बहुत शैली बाजारी जाती है, वह जयपुर के शासक राजवराने से है, किन्तु वह कार्य भी अकबर के एक सैनिक-सरदार द्वारा राजा भारमल का पराभव करने के बाद सम्पन्न कराया गया था। वह व्यक्ति या शफ़ूदीन, जिसने भारमल के रजवाड़े पर आतंक और भय के अनेक आक्रमण किए थे। शफ़ूदीन जयपुर राजवराने के तीन राजकुमारों—खंगर, राजमिह और जगन्नाथ को पकड़ पाने में सफल हुआ था। उनको साँभर में बन्दीगृह में रखा गया था और स्पष्टतया भीषण यातनाएँ देकर मार डालने की धमकी भी दी गई थी। उनकी ख़तरे में पड़ी जिन्दगी बचाने के लिए ही भारमल की कन्या का कोमायं अकबर के हरम के द्वार पर बलि बढ़ाता पड़ा था।

डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने अपनी 'अकबर महान्' नामक पुस्तक के पृष्ठ ६१-६३ पर पर्यवेक्षण किया है : "कछवाह प्रमुख के समझ सर्वनाश उपस्थित था। इसीलिए, असहायावस्था में उसने अकबर द्वारा मध्यस्वता और उसके साथ समझौता स्वीकार कर लिया।" यही कारण था कि ज्यों ही निरीह, असहाय राजपूत कन्या का अपेण किया गया, ज्यों ही तीनों राजकुमारों को बन्दी-अवस्था से मुक्ति दे दी गई। डाक्टर श्रीवास्तव द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि अकबर के आते पर दोसा और उसके निकटवर्ती खेत्रों के निवासी लोग भाग गये थे, जो सिद्ध करता है कि अकबर को शिकार की खोज में फिरने वाला चीता समझा जाता था, न कि किसी प्रेम-यात्रा पर पधारा मुस्कराता, मुकोमल-हृदय दूल्हा। उसे तो नृशंस मुद्द-पिपासु व्यक्ति के रूप में देखा जाता था जो मुगल-कूरता की दुष्टता में बन्दी बनाये गये तीन भाइयों के जीवन के बदले में उनकी बहिन, एक राजपूत कन्या का अपहरण करने के लिए क्रोधित होता हुआ चला आया था।

यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि साँभर न तो अकबर की ओर न ही जयपुर-शासक की राजधानी थी। ऐसा कोई सांसारिक कारण तो दिखायी नहीं देता था कि यह तथाकथित शाही-विवाह ऐसे नियंत्रण स्थान पर क्यों 'सम्पन्न' किया गया? कारण स्पष्टतया यह था कि तीन बन्दी राजपूत राजकुमारों की जीवन-मुक्ति का मूल राजकुमारी का कोमायं या जो समर्पण करना पड़ा था।

एक अन्य सूत्र यह है कि भारमल का कोई भी सम्बन्धी इस तथाकथित विवाह में सम्मिलित अवश्य वहाँ पर उपस्थित नहीं था। इतिहास द्वारा हमें जात होता है कि भारमल के पुत्रों और अन्य सम्बन्धियों का, बाद में अकबर द्वारा परिचय रण-धर्मधीर नामक स्थान पर कराया गया था। यह विलक्षण स्वाभाविक ही या क्योंकि अत्यन्त मद्यप, लम्पट और कामुक विदेशियों के हाथों में अपनी महिलाएँ सौंपने के स्थान पर उनको अग्नि की भेट चढ़ा देने वाले, जीवित ही जौहर की ज्वालाओं में प्राण होम देने वाले वीर राजपूतों को यह कर्म अत्यन्त तिरक्करणीय और शर्मनाक मालम हआ था।

दूसरा उदाहरण वैरम खान की विधवा सलीमा सुल्तान वेगम के साथ अकबर के तथाकाषित विवाह का है। उस विधवा पर अकबर की बुरी नजर रही ही थी यद्यपि वैरम खान आयु में अकबर से ज्येठ था और बालक अकबर को उसके राजन्मिहासन पर बैठाने में अनेक संकटों से उसके संरक्षक के रूप में कार्य करता रहा था। हुमायूँ की वहिन सलीमा वेगम की लड़की अकबर की निकट-सम्बन्धी वहिन थी।

जलवाया राहन था।
जलवाया के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक के पृष्ठ ४१ पर डॉक्टर आशीर्वादी नाम व्यक्तिगत उल्लेख करते हैं— “बहुत पहले सन् १५५७ ई० में ही बैरम जाम की रफ़ा समय अपने विश्व एक्स्प्रेस का सम्बोध हो गया था जब एक दिन, सेकोट ये बाजारी पर, जाही हाथी बोमार बैरम जान के सेमे में ढीड़ते

हुए चुस आये थे। उस समय से, बड़े उपर्युक्त दंग से वैराम लान को शर्तः-
शनीः अवितहीन किया गया, खुली लड़ाई में पछाड़ा गया, देश-निकाला
दिया गया, अनहिलवाड़ पाटन तक उसका पीछा किया गया, उसके पीछे
कुछ अफगानों को लगाकर उसे मरवा डाला गया। उसके तुरन्त बाद, उसकी
पत्नी को अकबर के हरम में सम्मिलित होने के लिए बाध्य कर दिया गया।

यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि अकबर के हाथियों का वैरम जान के खेमे में भगदड़ करते हुए उस आना इस बात का असंदिग्ध प्रमाण है कि सलीमा बेगम की वैरम जान के साथ शादी ने अकबर के शाही कोप को भड़का दिया था। विन्सेंट स्मिथ ने 'अकबर, महान् मुग़ल' नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३०-३१ पर पर्यवेक्षण किया है: "सेना मंकोट से, जालंधर छहरती हुई, लाहौर पहुँच गयी जहाँ वैरम जान ने सलीमा बेगम से विवाह कर लिया।"

ब्लौचमन ने आई-ने-अकबरी के अपने संस्करण में बड़े आदमियों का वर्णन करते हुए पृष्ठ ३२१-३४८ पर लिखा है कि बैरम खान ने सलीमा बेगम से शादी की और उसके जल्दी बाद ही अकबर व उसमें मन-मुटाब प्रारम्भ हो गया। यह साक्ष्य और तथ्य कि ताज के सर्वोच्च शाही सेवक बैरम खान से सभी सत्ता छीन ली गयी थी, फिर उसके जीवन की शक्ति छीन ली गयी और अन्त में उसकी पत्नी की इज्जत मात्र इसलिए अपहृत कर ली गयी कि १५ वर्षीय अकबर की काम-लोनुप दृष्टि बैरम खान की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी पर दबपन से ही थी, अकबर की विवाहासक्ति और अन्य व्यक्तियों के वैवाहिक जीवन में पावनता के प्रति उसकी ओर तिरस्कारपूर्ण भावना का विशिष्ट प्रमाण है।

प्रसंगवश उत्तेजक कर दिया जाय कि अपनी पुस्तक के अन्त में विन्सेट सिमथ ने अकबर के जिन दुष्कृतियों की सूची दी है, उपर्युक्त घटना को भी अकबर के घृणित, पूर्व-विचारित, नृशंस हत्याकाण्ड के रूप में उसी में जोड़ लेना चाहिये।

अकबर की तथाकथित सच्चरित्रता के मनगढ़ल वर्णनों ने, जो समस्त संसार में पढ़ाये जा रहे हैं, ऐसा आण्य प्रकट करने का बल किया है कि अकबर ने सती-प्रथा की उस कुर रीति को रोक दिया था जिसके बनागत

अपने मृत पति की चिता में आत्मदाह करके हिन्दू विधवा पत्नी मर जाया करती थी। यह दावा, कि दया की भावना से द्वितीय होकर अकबर ने सती-प्रथा को रोक देने का आदेश दे दिया था, उसी उश्वादी मुस्लिम मनगढ़न्ता वालों के द्वे में से एक है जिसे आज भारतीय मध्यकालीन इतिहास की संज्ञा देकर सर्वेष्व प्रचारित, प्रसारित किया जा रहा है। एक समकालीन कैथोलिक पादरी नवहरण का स्पष्ट कहना है कि अकबर एक ऐसा कूर-सम्भोगी था जो निहत्तासंकर्म को उपहास ही समझता था। अकबर द्वारा सती-प्रथा बन्द करने के दावे के प्रमाण-स्वरूप जो योड़े-से उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, वे उदाहरण वे हैं जिनमें असहाय हिन्दू राजकुलीन विधवाओं को अपने ही हरम में ठूंस देने के लिए अकबर ने मध्यस्थिता की थी।

ऐसा ही ज्वलन्त एक उदाहरण बीरभद्र का है जो पन्ना नामक हिन्दू राजवाड़े का राजकुमार था और जो अपनी आकर्षक, सुन्दर पत्नी के साथ, सज्जरीर प्रतिभू—सज्जरीर वग्धक के रूप में अकबर के दरबार में रहा करता था। जब उसके पिता रामचन्द्र की मृत्यु का समाचार आया, तो बीरभद्र राज-सिंहासन पर बैठने के लिए अपनी राजधानी रीवां की ओर चल पड़ा। जूँठे, समग्रहन्त इस्लामी वर्णनों में कहा गया है कि जब बीरभद्र अपनी राजधानी के पास पहुँचा, तब अपनी पालकी से गिर पड़ा और मर गया। उस समय उसकी पत्नी को सती होने के लिए तैयार किया गया था, किन्तु उसे अकबर ने सती होने से रोक दिया।

ऐसे पीछोंदा और विकृत मुस्लिम वर्णनों में से वास्तविक घटना को भली प्रकार छाँटा जा सकता है। इसका कारण यह है कि उनमें अनेक लुटियाँ और बेहदगियाँ हैं। बीरभद्र कोई शिशु तो न था जो मात्र दो या तीन फुट की ऊँचाई से नीचे गिर जाए (क्योंकि याकाम में पालकी को इतनी ऊँचाई न ढोकर ने जाते हैं) और मर जाये। साथ ही, पालकी ढोने वाले कहार भी ऐसे कोई नीचिक्षिए नहीं थे जो अपने स्वामि—प्रभु के पतन का कारण हो पाते। अब, यह स्पष्ट है कि अकबर के इशारे पर ही बीरभद्र को उसकी और अकबर की राजधानी के मध्य किसी निर्जन-स्थान पर धात लगाकर मार डाला गया था क्योंकि अकबर की पापमयी कुटिल दृष्टि बीरभद्र की

पत्नी पर थी। ज्यों ही बीरभद्र की हत्या कर दी गयी, ज्यों ही अधिक-ज्ञ द्वारा उसकी पत्नी को अकबर के हरम में बलात् ठूंस दिया गया।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण युवराज जयमल की रहस्यमयी और अकस्मात् मृत्यु में उपलब्ध होता है जहाँ उसकी पत्नी को अकबर के हरम में बलात् प्रविष्ट करने के लिए उसके हिन्दू राजकुलीन पति को इसी प्रकार मरवा डाला था। जयमल की पत्नी को सती होने से रोकने के लिए अकबर का स्वयं घोड़े पर सवार होकर जाना और उस महिला के सभी सम्बन्धियों को कारागार में डाल देना सभी प्रकार सन्देहपूर्ण परिस्थितियाँ ही हैं। जयमल को किसी विशेष उद्देश्य से बंगाल भेजा गया था—ऐसा कहा जाता है। वह रास्ते में मर गया। उसकी पत्नी ने सती हो जाने की तैयारी कर ली। और विल्कुल ठीक समय पर, तुदूर फतहपुर सीकरी से घोड़े पर चढ़कर, एक बीर योद्धा के समान अकबर ठीक उसी स्थान पर पहुँच जाता है जैसे रंगमंच पर लगे किसी पद्मे के पीछे से ही आया हो। उसने अपनी सेना अथवा आरक्षी की किसी भी टूकड़ी पर अथवा अपने अधीन किसी अन्य अधिकारी पर विश्वास नहीं किया। और उसे उस असहाय महिला के सभी सम्बन्धियों को अन्धकूप की भीषण यातनाओं को सहन कराने के लिए बन्दी कर लेना पड़ा। यह कथा अकस्मात् यहीं समाप्त हो जाती है—इसमें यह भी उल्लेख नहीं किया जाता कि उस नाटक के महानायक अर्थात् अकबर और उस दुख-संतप्ता महिला की गति क्या हुई? उसी विधवा के राथ-साथ शमशान-घाट तक जाने वाले सभी सम्बन्धियों को जब बन्दीगृह में डाल दिया, तो उस असहाय विधवा को अकबर कहाँ भेज सकता था? स्वाभाविक ही है, कि अत्यन्त संकोचपूर्वक, 'सम्वेदनशील' अकबर को उस महिला को अपने ही हरम में शरण, आश्रय और संरक्षण देने के लिए बाध्य होना पड़ा—कहानी को यहीं चरम-विन्दु प्रतीत होता है।

विन्सेट स्मिथ ने इस मम्बन्ध में अत्यन्त विवेकपूर्ण टिप्पणी की है कि अकबर के आत्म-प्रशंसित, आत्म-नियुक्त तिथिवृत्त-लेखक अबुल फजल ने इस कथा का विस प्रकार वर्णन किया है। यहाँ यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि लगभग सभी इतिहास-लेखकों और स्वयं ताज़ के हठदार

जहाँगीर ने भी अबुल फ़ज़ल को 'निर्वज्ज्ञ चापलूस' का नाम दिया है। जहाँगीर ने भी अबुल फ़ज़ल को 'निर्वज्ज्ञ चापलूस' का नाम दिया है। इस घटना का स्थान और सही-सही तारीख विन्सेट स्मिथ ने कहा है—“इस घटना का स्थान और सही-सही तारीख नहीं बताये गये हैं। लड़की ही भाँति, अबुल फ़ज़ल के इस वर्णन में स्पष्टता और संखें दो लम्बाव हैं।”

उपर्युक्त अनुचित और ठोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किये गये सदोष वर्णन को पुनः उन्हीं रूप में देखने पर स्पष्ट जात हो जाता है कि जयमल पूर्णरूप को पुनः उन्हीं रूप में देखने पर स्पष्ट जात हो जाता है कि जयमल पूर्णरूप को पुनः उन्हीं रूपोंकि उसे विशिष्ट 'उद्देश्य' की प्राप्ति के लिए बंगाल भेजा ने स्वस्य या क्योंकि उसे विशिष्ट 'उद्देश्य' की प्राप्ति के लिए बंगाल भेजा ने स्वस्य या क्योंकि उसे विशिष्ट लिया गया और असुरक्षित अवस्था में कुछ हूर यथा पर रहे थे, उसे अपट लिया गया और असुरक्षित अवस्था में कुछ हूर यथा पर रहे थे। तारीख व स्थान का तो उस हालत में कोई महत्व हो नहीं जबकि किसी आदमी की तलाश कुत्ते के समान की जा रही थी और इब व उन्हीं कहीं भीका मिलने पर उसे मार डालना ही अभीष्ट था। स्पष्ट है कि उस घातक घटना की क्षण-प्रतिक्रिया जानकारी से अकबर ने निरन्तर अवगत रहा जा रहा था। जब जयमल की मृत्यु के बाद उनके सम्बन्धियों ने स्पष्टतः अकबर द्वारा अपहरण का प्रतिकार किया, तो अकबर ने उन सबको बन्दीगृह में डालकर अपने रास्ते का कांडा साफ़-कर लिया। उनको ही मृतक की चिता के किनारे खड़ी शोक-संतप्ता और असहाय, अमूरक्षित विवेदा को अकबर के हरम में बलात् प्रविष्ट कर दिया गया।

अह ऐसा रहने की बात है कि अकबर के युग में सती-प्रथा अति व्याप्ती की। ऐसे माननों में उसकी मध्यस्थिता, जिसको असत्य रूप में कहा जाता है कि उनके कुर प्रथा को रोकने की इच्छा से प्रेरित होकर की थी, उस रूप में की उन सुन्दर विवेदाओं को स्वयं अपहृत करने के लिए ही थी। अन्यथा, अकबर के बहल इसी एक मामले में रुचि क्यों लेता? और वह अकेन्द्रीय ही क्यों दाए़? और वह ठीक समय पर, ठीक स्थान पर कैसे रुचि रहा? और जयमल राजधानी में जाने के बाद नुरुल्लत कैसे मर गया था? और उन दिनों में उन राजनुरुद्धरणतम इननी सामान्य नहीं थी जितनी थी, उपर्युक्त शीर्षक के लालों की रुचि करने के स्थान पर, उसकी

शोक-विलूप्ता पत्नी का शब चिता के पास ही से पीछा करने में और उसके सम्बन्धियों के संरक्षणशील, सुरक्षित क्षेत्र से उसे अलग करने में ही अकबर अधिक रुचि लेता हुआ प्रतीत हुआ। इसलिए, मह अन्य हत्या और आ-हरण-कागड़ भी अकबर के रहस्यमय वैवाहिक-व्यापारों में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

चौथे और कदाचित् अन्य अनेक अपहरणों का अन्त हत्या में नहीं हुआ क्योंकि इस मामले में पति महोदय चूपके से मुद्रर दक्षिण-क्षेत्र को चल पड़े थे और अपनी पत्नी पर अकबर का अधिकार होने का पूरा-पूरा अवसर दे गये थे। इस घटना का वर्णन विन्सेट स्मिथ की पुस्तक के पृष्ठ ४७ पर और डॉक्टर श्रीवास्तव जी ने बदायुनी के उदारण से कहा है कि “जनवरी १२, सन् १५६४ ई० को अकबर के ऊपर एक प्राणघातक प्रयत्न किया गया था जो अकबर द्वारा कुछ विशिष्ट परिवारों के सम्मान के हरण के विरुद्ध रौप का फल था। बादशाह अकबर ने शेख बद्रुल बसी को वाध्य कर दिया था कि वह अपनी अद्वितीय, अनिच्छ सुन्दरी पत्नी को तलाक दे दे। उस शेख ने आज्ञा का पालन किया और बीदर चला गया, तथा उसके बाद उसके बारे में कुछ सुना नहीं गया।” और कोन जानता है कि उसकी भी हत्या नहीं की गई हो, क्योंकि यह तो अकबर का नित्य का स्वभाव, अस्यास था कि जिस किसी भी व्यक्ति की पत्नी पर उसकी बुरी नज़र टिक गई, अकबर ने उसी को किसी-न-किसी बहाने से हूर भेज दिया और रास्ते में मरवा डाला जैसाकि हम बैरम ज्ञान और जयमल के मामलों में पहले ही देख चुके हैं।

डॉक्टर श्रीवास्तव ने आगे लिखा है—“हिजड़ों और इसातों के माध्यम से उसी प्रकार के सम्बन्धों के लिए समझौता-बार्ता प्रारम्भ हो गई। बदायुनी का वर्णन ठीक प्रतीत होता है।” इसका अर्थ यह है कि ऐसे अन्य सैकड़ों ददाहरण हो सकते हैं जिनमें अकबर के हरम को भरने के लिए सैकड़ों पत्नियों को उनके कानूनी पतियों से सदेव के लिए अलग कर दिया गया था।

अपनी पुस्तक के पृष्ठ १२७ पर डॉक्टर श्रीवास्तव का कहना है कि

अकबर ने बहुत की शुद्धी के विवाह किया था जो वीकानेर के ग्रामक
कन्याकुमार का थाई था। उद्दि इस बहुती का पुणे विवाह संचोका जाये
हो अमर हो जायेगा कि उम्रन विवाह की आमतक समझ उपस्थित
होने पर ही वीकानेर के युद्धप्राने की अपनी अमहाय कन्या का कोमार्य
उम्रन के सम्मुक्त अपवित्र करने के लिए बाज्य होना पड़ा था।

इस अमर उम्रन अकबर किस प्रकार के थे, जिनको शब्दाहम्बर
और विट्टना-कल विवाहों के नाम दिये गये हैं, उसी पुस्तक में आगे दिये
के हुए उद्दरों के सम्मट होता है। इंटरव्यू थीवास्तव ने लिखा है—
“अम्भेश्वर के रावल हर चाह ने अपनी पुत्री विवाह में अकबर की दे दी।
यहाँ अम्भानदाम को देखा जाया था कि वह रावकुमारी को जाही देर में
में ले जायें।” वह किस अकबर का ‘विवाह’ है जिसमें तो इत्तहा दुलहिन के
पर जाता है, और उहाँ इत्तहा दुलहा के पर जाती है, अपितु पाश्वन्ध से
नैह एक कैम्प-टुरी के साथ राजा भगवानदाम को भेज दिया जाता है
जल्दी वह कोई दगर-नियम का दार्शना ही जो लावारिस जानवरों को
उठाने के लिए किया गया है। भगवानदाम जाता है, और अमहाय, अनाय कन्या
को ले जाता है तब उसे अकबर के जाही देर में दूस देता है जो वास्तव में
एक उद्घार है एक जिन परम पशुओं के कोङ्गो-हातम के समान ही है, जहाँ
अमहाय नहिनायें भरी वही थीं और वही अकबर सभी साँड़ प्रजननकार्य
के लिए जर्बीच, अद्वितीय थी।

मन १५०३ ई० में अकबर ने बौमवाहा और हंगरपुर के शासकों से
अम्भ-कन्याकुमार हार्गया। श्रोत्तुर थीवास्तव की पुस्तक के पृष्ठ इमांक
मालूम गुबल इहान की ओर हंगरपुर के शासक यावल आमकरण को
उसी बीमारी स्वीकार करे। किंतु वर्णन किया जाता है कि अकबर ने
हंगरपुर की यकृतमारी के ‘विवाह’ कर लिया। एक बार किंतु उस
मालूम हमराया का नाम, जो इस विवाह की नायिका समझी
गया है, अज्ञ रह जाता है। यह विष्णु रहता है क्योंकि इसका कोई
प्राप्त होना नहीं था। समर्पण की जगती में आदान-प्रदान करने वाली चल-

विष्णु इतिहास के कुछ विस्तृत अध्याय

सम्मति उस कन्या का कोमार्य मात्र ही है। इस बात को उस समय विष्णु
रूप में स्पष्ट कर दिया जाता है जब विद्वान् लेखक वर्णन करते हैं कि किस
प्रकार लौनकरण और दीरबर को दारीगाड़ों के रूप में नियुक्त किया जाया
जा कि वे अमहाय हंगरपुर वालिका को अकबर के देर में प्रविष्ट कर दे।
यहाँ किंतु, किसी दुल्हन की बायात अकबर के दरबार में नहीं जाती है,
और न ही अकबर की सीमाय प्राप्त होता है कि वह किसी अम्भुर के पर
पर दामाद के रूप में मुश्तोभित हो सके। इसके बदले, उस कन्या को उसके
विलाप करते हुए माता-पिता की स्नेहमयी गोद से कृतापूर्वक छीन लिया
जाता है क्योंकि अकबर की सेना के विद्वंसक-सूख में अपने राज्य की दबावें
के लिए अपनी कन्या को समर्पित करने की अति गोचरीय स्थिति से वे हत-
माय माता-पिता सदैव चिन्तित रहते थे।

अकबर की नितान्त लम्पटता के लम्बन्ध में उसके अपने दरबारी
विद्यवृत्त-लेखक अबुल फ़ज़ल ने (बोनमत की आईन-अकबरी के) आईन
१५ में लिखा है—“बादशाह ने अपने आराम करने के लिए एक विजाज
चहारदीवारी बनायी है जिसमें अत्यन्त भव्य भवन है। बद्दलि (हरम ने)
५,००० से अधिक महिलाएँ हैं, किंतु शहंशाह ने इनमें से प्रत्येक को
पृथक्-पृथक् निवास-गृह दे रखा है।” यह स्मरण रखते हुए कि अबुल-फ़ज़ल
एक चापलूस दरबारी लेखक था, अवित सहज ही यह अनुमत कर सकता
है कि सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में कहीं भी कोई ऐसा भवन नहीं है जो अकबर के
समय का हो और जिसमें ५,००० महिलाओं को पृथक्-पृथक् रखा जा
सकता है। स्वयं एक ही स्थान पर, पश्चात् रखने के लिए भी ऐसा भवन
कहीं विद्यमान नहीं है। वह तथ्य मिथ्य करता है कि असहाय ५,०००
महिलाओं को पशुओं के झुण्ड-समान एक ही स्थान में दूस दिया जाया
—अस्वच्छ और गन्दी वस्तियों में—शालिक रूप में ‘बाड़ी’ में जैसाकि
स्वयं अबुल फ़ज़ल कहता है।

उसी आईन में अबुल फ़ज़ल ने लागे कहा है—“जब भी कभी वस्त्रमें
अथवा उमरावों की पत्तियाँ या बहुवारियाँ उपहत होने की इच्छा
प्रकट करती है, तब उनकी अपनी इच्छा की मूलता सबसे पहले बाहनालय
के सेवकों को देनी पड़ती है, और किंतु उत्तर की प्रतीका करनी पड़ती है।

वहाँ से उनकी प्रारंभिक महल के अधिकारियों के पास भेज दी जाती है जिसके पश्चात् उनमें से उपर्युक्तों को हरम में प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी जाती है। उच्च-बंदर की कुछ महिलाएं वहाँ एक मास तक रहने की अनुमति है। प्राप्त कर लेती है।"

इसके बह बात वित्कुल अविचारणीय है कि वेगमें, उमराबों की पत्नियों और सभी सामान्य महिलाएं अकबर के साथ पति-पत्नी के रूप में जेल-जौल रखने के लिए व्यक्त हों, इसलिए उपर्युक्त अवतरण का अर्थ नाहि इतना ही है कि अकबर अपनी काम-पिपासा शान्त करने के लिए सभी महिलाओं को समर्थ, सम्मोग्या समझता था। जब हम देखते हैं कि दैरमंजून जैसे बड़े-बड़े उमराबों, सरदारों की पत्नियों, दरबारियों की पत्नियों और अन्य लोगों की पत्नियों का वैवाहिक-सतीत्व भी सुरक्षित नहीं का, तब ये सब उन्नुत वसी जैसे साधारण आदमियों की दुर्दशा की कल्पना तो सहज रूप में ही की जा सकती है।

लोचमन द्वारा सम्पादित आईने-अकबरी के पृष्ठ २७६ पर अबुल झन्न पाठक को सूचित करता है—“गहंशाह ने महल के पास ही शराब की एक दुकान स्वापित की है... दुकान पर इतनी अधिक वेश्याएँ राज्य-भर से आकर एकत्रित हो गई कि उनकी गणना करना भी कठिन कार्य हो गया... दरबारी लोग नचनियों को अपने घर ले जाया करते थे। यदि कोई ग्रिड दरबारी व्यक्ति किसी असम्मुक्ता को ले जाना चाहता है, तो उसे सर्वप्रथम गहंशाह से अनुमति प्राप्त करनी होती है। इसी प्रकार लहक भी लौटेवाली के शिकार होते थे, और गराबीपन तथा अज्ञान से खोय ही चून-चराचा ही चाता था। गहंशाह ने स्वयं कुछ प्रमुख वेश्याओं की कुलाया और उनसे पूछा कि उनका कौमार्य किसने भंग किया था?”

इस प्रकार, संक्षेप में समूर्ण साक्ष यह है कि अकबर के पास ५,००० महिलाओं से भी अधिक वन हरम होने के बावजूद भी वह वेश्याओं, लड़कों, नारीयों जैसी विशाल मंजूरी रखा करता था, और बड़े-बड़े दरबारियों और गारान्य बनता की पत्नियों का भी शील-भंग किया करता था।

विष्टरा; अत्येक अवित का विना किसी प्रकार का नू-नच किए अपना शील, छर्च, नम्मान और समर्पित अकबर को समर्पित करने वाला दीन-

इलाही का निहितार्थ असीमित लम्पटता के अतिरिक्त और कुछ ही नहीं। राय सुजंतसिह के साथ की गई रण-यम्भीर की सञ्चिसे जैसा स्पष्ट है, पराभूत शासकों द्वारा अकबर के हरम में अपनी महिलाएँ अनिवार्यतः भेजने से अकबर की कामुकता—लम्पटता और भी प्रत्यक्ष हो जाती है। इसके साथ ही सामान्य लोगों की वैवाहिक-गुप्तता पर अकबर के निरन्तर आक्रमण, पतियों का शिकार और मरण निश्चित करके, अवधा स्थान से बाहर भेजकर उनकी पत्नियों को अपनी कूर-सम्भोग वासना का शिकार बनाना भी अकबर की रति-लालसा को स्पष्ट कर देता है।

ऐसे अत्यन्त धृणित, हानिकर और गन्दे साइपों का विशाल भण्डार उपलब्ध होने की स्थिति में हमारे इतिहास-प्रन्थों का पर्याप्त संशोधन किया जाना चाहिये ताकि उनमें अकबर की काल्पनिक वैवाहिक-सद्वृत्तियों और मूल्यों को अब तनिक भी बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत न किया जाये।

9

इतिहासगम्भीत शब्द और वाक्प्रचार

समय के अनन्त प्रसार में भूतकालिक साम्राज्यों के प्रत्यक्ष चिह्न प्राप्त विस्मृति में लूप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार विद्यार्थीगण अधूरे वाक्यों में लूप्त शब्दों को भरकर भावावी परीक्षाओं में सफल हो जाते हैं, उसी प्रकार कुछ विशेष सूत्रों की सहायता से इतिहास-लेखक भी इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति कर इतिहास को पुनरुत्थान कर सकते हैं। ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण सूत्र उन शब्दों और वाक्यांशों से उपलब्ध होता है जो इतिहास से उद्भूत होने के कारण समय की अवाधि मति से पीढ़ियों तक प्रचलित रहते हैं, चाहे वे जिस साम्राज्य के गौरव को प्रतिष्ठानित करते हैं उसके अन्य सभी प्रत्यक्ष, दर्शनीय चिह्न सदैव के लिए लूप्त हो जाते हैं।

ब्रिटिश साम्राज्य के सभी अभिलेख और स्मृतियाँ नष्ट हो जाने के बाद भी बहुतक अंग्रेजी भाषा में 'ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूयस्त नहीं हुआ' अथवा 'इंग्लैण्ड सातों समुद्रों का स्वामी था' जैसे वाक्यांश बने रहे, तबतक लिटिश लोगों के विषव-व्यापी प्रभुत्व की चर्चा युगों तक चलती ही रही रही क्योंकि ये दो छोटे-छोटे वाक्यांश विलुप्त ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व के ठोस प्रमाण होते, चाहे अन्य सभी अभिलेख नष्ट भी हो जायें।

मराठी भाषा में से भी एक वाक्योंश उद्धृत किया जा सकता है जो इविहास की अटना को चरितार्थ, मिद्द करने वाला है। मराठी भाषा में महात्मि प्राप्तान्य बाल है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अकड़ कर कहे, “आप करने आपको समझते क्या है?... क्या आप अपने-आपको बाजीराव रुमाहते हो?” इविहास का कोई ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति भी यदि उपर्युक्त प्राप्तान्य से यह निष्कर्ष निकाले कि बाजीराव अवश्य ही कोई ऐसा बहाराद्वितीय उरदार रहा होगा, तो वह बिल्कुल ठीक होगा।

१८
बाजीराव तथ्यतः पूर्ण अधिराज-सत्ता का ही उपभोग करता था। इस प्रकार, सभी प्रकार के ऐतिहासिक अभिलेखों के नष्ट हो जाने पर भी मराठी भाषा में समाविष्ट यह छोटा-सा बोवय बाजीराव के विनष्ट, विलुप्त साम्राज्य के सम्बन्ध में विवेकणील इतिहास-लेखकों को भारी मात्रा में सामग्री प्रदान करता रहेगा।

यद्यपि साम्राज्यों के कारण ही ऐसी अभिव्यक्तियाँ उत्पन्न हो पाती हैं, तथापि विलुप्त साम्राज्य के अस्तित्व को उन सूचों की सहायता से पहचान पाना सम्भव है जो इतिहास से शुद्ध होकर, निखरकर आये हुए शब्दों से उपलब्ध होकर आते हैं और हजारों वर्षों निर्बाध रूप में चलते रहते हैं।

हमारे युग में प्रचलित विश्व हतिहास-पर्यामें किसी प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व का उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु कुछ ऐसी प्रचलित अभिव्यक्तियाँ हैं जो इस बात की संकेतक हैं कि किसी समय ऐसा साम्राज्य विद्यमान था।

आइये, हम 'आर्य' शब्द पर विचार करें। अंग्रेज व्यक्तियों से लेकर ईरानियों, तुकों और अफगानों तक यूरोप और एशिया के अनेक समुदाय स्वयं को 'आर्य' पुकारते हैं। इसका कारण यह है कि वे सब 'आर्य धर्म' अर्थात् 'आर्य अथवा हिन्दू जीवन-पद्धति का अनुमरण करते थे, जीवन की आर्य अथवा हिन्दू पद्धति के अनुयायी थे।' यह विश्वास करना गलत है कि 'आर्य' किसी जाति का बोध कराने वाला शब्द है। 'आर्य' जीवन की पद्धति का—हिन्दू जीवन-पद्धति का द्योतक है। कारण यह है कि चिर-विस्मरणा-तीत युग में अनेक राष्ट्रों ने हिन्दू जीवन-पद्धति उपनाम जीवन की आर्य-पद्धति को अंगीकार कर लिया था, इसलिए वे लोग स्वयं को 'आर्य' कहते हैं। किसी जाति के रूप में तो वे इतने प्रभूत-मात्रा, जनसंख्या बाले नहीं थे कि सारे यूरोप को और अधिकांश एशिया को बसा पाते। किन्तु वे सब हिन्दू-धर्म का पालन उसी प्रकार कर सकते थे जिस प्रकार ईसाई-मत और इस्लाम अपने-अपने साम्राज्यों के विस्तार के ताव-साथ प्रचारित-प्रसारित एवं व्याप्त होता गया। अत. हमारा निष्कर्ष है कि जो कोई भी समुदाय आज भी अपने आप को सहज-सरल रूप में 'आर्य' घोषित करता है, वह स्वाभाविक रूप में इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वह किसी समय

'हिन्दू धर्म' अर्थात् वैदिक अथवा हिन्दू जीवन-पद्धति का अनुसरण करता था। संक्षेप में कहा जाय तो कहना होगा कि वे सब हिन्दू थे।

हम अब एक अन्य अभिव्यक्ति लेते हैं। इतिहास में यह प्रायः दुहराया जाता है कि अरब-वासियों ने अपना सारा ज्ञान भारत से ही प्राप्त किया था। दूर्भाग्य है कि इस छोटी-सी महत्वपूर्ण बात का पूरा-पूरा निहितार्थ इस विवर के मानम ने विलुप्त हो चुका है।

उस अभिव्यक्ति से, अस्पष्ट रूप में, जो कुछ अनुमान किया जाता है वह यह है कि समय-समय पर यदों-कदा, इवके-दुक्के अरब यात्री आगनी की गई यात्राओं के समय भारत में रहते समय भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से किसी जादू से ही, भारतीय ज्ञान को जात्मसात कर लेते थे और फिर, मानो किसी जादू से ही, उस ज्ञान को अरब लोगों में प्रचारित-प्रसारित कर देते थे। यह विल्कुल बेहुदा, निराधार कल्पना है। इस प्रकार की इक्की-दुक्की, अ-व्यवस्थित यात्रा के किसी भी देश से ज्ञानार्जन नहीं किया जा सकता और न ही उस ज्ञान को किसी दूसरे देश में प्रचारित-प्रसारित किया जा सकता था। बहुत सारे ऐसे यात्रीमण तो अपने देश को बापस लौटते ही नहीं हैं। जो कुछ थोड़े-बहुत बचते हैं, उनके पास सभी भारतीय विज्ञानों और कलाओं को बलपूर्वक सीखने के लिए समय, धैर्य, अथवा प्रतिभा का अभाव होता है। बास लौटने पर, अपने समस्त देशवासियों को एकत्र करने और फिर, जो कुछ ज्ञान उन्होंने भारत में अर्जन किया उसकी उन सब एकत्रित लोगों को जिज्ञा देने के साथनों अथवा अधिकारों का उनके पास अभाव होता है।

एक देश किसी दूसरे देश की जानकारी मात्र तभी हृदयंगम करता है जब वह दूसरे देश के अधीन, गुलाम होता है। भारतीय लोगों का अंग्रेजी भाषा सीखने का उदाहरण लैं।

भारतीय लोगों ने अंग्रेजी भाषा का ज्ञान मात्र तभी प्राप्त किया जब विदेशी भाषा में ज्ञान करने आ गए। जो भारतीय लोग फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों द्वारा अधिकारित प्रदेशों के महत्वपूर्ण स्थानों में निवास करते थे, उनको उन्होंने विदेशी पाठ्यक्रमों का अध्ययन करना पड़ा था। इस अकार, एक देश का अवशेष दूसरे देश में प्रवेश तभी पा सकता है जब उसका दूसरे देश पर जासून हो। वह सिद्ध करता है कि 'अरब-वासियों

ने अपना सारा ज्ञान भारत से ही प्राप्त किया था' यह-समझ हम बात का द्योतक है कि अरब-वासी किसी समय हिन्दू साम्राज्य का एक भाग थे। जो लोग यह भी जानने के इच्छुक हों कि यह स्थिति कब थी, उनको हमारा उत्तर है कि यह स्थिति वेदों के युग से लेकर लगभग पैंगम्बर मोहम्मद के समय तक रही। विश्व के ज्ञान-कोशों में अकिल है कि अपने नये संस्कारित इस्लामी उन्माद व क्रोधाग्नि में अरब-वासियों ने मोहम्मद-पूर्व के अपने जीवन के सभी स्मृति-चिह्नों को जड़-मूल से उखाड़ किया था, विनष्ट कर दिया था।

इस्लाम और ईसाई-मतों ने अपने ही विलक्षण ढंग से नये धर्म-परिवर्तितों के मन में अपने विगत-काल के प्रति और तिरस्कार की भावना जागृत करने में और अपने पूर्वजों के प्रति वड़े ही मंकोच-भाव से चर्चा करने में असीम, उल्लेख योग्य सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति किसी यूरोपियन से उसके ईसा-पूर्व पूर्वजों के बारे में अथवा, अरबी, तुकं या ईरानी व्यक्ति से मुहम्मद-पूर्व के मृतकों के बारे में कुछ पूछे, तो वे व्यक्ति जो कुछ करेंगे वह यंह है कि वे अपना मूँह लटका लेंगे और कहेंगे कि उनके पूर्वज महत्वहीन व्यक्ति थे, वे तो नारकीय प्राणी थे और राक्षसी प्रकृति के व्यक्ति थे जिनका इतिहास उल्लेख-योग्य नहीं है, जिसका निहितार्थ है कि वे निपट मूढ़ अथवा लुच्चे-लफांग, अशिष्ट, असम्य जीव थे।

इतिहास ऐसे सरल प्रतिवादों को स्वीकार नहीं करता। इतिहास जानता है कि किसी ईसा अथवा किसी मोहम्मद के जन्म से बहुत अधिक पूर्वकाल से ही जनता ने सु-स्थापित सरकारें प्रस्थापित कर ली थीं। इस प्रकार के अस्वीकरणों, लज्जा या शर्म से उत्पन्न लालिमा से अथवा मनाही से कायं नहीं चलेगा।

हम जब ईसाई-मत और इस्लाम द्वारा विनष्ट किए गए इतिहास को खोदते हैं, तो हम पाते हैं कि यहाँ कभी एक विश्वव्यापी हिन्दू साम्राज्य विद्यमान था। एक-एक अंश से उस साम्राज्य की कथा की पुनर्रचना करने में हमें ऐसे शब्दों और वाक्यांशों की उपलब्धि होती है जो अपने उस विलुप्त हिन्दू साम्राज्य के बारे में ग्रन्थों से परिपूर्ण चर्चा करते हैं।

इतिहास को चरितार्थ करने वाली एक अन्य अभिव्यक्ति वैदिक धर्मदिग्ग

'हिन्दूवालों विजयमर्यादा' है जिसका अर्थ है कि सम्पूर्ण विश्व में जीवन की हिन्दू पद्धति का प्रसार करो। प्रसंगवश कह दिया जाय कि 'आर्यत्व कोई लोभी वस्तु भी जिसका प्रसार-प्रचार किया जा सकता था, त कि कोई जाति लोभी वस्तु भी जिसका प्रसार-प्रचार किया जा सकता था। सम्पूर्ण विश्व में यो जिसको जन्म से ही प्राप्त किया जा सकता था। सम्पूर्ण विश्व में 'आर्यत्व' को प्रसारित-प्रचारित करने का आदेश उसी राष्ट्र द्वारा दिया जा सकता था जो यह तथ्य भलीभांति जानता था कि सम्पूर्ण विश्व कितना बड़ा था तथा जिसके पास सम्पूर्ण विश्व में अपनी जीवन-पद्धति को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए साधन हों। ऐसे साधनों में एक भलीभांति प्रशिक्षित, अनुज्ञासित सेवा, प्रजासकों, धार्मिक प्रचारकों, अध्यापकों, वैज्ञानिकों और कलाकारों का समूह तथा एक प्रबुद्ध व बांछनीय सम्भवता समाविष्ट है।

हिन्दू साहित्य में ओत-प्रोत एक अन्य अति महत्त्वपूर्ण वाक्यांश 'वसुषेव कृष्टम्बकम्' है जिसका अर्थ है कि समस्त विश्व एक परिवार ही है। इसी बात को तो बास्तव में हिन्दू लोग अपने आचरण में चरितार्थ करते थे। वे जहाँ कहाँ भी गए—और वे लोग पृथ्वी के चहुँ ओर, चारों दिशाओं में गए थे—उन्होंने सब लोगों को एक सामान्य आर्यत्व में जोड़ दिया जिसकी निष्ठा एक सामान्य संस्कृति और समान आचरण के प्रति थी, जिस दो किसी इन्द्रा, मोहम्मद अब्दुल बुद्द की अधीनता को आवश्यक नहीं बनाती थी। यह आयं (प्रबुद्ध) जीवन-पद्धति थी जो प्रकाश, ज्ञान, संस्कृति और सेवा का दान करती थी किन्तु बदले में किसी भी वस्तु की कामना नहीं करती थी।

हिन्दुओं के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों (पुराणों) में भी अन्वेषणात्मक अभियानों के बहुत्यन सन्दर्भ समाविष्ट हैं। ऐसे अभियानों को 'राजसूय' और 'अज्ञामेड़' भी कहा जाता था। जागित-सम्पन्न हिन्दू सम्भाट अपना एक नु-मिहित घोटा नये-नये भू-प्रदेशों में भेजते थे। उस घोड़े के पीछे उन नजाटों के गीतिक होते थे, और वे सब उन नये प्रदेशों में "हिन्दू, आयं, वैदिक, बनानन" जीवन-पद्धति का प्रचार करते थे। चांकि हिन्दुस्थान (भारत) एक और दिमालय से और तीन दिशाओं में विद्याल सागरों से जित हुआ है, इसलिए स्थल-मार्ग से यज्ञ के अश्व जिस दिशा में जा सकते थे, वे उन्नर-उन्नर-नित्यम दिशा ही थी। अतः, यही कारण है कि हिन्दू साम्राज्य बन्धुविस्तार, अक्षगानिस्तान, ईरान, और तुर्की के मार्ग से ही सन्दर्भ विद्यमी एवं यूरोप, अफ्रीका और फ़सी साइबेरिया से जापान तक के लंबे दो पार कर ले गया था। ऊपर जिन भूखण्डों का उल्लेख किया गया है, उनपर फ़ैले उम विश्वाय हिन्दू साम्राज्य के बास्तविक चिह्नों का उल्लेख बनुवाई गयाएँ में किया जाएगा।

: १५ :

अनुसन्धान विधि-तत्त्व और इतिहास के विद्वानों की भद्री भूलें

संघ लोक सेवा आयोग और विद्यालयों व महाविद्यालयों की परीक्षाओं में वैठने वाले विद्यार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं में समाविष्ट, चूनी हुई कुछ अद्भुत भद्री भूलों को छापकर समाचार-नगर जब-नव पाठकों का मनोरंजन करते रहते हैं।

किन्तु ऐसे विद्यार्थी-गण भी इस विचार से सन्तोष, धैर्य धारण कर सकते हैं कि वे भी विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में ही हैं। वे इतिहास-ग्रन्थ भी समान रूप से ऐसी अद्भुत भद्री भूलों से भरे पड़े हैं, यद्यपि उनके लेखक अधिकारि-वर्ग से अत्यन्त प्रशंसित हैं और वे इतिहास-पुस्तके हम सभी को पढ़ाई जा रही हैं।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के कुछ अनिवार्य मिदानों की उपेक्षा का यह दुष्परिणाम हुआ है कि विद्यालय के छात्रों की भद्री भूलों की ही भाँति कुछ लुटियाँ अनुलंबनीय, परमपादन विगत-वटनाएं बनकर भारतीय इतिहास में स्थाई रूप धारण कर बैठी हैं। उनमें से एक यह है कि चूंकि कुछ भवनों के बारे में यह जात है कि ये भवन जिनमें अकबर, होणगशाह, मुहम्मद आदिलशाह तथा अन्य बहुत सारे अन्य लोगों के मकबरे बने हुए हैं उन्हीं लोगों की मृत्यु से पूर्व विद्यमान थे, इसलिए उन बाह्य व्यक्तियों को ये दिया जाता है कि उन्होंने अपने जीवन-काल में ही अपने-अपने मकबरों का निर्माण करवा लिया था।

दूसरी भद्री भूल यह है कि अहमदाबाद, अलाहाबाद, फिरोजाबाद, फैजाबाद, आगरा, दिल्ली, फतहपुर सीकरी और जौनपुर जैसे असंख्य

भारतीय नगर तुलों, अस्त्रों, अफ़गानों, अबीसीनियनों, कजाकों, उजावेकों, मंगोलों और तथ्य तो यह है कि भारतीयों के अतिरिक्त प्रत्येक अन्य समुदाय द्वारा निर्मित कहे जाते हैं।

तीसरी भट्टी भूल यह है कि मेरे विदेशी लोग, जिनके मध्यकालीन अधवा प्राचीन चाहिय में बास्तुकला और नगर-रचना शास्त्रों से सम्बन्धित एक भी मूल-पन्थ का अभाव है, ऐसे कुशल निर्माता थे, जिन्होंने सैकड़ों की संख्या में भारत में नगरों, किलों, राजमहलों और भवनों का निर्माण करवाया था। इस सम्बन्ध में हम यह पूछता चाहते हैं कि यदि अहमदाबाद की स्थापना का थेय किसी अहमदगाह को और फिरोजाबाद का थेय किसी फिरोजशाह को मात्र इसनिए दिया जाता है कि उन नगरों के साथ उन लोगों के नाम जुड़े हुए हैं, तब तो बल्लाहाबाद की स्थापना का थेय स्वयं अल्लाह को ही देना पड़ेगा !

चौथी भट्टी भूल यह है कि प्रत्येक हिन्दू-वस्तु से घोर धृणा करने वाले आक्रमणकारी मुस्लिम लोगों ने अपने सभी मकबरों, मस्जिदों, किलों, भवनों और राजमहलों का निर्माण पूर्णतः—नितान्त हिन्दू शैली में ही करवाया था।

पांचवीं भट्टी भूल यह है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों ने नृत पूर्वजों के लिए मकबरे के बाद मकबरे, और निम्न-वर्गीय लोगों के लिए नितिदों के बाद मस्जिदें बनवायीं किन्तु उनके लिए अधवा उनकी सन्तानों के लिए कोई राजमहल बनवा भवन नहीं बनवाए। इस प्रकार, लगभग प्रत्येक नृत छोटी, सफाई कर्मचारी, सरदार अधवा भारत में मुस्लिम दरवार से सम्बन्धित प्रत्येक बेगम बखवा मुलतान की मृत देह को आश्रय देने के लिए, जानो किसी बाद से ही, एक भवन मिल गया किन्तु जीवित खड़े और ठोकरे जाते किरने के समय निवास के लिए एक भी भवन नहीं बिल्कु।

छठी भट्टी भूल यह है कि प्रत्येक शासक, जो अपने पिता और पितामह के बून का प्यास रखता था, साबगही छोन लेने के बाद इतनी अधिक माला में फिल्हाल बे खोल-खोल ही गया कि अपने पृष्ठित और हत्या कर दिये गए

सम्बन्धियों के लिए विश्वाल मकबरे बनवाने हेतु दिवालिए-जन की स्थिति में भी पहुँच जाने के लिए तैयार हो गया।

सातवीं भट्टी भूल यह कही जा सकती है कि यद्यपि शाहजहां के अपने दैनंदिन तिथिवृत्त 'बादशाहनामा' में पृष्ठ ४०३ (एग्जायाटिक सोसायटी बौक बंगाल प्रकाशन की विलियोथेका इंडीका सीरीज, संण्ड १) पर स्वीकार किया गया है कि ताजमहल एक पूर्वकालिक हिन्दू राजमहल है, तथापि हमारे इतिहास-ग्रन्थों में शाहजहां द्वारा भूमि के एक टुकड़े पर मकबरा बनवाने के अत्यन्त धोखेपूर्ण किन्तु बढ़ा-बढ़ाकर कहे गए विवरण भरे पड़े हैं।

आठवीं भट्टी भूल यह है कि आयों की एक काल्पनिक जाति के चारों ओर समस्त सिद्धान्तों, मान्यताओं का निर्माण कर लिया गया है, जबकि ऐसी कोई जाति थीं ही नहीं। यदि ऐसी कोई आर्य-जाति रही होती, तो अनार्य-बंशोद्भवों को प्रवेश-बंजित करने के कारण आर्यसमाज तो पहले दर्जे की साम्प्रदायिक संस्था होती। इसके विपरीत आर्यसमाज तो सभी लोगों को अपने में सहर्ष अंगीकार करने वाला संगठन है, जहां बर्ण, बर्ण, जाति या राष्ट्रीयता की विशिष्टताओं को कोई मान्यता नहीं दी जाती।

ये सब त्रुटियाँ ऐतिहासिक विधि-तत्त्व के कुछ मौलिक नियमों की पूर्णतया घोर उपेक्षा करने के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई हैं।

ऐतिहासिक अनुसन्धान की प्रथम आवश्यक प्रबन्ध घट्टों के स्थान पर गुप्तचर प्रकार की पहुँच करना है। 'प्रैकिटसिग हिस्टोरियन' शीर्षक अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में प्रोफेसर डब्ल्यू० एच० वाल्श कहते हैं—“जब कोई इतिहास-लेखक ‘मूल घोतों’ में से इस या उसमें कोई कथन पढ़ता है, तो वह उसे स्वतः स्वीकार, मान्य नहीं करता है। यदि वह अपना कार्य भलीभांति जानता है, तो इस कथन के प्रति उसका दृष्टिकोण सदैव जालोचनात्मक होता है। उसे यह निश्चय, निर्णय करना होता है कि वह उसे स्वीकार करे अथवा नहीं—उस कथन पर विश्वास करे अथवा नहीं।” दुर्भाग्यकर, हम पूर्णतया असावधानी की वृत्ति के दर्शन करते हैं, चाहे विशिष्ट प्रसारण यी दिखाए गए हों—जैसाकि ताजमहल के मामले में हुआ है।

कोलिगच्चुड़ को उद्धृत करने के पश्चात्, जिसने इतिहास-लेखक की कार्य-विधि की तुलना एक गुप्तचर की कार्य-विधि से की है, प्रोफेसर वाल्श

आगे कहते हैं—“इतिहास-लेखक का मामला यथार्थ रूप में समाप्तान्तर है। यदि आवश्यकता पड़े जाय, तो उसे स्वयं अपने बटल, अटूट विश्वासों, भारणाओं पर भी उन्वेह करने को तेशार रहना चाहिये।” हम इसको लाभमहन् तथा कन्य मध्यकालीन भारतीय भवनों और नगरियों के बारे में घटित होने हुए नहीं देखते हैं यद्यपि उनके निर्माण के कार्यों को चुनौती दी गई है।

तिहासिक बनु सन्धान की एक अन्य अनिवार्य आवश्यकता विधि-
सम्मत, वैष्ण यहेच है। किसी अभियुक्त द्वारा अपना अपराध स्वीकार करलेने
पर भी कानून का आदेश है कि इण्डियिकारी मजिस्ट्रेट अभियुक्त को चेतावनी
दे दे कि अभियुक्त के लिए विवरण नहीं है कि वह अपराध स्वीकार करे,
किन्तु यदि वह अपराध स्वीकार करता थेयस्कर समझता है, तो उसका
कथन उसके विशद ही प्रयोग में लाया जायगा, न कि उसके पक्ष में। मुस्लिम
तिहासिक इसी प्रकार के स्वार्य-सिद्धिप्रक्रक्त कथन है, और यदि आवश्यकता
ही हो, तो उनको उन लोगों के विशद ही प्रयोग में लाना चाहिये जिनके पक्ष
में इनमें दावे लग्निहित हों, किन्तु उनके पक्ष में कभी नहीं।

नारं लके ने ऐतिहासिक संस्था (हिस्टोरिकल एसोसियेशन), लंदन के समूचे बन् १८३५ ई० में दिए गए अपने भाषण में इतिहास-लेखक और विद्यि-वेता के कार्य के बीच सादृश्य स्थापित करते हुए विद्यि-सम्मत पहुँच के उद्घातन का समर्थन किया था।

डॉक्टर जो. डॉ. रेनिपर अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री—इट्स परपत्र' एण्ड
मैथड' में कहते हैं : "साध्य के नियमों के प्रति दुराराध्य नगाव के कारण
भवन्त बान्धुकार भालमसंयम करता है, और निष्कर्ष पर पहुँचने के
अधिकारों की बाबत्वार स्वयित्र कर देता है। साध्य से निपटते समय कानून
ज्ञानिहान-नेतृष्ठक की अपेक्षा अधिक पदार्थवादी और आलोचनात्मक
होता है जो वापिलबाद के साथ भूमि विचरण करता है।"

प्राचीन भारतीय इतिहास-ग्रन्थ माल्य के नीर-क्षीर विवेचन और कानूनी कल-विज्ञान के प्रति अत्यधिक मान-सम्मान पर आधारित हैं। इस प्रकार, महाप्रभावी वाहनों का वाहनमहल के वास्तुकलाकारों के रूप में लाए हर्षते उत्तम कलाकारों के नामों पर विश्वास किया जाता है।

विभिन्न वर्णन-ग्रन्थों में इसकी निर्माणावधि १० से २२ वर्ष तक ती गये हैं, इसकी निर्माण-सम्बन्धी लागत ₹० ४०००० लाख से लेकर ₹० ८०००० करोड़ १७ लाख तक अंकी गई है, कीन ने (अपनी 'हेण्डबुक फार विजिट' दु आगरा एण्ड इंस नैवरटुड' पुस्तक में) तारीख-ए-ताजमहल प्रलेख को जाली घोषित किया है,—आदि-आदि कुछ मुख्य दोष सम्मुख प्रस्तुत किये हैं, तथापि परम्परागत विचारधारा के अमर्यक लोगों को उस कथा में को दुर्गंध नहीं आती है क्योंकि उनके ऐतिहासिक चेहरे में उनकी कानूनी नाम गायब हैं।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए तीमरी आवश्यक वस्तु तर्क है। न को विज्ञानों का विज्ञान ठीक ही कहा जाता है व्याख्याकि इसका सम्बन्ध दोष रहित युक्तियों से होता है जो किसी भी क्षेत्र में सही निण्यों तक पहुँचने की एक मूल आवश्यकता है। आइए, हम एक व्यावहारिक—नित्य जीवन का उदाहरण लें। यदि किसी शब्द-पिंड पर ऐसा एक टिप्पणी-पत्र उपलब्ध हो जिसमें कहा गया है कि मृतक ने आत्महत्या की है जिसके लिए किसी को भी दोष देने की आवश्यकता नहीं, किन्तु उस शब्द की पीठ में भी का हुआ एक छुरा भी मिलता है, तो ताकिक निष्कर्ष यह होगा कि मृत्यु तो हत्या का परिणाम ही है, और उस शब्द-पिंड पर रखा गया वह टिप्पणी-पत्र जारी है। लिखित शब्दों को ठोस परिस्थिति-साक्ष्य के साथ अस्वीकार, अमाल करने में इस प्रकार की ताकिक-विवेकशीलता का भारतीय इतिहास में बहुत सारे निष्कर्षों तक पहुँचने में नितान्त अभाव रहा है—यह दृष्टव्य स्थिति है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान की चौथी आवश्यकता सोलिक चिन्तन है दुर्भाग्य है कि भारत में यदि किसी व्यक्ति के पास इतिहास की उपाधि है अथवा वह इतिहास पढ़ाने के कार्य में नियुक्त है, अथवा इतिहास सम्बन्धित किसी विभाग या संस्था में काम कर रहा है, तो सामान्य जनते व स्वयं वही व्यक्ति अपने आप को 'इतिहासकार, इतिहास-लेखक, इतिहासज्ञ मान लेते हैं। प्रोफेसर बाला कहते हैं : "इतिहास-लेखकों में प्रायः उस सूखम् अन्तदृष्टि का अभाव रहता है जो पर्याप्त पुनर्उचना के लिए जरूरी होता है..." और वे प्रायः उन एकाकी लेखों का उल्लेख करने के लिए बाल्य हो

गए प्रतीत होते हैं जिनको वे एक संगत शृंखला में बढ़ भी नहीं कर पाते। ऐतिहासिक चिन्तन में पुनरुज्जीवित होने की प्रक्रिया प्रधान वस्तु है। लोकिगबुद्ध ने द्वंद्वे का एक कथन प्रस्तुत किया है कि “इतिहास-लेखक की कल्पना यह है कि साक्ष्य के अध्ययन में अपने साथ ‘कुछ’ लेकर आता है, और यह ‘कुछ’ सहज, स्वाभाविक रूप में उसका ‘स्वयं’ ही है।”

ऐतिहासिक अनुसन्धान का पांचवां आधारभूत तत्त्व यह है कि अन्वेषक इतिहासकार में किसी प्रकार की निष्ठा की अँठी भावना नहीं होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो कह सकते हैं कि सच्चे इतिहासकार को एक प्रकार का विद्रोही होना चाहिये। डाक्टर रेनियर सच्चे इतिहासकार को आम्बस्त करते हैं कि “इतिहासकार से अपने पूर्वजों के सम्मुख अन्ध-समर्पण को सौंध कहीं, कभी नहीं की जाती है।” प्रोफेसर वाल्श चाहते हैं कि “एक सच्चा इतिहासकार, उसको सौंधे गए तथ्यों अथवा विचारों की जाँच-पढ़तात्त करने के लिए प्रत्येक प्रकार की अत्यत्य और तकनीकी सामान्य ज्ञानकारी का स्वतन्त्रापूर्वक उपयोग करे।” भारत में वृत्ति इसके सहज विपरीत रही है—अर्थात् परम्परागत मत का चरण-चुम्बन करने की रही है, और परम्परागत मान्यताओं के प्रति किसी भी प्रकार की शंका प्रकट करने वाले प्रत्येक प्रयत्न को धमंडोह, पहले दर्जे की नास्तिकता से कलंकित किया जाता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक छठा तत्त्व असामान्य कल्पना, रचनात्मकता, क्षमता—अर्थात् श्रेष्ठ प्रतिभा है। जैसा श्री एफ० बी० एस० शिल्पर कहते हैं कि इस प्रकार की प्रतिभा उस समय अन्वेषक का एक शौकाकर और हृदय जलाकर आत्म-निरूपित होती है यदि “उस वयस्य न रह, जिसका उत्तन हो जाती है जब कोई आरोपित सत्य हमें सन्तुष्ट करते हैं विकल हो जाता है।” दुर्भाग्यवश, भारतीय इतिहास में प्रचलित ग्राम्याओं के विश्व संकरों जैकाएं प्रस्तुत करने पर भी किसी व्यक्ति के कान वर वृत्तकरणी प्रतीत नहीं होती है।

भारतीय अनुसन्धान की मात्रवी आवश्यकता वह है जिसे श्री जी० एन० करार० “मोहन, साम्य निष्कर्ण के विवरणों को वारम्बार संशोधित और अँठी करने की दरवारता” कहते हैं।

ठीक-आक अनुसन्धान के लिए एक अन्य अनिवार्य वस्तु भनोविज्ञान-सम्बन्धी स्वतन्त्रता है। स्वर्गीय अमरीकी राष्ट्रपति फैकलिन डिलानो-रूजवेल्ट ने एक बार कहा था कि व्यक्ति तबतक सत्य की खोज नहीं कर सकता जबतक वह उसकी खोज करने के लिए स्वयं को स्वतन्त्र, मुक्त प्रोफेसर और सरकारी कर्मचारी-गण ऐसा अनुभव करते हैं कि उनको अफसरशाही-दफ्तरशाही के सीखचों के पीछे मुख-बन्धन और पिजरे में बन्द रहने के लिए बाध्य किया जाता है। अतः यह सहज स्वाभाविक ही है कि भारतीय इतिहास में किसी साथंक अनुसन्धान कार्य का पूरा-पूरा अभाव हो, यद्यपि यहाँ खोज करने के लिए बहुत अधिक तथ्य पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं क्योंकि भारत में विदेशी राज्यशासन की हजारों वर्षों की अवधि में तोड़-मरोड़ों और विसंगतियों, विकृतियों के अम्बार-के-अम्बार लग चुके हैं।

भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान में उपर्युक्त सभी आवश्यक बातों का घोर अभाव बहुत बड़ी सीमा तक रहा है—इसी कारण-वश विवश होकर प्रोफेसर वाल्स को कहना पड़ा कि “कम-से-कम आधुनिक इतिहासकारों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक स्तर का जो दावा बढ़ाया किया जाता है, वह ऐसा है जिसे सिद्ध नहीं किया जा सकता; जो स्वीकार नहीं किया जा सकता।” यह पर्यावेक्षण उन लोगों के सम्बन्ध में और भी अधिक सत्य है जिनको भारत में इतिहासकारों के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि यहाँ तो साम्प्रदायिक और उग्रवादी विचारधाराएँ भी उनके अनुसन्धान-स्वातन्त्र्य में निरोध उत्पन्न करते हैं। इन्ही कारणों से प्रचलित ऐतिहासिक पाठ्य-प्रार्थना भविकर भूलों और भद्री वृद्धियों से भरे पड़े हैं।

: १६ :

प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व की परख करने के मापदण्ड

अज्ञात अद्वा मात्र अस्पष्ट भूतकालिक घटनाओं की जानकारी का ज्ञान और सम्पादन करने की एक महत्वपूर्ण विधि है। वह विधि ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने की है। पहों वह विधि है जिसका उपयोग हम उस मापदण्ड की स्थापना हेतु करने वाले जिससे उन साम्राज्यों का अस्तित्व सिद्ध होता है जिसे इतिहास विलूप्त कर चुका है।

आइए, हम लिटिश साम्राज्य का उदाहरण लें जो सन् १६४० ई० से जने-शने: खण्डित होना प्रारम्भ हुआ था। चूंकि विश्व के एक बहुत बड़े भाग पर लिटिश लोगों का शासन था, इसलिए उन लोगों की भाषा—ज्ञेवी—अमरीका से आस्ट्रेलिया तक फैले विश्वाल भू-खण्ड में बोली जाने लगी। कहने का भाव यह है कि यदि कोई शक्ति दावा करती है कि उसका साम्राज्य बहुत विश्वाल था, तो उस शक्ति को यह अवध्य सिद्ध करना पड़ेगा कि उसकी भाषा का प्रभृत्य विश्व के एक बहुत बड़े भाग पर था।

दूसरा मापदण्ड घर्म अद्वा जीवन-पद्धति के सम्बन्ध में है। जहाँ कहीं लिटिश लोगों का शासन रहा, उनका घर्म अर्थात् ईसाई-मत मात्र ही नहीं, अपितु ईसाई-मत की छाया प्रोटेस्टेन्ट घर्म और इंग्लैंड के गिरजाघर के अनुबादी भी बहुत बही संख्या में बन गये। इस बात पर यह प्रदर्शित करके युरेंगालियों द्वारा अधिशासित था, और पांडेचरी तथा अन्य छोटे स्थानों-पुर्तगाली और कांस्टीची, दोनों प्रकार के नाम ही कैथोलिक-सम्प्रदाय के थे,

इसलिए ईसाई-मत के ये बर्ग भारत की वस्तियों—उपनिवेशों में खूब पनपे, कूले-फले। उनकी भाषाओं को भी अपने-अपने लोगों में वहाँ के प्रवृद्ध जनों और प्रशासकों का पूर्ण संरक्षण मिला था। इस प्रकार यह सुस्पष्ट रूप में दर्शनीय है कि जहाँ कहीं कोई देश अपना आधिपत्य रखता है, वहाँ इसका धर्म व जीवन-पद्धति प्रचलित हो जाते हैं, जन-प्रिय बन जाते हैं।

किसी विलूप्त साम्राज्य के अस्तित्व को सिद्ध करने वाला तीसरा मापदण्ड विश्व के विश्वाल भू-भाग पर दिखायी देने वाली रीतियों, पौराणिकता, और उस साम्राज्य के नामों व देव-देवियों की विद्यमानता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, जहाँ कहीं ब्रिटिश, फांसीसी, पुर्तगाली, डच, जर्मन और इतालवी जैसी ईसा-शक्तियों ने शासन किया, वहाँ रविवारीय प्रार्थनाओं और किस्तमस-समारोह जैसी रीतियाँ, उनके नाम, किस्त और मैरी जैसे उनकी देव-मूर्ति, बाइबल जैसी उनकी पवित्र पुस्तकें, उनकी पौराणिकता, उनके (पश्चिमी-प्रकार के) नाम उत्तरोत्तर रूप में अंगीकार किये जाने लगे। इसी प्रकार, अपनी मशाल और तलवार लेकर जब अरब के लोग विश्व पर छा गए, तब वे अफीका से इण्डोनेशिया तक के विश्वाल भू-भाग के निवासियों को इस्लाम-धर्म स्वीकार कराने के लिए आतंकित करने में सफल हो गए। अब उन आतंकित धर्म-परिवर्तियों के बंशज ही अपने पूर्वजों के भयावह, यातनापूर्ण अनुभवों को भुला चुकने के कारण इस्लाम पर ही स्नेह-वर्पा करते रहते हैं जो अज्ञान की महिमा सिद्ध करता है। अतः, जो समुदाय यह दावा करता हो कि वह किसी समय विश्व की महान् शक्ति रहा था, उसे यह सिद्ध करना पड़ेगा कि विश्व के एक पर्याप्त बड़े भू-भाग में उस समुदाय की रीतियों, पौराणिकता, नामों और देवताओं-देवियों को स्वीकार किया गया था।

विश्वव्यापी साम्राज्य का चौथा मापदण्ड माप और नाप-तील का है। जब कोई देश विश्व के विश्वाल भागों पर राज्य-शासन करता है, तब उसके माप और नाप-तील की प्रणालियों उन प्रदेशों में भी प्रचलित हो जाती हैं। इस प्रकार, जिन प्रदेशों में लिटिश लोगों ने शासन किया अभक्त अनुपस्थित रहने पर भी वहाँ की राजनीतिक सत्ता अपने ही हाथों में रखी,

वही शिटिंग लोगों के पौड़, टन, बुलाल, फुट और गज जैसे नाप-तौलों को अंगीकार कर लिया गया था।

पांचवाँ मापदण्ड समय का मापन है। इस प्रकार, जब यूरोपीय लोगों ने विश्व पर शासन किया, तब नव-वर्ष-दिवस के रूप में जनवरी के प्रथम दिन से प्रारम्भ होने वाले पश्चिमी पंचांग, सौरवर्ष, और सैकण्ड व मिनट जैसे लघु समय-विभाजनों को उद्दृत किया जाने लगा।

किसी समय अस्तित्व में रहे किन्तु अब विस्मृत साम्राज्य का छठा मापदण्ड जैक्षिक-नियन्त्रण है। जहाँ कहीं यूरोपीय शक्तियों ने शासन किया, वही उनकी विशेष शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण किया जाने लगा। उनकी पाठ्य-पुस्तकों को अंगीकार किया गया, उनके अध्यापक प्रभावी बने रहे, उनकी आगा शिक्षा का माध्यम बन गयी, और सामान्य रूप में उनकी प्रणाली, विधि और प्रशिक्षण को महत्व मिलने लगा अथवा सम्मान—गर्व की बात समझा जाने लगा।

एक विस्मृत साम्राज्य के अस्तित्व का निश्चय करने का सातवाँ मापदण्ड भौगोलिक और स्पष्टिक्रिय सम्बन्धी नाम है। विश्व के किसी बड़े पूँछ पर शासन करने वाला देश अपनी ही भाषा में और अपने ही देश के दौरां, सेताओं के नामों पर विजित भूमि-क्षेत्रों, सीमाओं, प्रदेशों, देशों, जागरों, नदियों, पहाड़ों, सड़कों और पुलों के नाम रखने की वृत्ति रखता है।

हम जब देखा करते हैं कि प्राचीन भारतीय लक्षणों का विश्वव्यापी साम्राज्य था, यद्यपि इतिहास इसको विलुप्त कर चुका है, तब हम इस दावे को ऊपर लिये हुए मापदण्डों व उनकी व्याख्या की सहायता से ही सिद्ध की मात्र इण्डियों का अनुसरण ही कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, कर्णे एक प्रमेय के दूसरे प्रमेय, बूल तक पहुँचा जाता है। विस्मृत ऐतिहासिक भूमिका को सिद्ध करने में भी हम अशास्त्रिक, क्रम-हीन आभासित अस्पष्ट विन्दुओं से धिक्कर बनती है, उसी प्रकार एक सम्पूर्ण ऐतिहासिक

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

१३३

ग्रन्थ की रचना भी छोटे-छोटे, प्रत्यक्षतः नगण्य प्रतीत होने वाले मूर्त्तों को एकत्र कर इस प्रकार की जा सकती है कि वे अकाट्य-साक्ष्यों की एक सुदृढ़ कड़ी बन जाएँ।

सर्वप्रथम, यह भी पूछा जाना चाहिये कि यदि वास्तव में एक साम्राज्य कभी रहा है, तो इसका नाम-निशान इतिहास से किस प्रकार, क्योंकि नष्ट हो गया? एक प्राचीन हिन्दू साम्राज्य का उल्लेख इतिहास से क्यों विलुप्त हो गया? इसके कई स्पष्टीकरण हैं। एक स्पष्टीकरण यह है कि समय के असीमित विस्तार में बीती हुई घटनाएँ क्रमशः, शनैः-शनैः जनस्मृति और अभिलेख से ओझल होती जाती हैं। इस बात को पाठक स्वयं अपने ही अनुभव से परख सकता है। यदि आपसे मात्र इतना ही पूछा जाय कि आप अपने पितामह के पितामह का नाम ही चता दें, तो आप हतबुद्धि हो जाएंगे, चक्कर में पड़ जाएंगे। जब आप अपने पितामह के पितामह का नाम भी नहीं जानते, तब उनके जीवन-चरित सम्बन्धी आपका ज्ञान तो स्पष्ट रूप में नहीं के बराबर ही होगा। इस आत्म-अनुभव से आपके लिए यह समझ पाना भी कठिन नहीं है कि आपके पौत्र के पौत्र के बारे में भी पूरी-पूरी सम्भावना है कि उसे आपका नाम भी कदाचित् पूर्णतः अज्ञात होगा। इसका कारण यह है कि उनको इस बात का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं होता है। इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे इतिहास-ग्रन्थों में किसी प्राचीन विश्वव्यापी हिन्दू साम्राज्य का कोई उल्लेख क्यों समाविष्ट नहीं है। इतिहास-लेखक इसे भूल चुके हैं। प्राचीन हिन्दू साम्राज्य उनकी स्मृति से ओझल ही चुका है। किन्तु इसके विवरणों को उन विधियों से अंशोद्धार किया जा सकता है जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। नये साम्राज्यों के निर्माण होने के कारण प्राचीन हिन्दू विश्व-व्यापी साम्राज्य इतिहास से उसी प्रकार ओझल हो गया जिस प्रकार अनुवर्ती पीढ़ियों के कारण पूर्ववर्ती पीढ़ियाँ ओझल होती जाती हैं। नया आने पर पुराना जाना ही होता है।

प्राचीन हिन्दू विश्व-साम्राज्य को भूला देने का दूसरा कारण कलाकृति का विनाश, सत्यनाश है। जिस प्रकार सागर की उफनती, आगे बढ़ती हुई लहरों के कारण रेत पर लिखावट आहिस्ता-आहिस्ता मिटती जाती है,

उसी प्रकार बनुवर्ती शासन पूर्ववर्ती शासन के स्मरण-चिह्नों को नष्ट करते आते हैं। प्राचीन हिन्दू विश्व-साम्राज्य के अभिलेखों और स्मरण-किया जिन्हें फहले पहल यूरोप को और बाद में विश्व के अन्य धरों को अपनी चम्पेट में ले लिया था। हिन्दू साम्राज्य के जो कुछ चिह्न ईसाई-आधातों से बच पाए, वे भी एक अन्य दुर्दित आधात से समूल नष्ट हो गये। वह भीषण प्राण-धातुक गौधी धी बर्द अरब-वासियों की, जिसने इस्लाम के अध्युदय के नाम पर सर्वनाश ढाया था।

इतिहास विनष्ट होने का तीसरा कारण विपदा और महाप्रलय है चाहे मनुष्य-ब्रेति हीं इच्छा प्राकृतिक जैसे, दुर्भिक्ष, आक्रमण, निर्धनता, ज्वाला-मृत्ती विस्फोट, मृत्याल, नर-हत्याएँ और दीमक-कथ आदि ।

अतः मात्र इस तथ्य के कारण कि हमारे इतिहास-ग्रन्थों में किसी प्राचीन हिन्दू विज्ञन-साम्राज्य का उल्लेख नहीं किया जाता है, किसी व्यक्ति को व्यंग स्वर्ग में उपहास नहीं करना चाहिये अथवा अविश्वास के रूप में सिर नीचे नहीं लटका देना चाहिये, यदि ऐसे किसी साम्राज्य का दावा और निर्भारित मापदण्ड की सहायता से सिद्ध किया जा सकता हो। जब ईश्वर जगता मृत्यु के बाद जीवन जैसे सूक्ष्म विचारों, तत्त्वों के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए दार्शनिक-न्युक्ति का उपयोग किया जाता है, तब कोई कारण नहीं है कि भूतकाल की घटनाओं को पुनः जोड़ने के लिए ठोस मृद्दी का उपयोग न किया जाये, उनका सहारा न लिया जाये।

एक प्राचीन साम्राज्य के अस्तित्व को सिद्ध करने का कार्य इस कारण और भी कठिन, दृष्टर ही जाता है कि आज 'साम्राज्य' की भावना के प्रति पुणा, अचल्लाय, विरोध विवेषान है। जबतो उस घट्ट मात्र से ही एक देश के नामों द्वारा अन्य देशाभियों पर दाये गये भीषण अत्याचारों, यातनाभों की कल्पना करने लगती है। परिणाम यह है कि ऐसे साम्राज्यों के अस्तित्व की विद्य करने वाले नूबों का अस्थप्त रूप में भी जान रखने वाले व्यक्ति भी यह बनुपर करने परीक्षित होते हैं कि ऐसे साम्राज्य की समृद्धियों को भुला देना ही क्षम्ता है, अवश्य इनको अदृश्य और अभिलेख-विहीन ही रहने दिया जाव तो थेवल्कर है।

यह दृष्टिकोण सर्वप्रथम तो अ-शास्त्रीय है। एक इतिहास-लेखक एक शिक्षा-शास्त्री ही है। उसे राजनीति से दौलायमान, प्रभावित नहीं होना चाहिये। एक शिक्षक के रूप में उसका कठोर्य है कि वह उन तत्त्वों को खोज करे जो अज्ञात हैं अथवा जिनकी पूरी-पूरी जानकारी नहीं है। दूसरी बात यह है कि एक प्राचीन हिन्दू विष्णु-साम्राज्य की जनुमूर्ति रखने में अन्यमनस्कता का भाव भी अज्ञान का परिचायक है। हिन्दू साम्राज्य, इंसाई और मुस्लिम साम्राज्यों से सबंधा भिन्न था, अत्याचारी नहीं था। इसमें और अन्य साम्राज्यों में आकाश-पाताल का अन्तर था।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अंधेरे में अथवा अन्नात स्थान पर जाते समय अपने हाथ में एक लकड़ी अथवा अन्य उपकरण रखता है, उसी प्रकार हिन्दू विजेता और समन्वेषक-गण विश्व के समस्त भागों में यह थे, किन्तु निश्चित है कि उनके साथ सेनाएँ भी नहीं थीं। किन्तु वह बात कुछ पश्चिमी निष्क्रमणाधियों जैसी थी जिन्होंने अमरीकी उपटीपों के बन-बुण्डों में अपनी बस्तियाँ बसाई थीं और दोनों ध्रुव-प्रदेशों के बर्फीले भू-भागों को खोज निकाला था। वे लोग तो जान के समस्त क्षेत्रों की विधाओं को आगे बढ़ाने, राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाने, सामाजिक कान्ति करने और बैज्ञानिक स्रोत करने की भावना से प्रेरित थे।

प्राचीन हिन्दुस्थान (भारत) से हिन्दुओं (अर्थात् आर्यों) का विश्व के दौष भागों में प्रवेश करना अत्यन्त जटिल और परहित लाभ की भावना से ही था। वह पहला मानव-समुदाय था जिसने न केवल भौतिक प्रगति की थी, अपितु एक ऐसी सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली की सृष्टि की थी जिसने सभी मानवों के लिए इस पृथ्वी को सभी का घर घोषित किया था—यह घर ऐसा था जिसमें सामाजिक सेवा में जितना ऊँचा कोई व्यक्ति उठ जाता था, उतना ही उसका जीवन मितव्यपी, संयमी होता था। इस प्रकार, सामाजिक कानून की बाह्यण-पदबी (स्तर) पर पहुँचने वाले व्यक्तियों का कर्तव्य था कि वे अपने पास चल-अचल सम्पत्ति का एक सी कण न रखें और सेवा-निवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सभी शांशारिक-धन्धों का परित्याग कर दें। जो बाह्यण-स्तर तक पहुँच पाने में विफल होते थे, और स्वयं को क्षत्रिय-स्तर तक रखने में ही सन्तुष्ट थे, उनमें भी मानव-

समुदाय की परम-सेवा के उद्देश्य से स्वयं में जीर्ण, साहस और नेतृत्व के उच्चतम-स्तर निर्माण करने की अनिवार्य आवश्यकता होती थी।

अनुबंधी शासन किस प्रकार पद-दलित विश्व पर मालत धारणाओं को छोप देता है, इस तथ्य को पश्चिमी पाठ्य-पुस्तकों के सन्दर्भ में भलीभांति दर्शाया जा सकता है। उन पुस्तकों ने २०वीं शताब्दी के बुद्धिजीवी संसार के कानों में ढूँसने का बल किया है कि ईसाई-मत के अध्युदय से पूर्व मानव आदिम-स्तर पर था और ये तो पश्चिमी समन्वेषक, भूगोलवेत्ता और वैज्ञानिक लोग ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम यह खोज निकाला कि पृथ्वी गोलाकार थी, इसका विष्ववृत् घेरा लगभग २५,००० मील का है, उनके प्रबत्तेंकों ने ही सर्वप्रथम अज्ञात अमरीकी उपद्वीपों का पता लगाया था, और ये लो उन्होंके विद्वान् लोग थे जिन्होंने औषधों, ज्यामिति आदि का विकास किया था।

इन निराधार दावों को क्षण-भर में ही यह स्पष्ट संकेत करके निरस्त किया जा सकता है कि भारतीय खगोल-शास्त्र, जो अविचारणीय प्राचीनता का ग्रास है क्योंकि चाहे हम कितने ही प्राचीन युग का विवरण क्यों न लें, हमें उनमें भी यह विद्यमान दृष्टिगोचर होता है, यथार्थतः सत्य लक्ष में एहशो और अन्य बह्याधिक घटनाओं की भविष्यवाणियाँ करता रहा है। क्यों प्राचीन हिन्दू यह जाने विना ही कि भूमि और अन्य ग्रह गोलाकार थे, भूमि का विष्ववृत् घेरा लगभग २५,००० मील का था आदि-आदि, बह्याधिक गणित में इतनी दक्षता प्राप्त कर सकता था? तथ्य तो यह है कि हमारी अपनी अन्तरिक्ष-यान वाली पीढ़ी के सबसे अधिक बुद्धिमान् व्यक्ति ने भी, खगोल-शास्त्रीय ज्ञान के सम्बन्ध में उनकी पूर्णता अधिक थी। यह बात उनकी अत्यधिक वैज्ञानिक शब्दावली से प्रत्यक्ष है; यथा सौर-व्यासनी ने लक्ष्य कहे यह 'वृहस्पति' का नाम 'गुरु' अर्थात् 'महान्' अर्थवा 'बड़ा' है; 'मण्ड' के लिए 'गुरु' शब्द है जो इस बात का श्वोतक है कि पृथ्वी का घेरा और उसका कुल केरा—प्रमाण जानते थे, तो क्या यह पृथ्वी का घेरा ही नहीं होता है कि उसके १५वीं शताब्दी में कोलम्बस ने अमरीका को वही लोक निकाला था, उसके बारे में किसी को भी

ज्ञान नहीं था? इस तथ्य से किसी ऐतिहासिक-तर्क का अनुसरण करने की सामर्थ्य उत्पन्न करने का और ज्ञात तथ्यों से परिणाम पर पहुँचने का महत्व प्रत्यक्ष हो जाता है।

खगोल-शास्त्र के समान ही, प्राचीन हिन्दुओं के बारे में यह भी ज्ञात है कि उन्होंने चिर अतीतकाल से ही अपना शिल्प, वास्तुकला, संगीत, आयुर्वेद नाम से विख्यात औषध-प्रणाली, वार्षिक सिद्धान्त और त्रि-गुण-मिति (क्योंकि तीन कोणों का मापक यह संस्कृत शब्द है) आदि विकसित कर लिये थे। तब क्या यह निष्कर्ष निकालना अशुद्ध है कि उन्होंने उसी प्रकार की प्रगति सभी कलाओं और विज्ञानों में भी कर ली थी। क्योंकि मानव-शिक्षा और अन्य विकास सभी प्रकार परस्पर आधारित है? यदि मानव के मस्तिष्क में प्रतिभा के विभिन्न प्रकारों के कोशों को स्पष्ट हप में परखा जा सके, तो ऐसा कभी ज्ञात नहीं हो सकेगा कि एक युग में, एक विशेष समुदाय में उन कोशों में से कुछ ही आश्चर्यजनक उच्च-स्तर पर कार्य करते रहे तथा अन्य सभी कोश आदिम स्तर पर सुपूर्तावस्था में ही पढ़े रहे। इसी के साथ-साथ सभी विज्ञान और कलाएँ परस्पर निपंत्र होने के कारण एक में ही दूर्दृश विशाल और आकर्षक प्रगति मानव-कार्य की अन्य शाखाओं में उसी प्रकार की प्रगति को भी तथ्यतः सिद्ध करती है।

इस बोडे-से विषयान्तर के पश्चात्, आइए हम अपने मुख्य विषय की ओर फिर ध्यान दें। एक प्राचीन विश्व हिन्दू साम्राज्य की आधार-सामग्री संग्रह करने के कारण किसी प्रकार का संकोच करने की आवश्यकता नहीं है। प्राचीन हिन्दू शासकों, प्रशासकों, अध्यापकों और समाजशास्त्रियों का विवरव्यापी मन्त्रमुग्धकारी प्रभाव किसी भी प्रकार लज्जाकारी नहीं था। वे उस समय विश्व में फैले थे जब मानवता आदिम-स्तर के जटिल निदेशन और नेतृत्व की टोह ले रही थी। ठीक प्रकार से समझ लेने की यह पहली बात है। दूसरी समझने की बात यह है कि लोगों को बलात् इसी अवधा मुहम्मद को स्वीकार करने वाले ईसाईयों और मुस्लिमों से सर्वथा भिन्न, हिन्दुओं ने तो मात्र ऐसे नियमों और सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों पर लागू करते हैं; यथा रात्रि को जल्दी सोना और प्रातः नींद उठ जाना, सत्य बोलना, कठिन परिधम करना, परहित

करना, बिकाह में ईमानदारी—एकनिष्ठा, मानव-सीहाद्रि की भावना और सभी प्रकार के जीवन के प्रति सम्मान करना। इस प्रकार, हिन्दू प्रशासन प्रत्येक प्रकार के आश्रहों, मत-मतान्तरों, उच्चाद और शोषण से सर्वथा रहित था। किसी भी प्रकार की ताङना माल मुधार की दृष्टि से ही बैठे थे जिस प्रकार माता मुधार की भावना और प्रेम-बंज ही अपने बालकों से व्यवहार करती है। इस तथ्य का एक विशिष्ट प्रमाण यह है कि भारतीय भासक, प्रशासक और अध्यापक जहाँ कहीं भी गये, वे वहाँ बस गये और स्थानीय जनता के साथ आत्मसात हो गये। हिन्दुओं ने उन स्थानीय लोगों को कभी भी द्वितीय-श्रेणी का नागरिक अथवा तिरस्कार के पाल नहीं लगाया। उनका यह आचरण उन अरबों, तुकों, कारसियों और अन्य मुस्लिम लमुदायों से सर्वथा भिन्न था जिन्होंने विगत हजार वर्षों में भारत पर आक्रमण किये और अपने ही मत-मतान्तरों, सिद्धान्तों को विजित लोगों पर बोला था।

विस्मृत इतिहास के बारे में मानव-ज्ञान को अग्रसर करन के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूत्रों का सदुपयोग करने के सम्बन्ध में शैक्षिक जागरूकताओं का दिग्दर्शन कराने और वह स्पष्ट कर देने के बाद कि प्राचीन हिन्दुओं के विश्व-साम्राज्य की लमृतियों को पुनः सजग करने में कोई लज्जा नहीं बात न होकर समस्त मानवता के लिए गर्व की बात है, हम अब मापदण्ड के उन सूत्रों पर विचार करेंगे जो इस साम्राज्य के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं।

हम अब एक-एक करके स्पष्ट करेंगे कि किस प्रकार हमारे हारा नमैश्विन उपर्युक्त गतीय मापदण्डों में से प्रत्येक मापदण्ड प्राचीन हिन्दुओं ने विस्मृत विश्व-साम्राज्य के अस्तित्व का प्रमाणित करता है।

प्राचीन हिन्दू नांग विस भाषा का प्रयोग करते थे वह संस्कृत थी जैसाहि वेदों ने प्रयोग की थी संस्कृत में है और जिनको सामान्यतः स्वीकार किया गया है वे ही मनुष्य-विरचित प्राचीनतम् साहित्य है जो आज है। अतः, वहि अग्न भाषाएँ संस्कृत से कुछ भी मेल खाती न थाक्षित भाष्य-आर्य भाषाएँ संस्कृत की व्युत्पत्तियों के अतिरिक्त कुछ भी

नहीं हैं; चूंकि संस्कृत भाषी हिन्दुओं ने विश्वभर में संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार किया था और सभी लोगों को संस्कृत भाषा के माध्यम में ही शिक्षित किया था। 'ट्रिगोनोमेट्री' शब्द के सन्दर्भ से यह बात पहले ही प्रदर्शित की जा चुकी है कि वे संस्कृत शब्द नाम आज भी किस प्रकार प्रचलन में हैं। तथ्य तो यह है कि प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व का बोध कराने वाला स्पष्टीकरण शिक्षा की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्व की बात है क्योंकि इस प्रकार के साम्राज्य का अस्तित्व मात्र ही पर्याप्त सन्तोषजनक रूप में स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर पाता है कि आज भी ग्रीक, लैटिन, इतालवी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, अंग्रेजी, रूसी और अन्य यूरोपीय भाषाओं, फारसी, पश्तो, तुर्की और सुदूर पूर्व की अन्य अधिकांश भाषाओं में संस्कृत भाषा का पर्याप्त अंग क्यों विद्यमान है।

असंगवश, यह भी कहना चाहित है कि भारो-आर्य (इण्डो-आर्यन) पदनाम भासक शब्दावली है क्योंकि 'भारतीय' और 'आर्य' पर्यायवाची हैं। 'आर्य'-धर्म तो हिन्दुओं की जीवन-पद्धति थी। इसलिए, जो कुछ भी आर्यन है, वह भारतीय है। अतः इण्डो-आर्यन शब्दावली एक ही विचार की प्रतिलिपि है। तब यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि किस प्रकार इण्डो-आर्यन शब्दावली दुहरे रूप में भी मध्ये और सुदूर-पूर्व की भाषाओं के साथ-साथ सभी यूरोपीय भाषाओं के भारतीय मूल को प्रद्वानता देती है।

हमने दूसरा मापदण्ड 'धर्म' उल्लेख किया था। भारतीय धर्म अर्थात् भारतीय जीवन-पद्धति प्राचीन विश्व के विशाल भू-भाग पर प्रसारित हो चुकी थी। हिन्दू देवता 'शिव' की पूजा सुदूर-पूर्व में जापान से लेकर सुदूर पश्चिम में अमरीकी महाद्वीप तक प्राचीन विश्व के लगभग सभी भागों में होती थी। सूर्य और ग्री, और सर्प व प्रहों की पूजा भी विश्व के अधिकांश भागों में होती थी—हिन्दुओं की ही भाँति। 'आर्य' वह शब्द है जो हिन्दू अर्थात् प्राचीन भारतीय जीवन-पद्धति का द्योतक है। चूंकि आर्य जीवन-पद्धति प्राचीन विश्व के एक बहुत बड़े भू-भाग पर फैल चुकी थी, इसीलिए हम अभी भी देखते हैं कि सभी यूरोपीय, ईरानी, तुर्की अन्य बहुत सारे राष्ट्र संघर्ष, अपने-आपको आज भी आर्य कहते हैं। उनमें से कुछ राष्ट्रों ने अभी भी आर्य-चिह्न अंगीकार किये हुए हैं; यथा जर्मनों ने स्वस्तिक और यहूदियों

ने सोलोमन का तारक अर्थात् पटकोणी भक्ति-चक्र शिरोधार्य किए हुए हैं।

तीक्ष्ण मापदण्ड हमने पौराणिकता, ऐतिहास, नाम और देव-देवियों बतायी थी। यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि प्राचीन विश्व ने इनको भारत से ही प्राप्त किया था। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि किस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में हिन्दू-देवता शिव की पूजा हुआ करती थी। इसी की पूजा उन स्थानों पर भी हुआ करती थी जिनको आज ईसाई-मत और इस्लाम के मुख्यालय समझा जाता है—अर्थात् इटली के वेटिकन में और नमका में। ईसाई पादरी पोष के पूर्वज हिन्दू पुरोहित थे। उनकी 'वेटिकन' संस्कृत शब्द बाटिका अर्थात् बन्ध कुठिया है। वेटिकन-परिसर की दीवारों और कोठियों में यह हुए बहुत सारे शिव-लिंग हैं। बहुत सारे ऐसे शिव-लिंग के प्रतिक्रियों को इटली में खोदकर निकाल लिया गया है। वेटिकन में यांच गंडे दर्तक शिवलिंगों में से एक वेटिकन-स्थित एट्हस्कन संग्रहालय में सुरक्षित रखा है। मनुष्यों और पशुओं-विकियों को सम्मोहित करने वाले बोनुरी के बजेपा हिन्दू कृष्ण की मनोहर कथा स्कैण्डीनेवियन और इटेलियन परम्पराओं की बड़ी भी महत्वपूर्ण अंश है। 'अमुन्दसेन' और 'सोरेनसेन' जैसे स्कैण्डीनेवियन शब्दों में 'सेन' अन्त्य-शब्द भद्रसेन और उम्रसेन के लगान अन्त्य-शब्दों की ही थाँड़ि अन्त्य-शब्दांश हैं। अंग्रेजी शब्द 'बोरो' का स्पष्टीकरण, अंग्रेजी शब्दों के अनुसार, 'एक दुर्गंयुक्त स्थान' के अर्थ-दोतक 'दुर्ग' के अनुत्पन्न बनाया गया है। यह स्पष्टतः संस्कृत शब्द 'दुर्ग' है। विदिया लोगों को बतात इस शब्द से अनुत्पन्न अन्य संस्कृत शब्द 'पुरा' है जो एक उपनगर अथवा बस्ती का शोतक है। अंग्रेज लोग 'पुरा' को 'पोर' करके उपनगर करते हैं जैसे 'सिहपुर' को 'मिहापोर', और 'प' प्रायः जहाँ उक अन्य देशों का अनुवन्य है, भारत और स्कैण्डीनेविया की पौराणिकता भी शब्दों के हिन्दू-देवता इन्द्र, यम उपनाम मोक्ष (मृत्यु-देवता), अनेक शब्द देवनामों की पूजा-अचंना किया करते थे—ऐसा भलीभांति जात ही है।

माइवंरिबा में, जब कोई व्यक्ति गम्भीर रूप में बीमार हो जाता है, तब अथानीय लोग इस युग में भी हिन्दू-देवता 'आयु' की पूजा करते हैं जो शीघ्रांयु देने वाला है। यह रीति एक प्राचीन हिन्दू रीति है—इस बात का उल्लेख दक्षिण भारत के अध्यर हिन्दू ज्ञाह्यन-बर्ग के बारे में लिखित इमानीताराम के लेख में भी किया गया है। यह लेख (वम्बई से प्रकाशित) 'दि इलस्ट्रेटेड बीकली ऑफ इण्डिया' के २३ जून, १९७२ के अंक में प्रकाशित हुआ था। उस अंक के पृष्ठ ८ पर दिये गये एक चित्र का जीर्णक 'आयुप्पहोमम्' दिया गया है। माता-पिता की यह पद्धति है कि वे अपनी सन्तान के जन्म दिवस पर हवन करते हैं (अर्थात् पवित्र अग्नि की भेट चढ़ाते हैं)। आयु-देवता अर्थात् मनुष्य के जीवन-काल का अधिष्ठाता देव और मृत्यु को पराजित करने वाला शिव) का आह्वान किया जाता है। जापानी लोग भी अपने 'शिन्तो' देवालयों में हिन्दू देवताओं की आराधना करते हैं। तथ्य तो यह है कि 'शिन्तो' शब्द स्वयं ही सिन्धु-क्षेत्र के धर्म अर्थात् हिन्दू-धर्म के सिन्धु अर्थात् हिन्दू शब्द का अपभ्रंश रूप है। इस तथ्य का उल्लेख तो हमारे इतिहास-ग्रन्थों में अभी भी किया जाता है कि अफगानिस्तान में कोरिया तक फैला हुआ थेव हिन्दू-धर्म का अनुसरण करता था। किन्तु यही नहीं, अमरीका की मय और इंका सम्बताएँ भी प्राचीन हिन्दू सम्बताएँ ही थीं। विश्वभर में फैला हुआ बौद्ध-मत भी अनुवर्ती हिन्दू-मत है जो स्वतः उन्हीं क्षेत्रों में पूर्वकालिक पुरातनवादी हिन्दू धर्म के अस्तित्व को सिद्ध करता है। राजाओं को सम्बोधन करने के लिए प्रयुक्त (सिंह का अर्थ-द्योतक) हिन्दू पद 'केसरी' जर्मन और रोमन सभाओं के लिए 'कैसर' के रूप में प्रयुक्त आज भी देखा जा सकता है। हिन्दू सम्मानोपाधि 'थ्री' को भी इंग्लैंड में 'सर' और दक्षिणी यूरोप में 'साइनर' के रूप में विश्व के सभी भागों में प्रचलित देखा जा सकता है। महिला के लिए हिन्दू सम्मानोपाधि 'थ्रीमती' है जो 'साइनरीता' के रूप में यूरोप में अभी भी प्रयोग की जाती है।

एक विलुप्त विश्व-साम्राज्य के अस्तित्व को पुनः लोज निकालने के लिए हमने चौथे मापदण्ड के रूप में माप-तौलों के व्यापक प्रचलन का उल्लेख किया था। कवियों से दगियों तक के विभिन्न-वर्गीय व्यक्तियों

रूपान्तर है जिसका स्वयं अथ 'फुट है'। पाचवी मापदण्ड समय का माप है। जैसा इसी पुस्तक में अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, क्षण से लेकर मिनट-दिन-मास और वर्ष तक के सभी हिन्दू समय-परिमाणों का अनुसरण ही सम्पूर्ण विश्व करता रहा है। यह सब सम्भव नहीं हुआ होता, यदि हिन्दुओं ने प्राचीन विश्व पर प्रशासन किया होता और उसे शिखित न किया होता।

एक विस्मृत साम्राज्य के अस्तित्व को पुनः जोड़ने वाला छठा मापदण्ड ही शिळा-नियन्त्रण है। यह स्वीकार किया जा चुका है कि ये तो भारतीय ही ये जिन्हें प्राचीन विद्व ने शिक्षित किया था। सामान्यतया यह कल्पना की जाती है कि भारतीयों ने अरबों को शिक्षित किया था और बाद में इन्हीं अरबों द्वारा सम्पूर्ण यूरोप को शिक्षित किया गया था। इस धारणा में उनिक परिमाज्जन अभीष्ट है। चूंकि यूरोप और अमरीका की ओर जाने वाले भारतीय शिक्षकों और प्रशासकों के मार्ग में साइबेरिया एक पड़ाव-स्थल था, इसलिए यह अजूद कल्पना की गई है कि अरब लोगों ने ही पश्चिमी विद्व की शिक्षित किया था। तथ्य तो यह है कि भारतीय लोगों ने एक ही शाख एशिया, यूरोप और अमरीका-द्वय जैसे सभी महाद्वीपों में प्राचीन विद्व के नभी शेष भागों को भी शिक्षित किया था। साथ ही, चूंकि प्राचीन हिन्दू जीव सम्पूर्ण मानवता को ध्रातृत्व की दृष्टि से देखते रहे, इसलिए इस बात में कोई विद्येय अन्तर नहीं पड़ता था कि यूरोप अथवा अमरीका-द्वय जाने वाले शिक्षक वास्तव में भारत के निवासी थे, अथवा अरब या अन्य किसी टुकड़े के। इस बात का इसलिए भी कोई महत्व नहीं था क्योंकि वे सभी हिन्दू धर्मानुसार ही जीवन-यापन करते थे और विज्ञानों, कलाओं व धार्यिक-वायों में समान ज्ञान रखते थे। हिन्दू जासन के अन्तर्गत कोई राष्ट्रीय या राजनीतिक अवधान नहीं थे। किसी भी मानव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के पारगमन-रूप अथवा प्रवेश-पत्र की आवश्यकता

नहीं थी क्योंकि प्राचीन हिन्दू विश्व के प्रति अपने उदारमता दृष्टिकोण से भूमि के धेत्रों और उन धेत्रों के निवासियों के पुरुष और महिलाओं के मध्य किसी भी प्रकार का भेद-भाव करने के भाव को तिरस्कृत करते थे। विश्वभर में अंगीकृत धार्मिक सभी पाठ और विज्ञान-वकलाएँ हिन्दुओं की ही थीं—इस बात को टिगोनोमेट्री शब्द के उद्घरण से ऊपर इशारा हो जा चुका है। यह भी स्मरण रखा जा सकता है कि अरब वाले जिन ओषधियों का यूनानी प्रकार कहते हैं, वह हिन्दू आयुर्वेद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। स्पष्ट रूप में बात यह है कि इस विज्ञान का 'यूनानी' शब्द उस तथ्य का द्योतक है कि भारत के ओषधि-विशेषज्ञ अरब देश जाने के लिए उस मार्ग से जाते रहे हैं जिसे हम आज 'यूनान' कहते हैं। यह तथ्य हमारे उपर्युक्त उस कथन का समर्थन करता है कि वह धारणा सही नहीं है कि अरब-वासियों ने ही यूरोप में भारतीय ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया था।

हमने किसी प्राचीन विस्मृत-साम्राज्य की परख करने के लिए जिस सातवें मापदण्ड का उल्लेख किया था, वह ग्रासक समुदाय की भाषा और रुचि के अनुसार विश्वभर में प्रचलित भौगोलिक और स्थानीय नामों का अस्तित्व है।

प्राचीन भूगोल संस्कृत नामों से भरा पड़ा है। बलूचिस्थान, अफगानिस्थान, कुर्दिस्थान, काफिरिस्थान, (चीनी) तुकिस्थान, गावुलिस्थान, घरूचिस्थान, (अरेबिया के रूप में अपभ्रंश) अवंस्थान, कजाकस्थान, उजबेकस्थान आदि में ('स्थान' रूप में अपभ्रंश) 'स्थान' प्रत्यय से समाप्त होने वाले सभी स्थान-वाचक नाम संस्कृत भाषायी हैं। इसी प्रकार, बह्यदेश (बर्मा), जावा, सुमान्ना, मलय, सिहपुर, इराक, ईरान (जो ईरावती के समान, जो अपभ्रंश रूप में इरवाड़ी उच्चारण किया जाता है, 'ईर' धातु से व्युत्पन्न है) सभी संस्कृत नाम हैं। इंग्लैंड, ड्यूशलैंड आदि में 'लैंड' शब्द के साथ समाप्त होने वाले सभी शब्द संस्कृत भाषा के हैं। 'सीरियन' और 'असीरियन' शब्द 'मुर' और 'अमुर' समुदायों के चौतक हैं जिनका उल्लेख भारतीय महाकाव्यों में किया गया है। उनका भारत से सम्पर्क समाप्त होने से पूर्व वे सभी देश संस्कृत भाषा बोलते थे। निशापुर, जनदीशपुर, रामसर, नव बहार और समरकन्द नाम से पुकारे जाने वाले

नगर और 'शूसवरी', 'ऐसवरी' व 'बाटरबरी' में 'बरी' अन्त्य-शब्द वाली बहितयों जो इवंड में हैं, सभी संस्कृत शब्दावली हैं।

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि एक प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व को परतने वाले सभी मापदण्ड किस प्रकार, बिना किसी दोष के, ऐसे ही एक साम्राज्य के अस्तित्व की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं, यद्यपि यह तथ्य जन-मानस की स्मृति से ओझल हो चुका है। भविष्य में प्रकाशित होने वाली ऐतिहासिक पाठ्य-पुस्तकों और अन्य ग्रन्थों में इन सभी विलुप्त अध्यायों का पुनर्लेखन होना चाहिये जिनकी प्राचीन हिन्दू विश्व-साम्राज्य के सन्दर्भ में हम चर्चा कर आये हैं और कुछ ऐसे ही अन्य विलुप्त अध्याय की हो सकते हैं जो भविष्य में खोजे जा सकें। लोगों को अपनी यह वृत्ति भी हो सकते हैं जो भविष्य में खोजे जा सकें। लोगों को अपनी यह वृत्ति भी त्याग देनी चाहिये कि यदि उनको इतिहास-ग्रन्थों में किसी घटना का इन्लेख न साक्षिप्त नहीं मिलता, तो वे यह मानते में अन्धाधृन्ध अन्धानुकरण करे कि वह घटना हुई ही नहीं होगी। मानव त्रिकालज्ञ न होने के कारण, उसका ज्ञान कभी भी पूरा अथवा पूर्ण नहीं है। ज्ञान ओझल होता रहता है और इसको पुनर्लेखन ही होता है। यही कारण है कि विद्यालय की परीक्षाओं में परीक्षायियों को सिखाया जाता है कि वे विचार करें और दिये गए टूटे-अश्वरे वाक्यों में विलुप्त शब्दों को भरें। इतने सुविचार के बाद विद्यालय-पाठ्यक्रमों में सम्प्रिति की गयी इस विधा को कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये। वह एक महत्त्वपूर्ण विधा है जो वयस्क को इस योग्य बनाती है कि वह ज्ञान की अन्य शाखाओं में भी विलुप्त प्रकरणों को प्रदान करे। ऐसी अन्य शाखाओं में इतिहास भी एक अत्यधिक आवश्यक, महत्त्व-पूर्ण शाखा है।

: १७ :

हिन्दू विश्व-साम्राज्य के अवशेष

समय के अनन्त विस्तार में अनेक तथ्य अप्राप्य रूप में गुम और विस्मृत हो जाते हैं। ऐसा ही एक तथ्य प्राचीन हिन्दुओं के विश्व-व्यापी साम्राज्य का है। इस २०वीं शताब्दी के हमारे इतिहास-ग्रन्थों में एक प्राचीन, विश्व-व्यापी हिन्दू साम्राज्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण कुछ अंश में अज्ञान है, और कुछ अंश में प्रतिकूलता। सम्पूर्ण विश्व के लोगों के दिमागों को इस प्रकार साफ़ कर दिया गया है कि वे प्राचीन हिन्दुओं के उस विश्व-व्यापी साम्राज्य के सभी आवर्ती चिह्नों और प्रमाणों की अवहेलना कर देते हैं, और आज यदि कोई व्यक्ति दावा करता है कि ऐसा एक हिन्दू साम्राज्य किसी समय अवश्य विद्यमान था तो उसे या तो बेबकूफ़ समझा जाता है अथवा धोखेवाज, ये-ईमान।

तथापि, सीभाग्यवश, हमें सम्पूर्ण विश्व में इधर-उधर विखरे हुए उस साध्य के चिह्न मिलते हैं, जिनको यत्नपूर्वक एकाकित कर देने पर किसी व्यक्ति के मन में यह सन्देह नहीं रह जायेगा कि प्राचीन हिन्दुओं का साम्राज्य किसी समय विद्यमान था।

पुराना इतिहास आहिस्ता-आहिस्ता विस्मृत और विलुप्त होता जाता है—इसके दो मुख्य कारण हैं। एक कारण यह है कि जब कभी किसी नवी पीढ़ी का जन्म होता है, उससे पुरानी एक पीढ़ी का इतिहास उत्तरोत्तर रूप में भूलता जाता है। किसी व्यक्ति से पूछो कि वह अपने पिता के सम्बन्ध में क्या-कुछ जानता है। वह उनके जीवन के सम्बन्ध में धोड़ा-बहुत कुछ जानता होगा। अपने बाबा-पितामह—पिता के पिता—के सम्बन्ध में तो वह और भी कम जान रखता होगा। और अपने प्रपितामह के सम्बन्ध में तो कहाँचित् वह उनका नाम भी नहीं जानता होगा। यह तथा सार्व रूप में

१४६

प्रदर्शित करता है कि द्वितीय प्रकार, ज्यों-ज्यों समय वीतता जाता है, विस्मृति की प्राकृतिक प्रक्रिया हारा, पूर्वकालिक पीड़ियों का इतिहास उपेक्षा, विस्मृति के कूप में छकेन दिया जाता है। यह सहज, स्वाभाविक ही है व्योंगि विस्मृति के स्मरण रखने अथवा संजोगे रखने की मानव-सामर्थ्य सीमित है।

इतिहास ज्यों लूप और विस्मृत हो जाता है—इसका अन्य महत्वपूर्ण कारण मानव चैर-भाव और प्रतिद्वन्द्विता है। अहितेच्छु अनुवर्ती लोग मशाल और हल्कार, हृषीका और दराती हाथ में लेकर, चारों ओर गये और विभिन्न प्रकार से परबर्ती सम्मताओं के चिह्नों को तोड़-फोड़ते, जलाते और विनष्ट करते रहे। इस प्रकार, प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के चिह्न ईसाई-मत और इस्लाम के सुनियोजित आधारों से शाने-शनै-नष्ट होते गये।

बृहोप और अमरीका-हृष में सर्वप्रथम ईसाई-मत ही था जिसने वहाँ से हिन्दू साम्राज्य के अवशेषों को नष्ट किया। एशिया में यह मुहूर्यतः इस्लामी आधार था जिसने हिन्दू-इतिहास को निरंकुश रूप में विनष्ट कर डाला और हिन्दू-भवनों को अपनी मस्जिदों व अपने मकबरों का रूप दे डाला।

किन्तु जिस प्रकार कोई हत्यारा व्यक्ति हत्या करने के सभी चिह्नों को घलघुबंक विनष्ट कर देता है और झामक मूर्तियों की उत्पत्ति कर देता है, फिर भी हत्या का पता लगा ही लिया जाता है, उसी प्रकार उस सम्पूर्ण मात्र्य को विनष्ट कर दिये जाने के बाद भी, सौभाग्यवश, कुछ ऐसे साधन और उपाय हैं जिनके हारा भूतकालिक घटनाओं की कहानी को पुनः रचा जा सकता है। इस कार्य में हमें ब्रह्मण्ड के इस अपरिवर्तनीय सिद्धान्त से सहायता मिलती है कि एक बार एक घटना घटित हो जाने बाद, विनाश के लिए ज्ञानदूष कर, किये गये प्रयत्नों तथा समय-प्रवाह के दुष्प्रभावों के बावजूद, इसके चिह्न बने रहते हैं।

आइये, हम सर्वप्रथम कुछ मापदण्ड निर्धारित करें जिनकी सहायता से विस्मृत साम्राज्यों के इतिहासों की पुनः रचना की जा सकती है। हम इस प्रकार के छः मापदण्ड प्रस्तुत करते हैं। प्रथम मापदण्ड है भौगोलिक नाम—जो कोई समृद्ध यह दावा करता हो कि उसका विश्व-व्यापी साम्राज्य था, उसे यह मिठ करने के लिए समर्थ होना चाहिये कि प्राचीन भूगोल-

मानवित्र में समुद्रों, नदियों, पर्वतों और प्रदेशों के लिए इस समृद्धाय ने अपने नाम रखे हुए थे। दूसरा मापदण्ड है उस समृद्धाय का धर्म—विश्व पर शासन करने वाले समृद्धाय को इस योग्य होना आवश्यक है कि वह प्रदर्शित कर सके कि विश्व के सभी भागों के बड़े-बड़े स्थानों पर उस समृद्धाय का धर्म प्रचारित-प्रसारित था। तीसरा मापदण्ड यह है कि यदि किसी समृद्धाय का विश्व-व्यापी प्रभुत्व रहा है, तो इसकी संस्कृति अर्थात् इसकी पीराणिकता और इसकी रीत-नीतियाँ कई युगों तक चलती रहेंगी, चाहे इसका शासन अथवा प्रशासन समाप्त भी हो जाये। चौथा मापदण्ड विश्व-व्यापी साम्राज्य करने वाले समृद्धाय की भाषा है जो विश्व के विभिन्न भागों के लोगों की बाणी में तब भी बनी रहती है जबकि इसका राजनीतिक और प्रशासनिक अधिकार समाप्त हो जाता है। पाँचवाँ मापदण्ड यह है कि यदि किसी समृद्धाय ने विश्व पर शासन किया है, तो उस समृद्धाय के नापतीन उसका साम्राज्य समूल नष्ट हो जाने के बहुत बाद भी विश्व के बहुत बड़े भाग में प्रचलित रहेंगे। छठा मापदण्ड कुछ सारगमित, आत्मकथा कहने वाले वाक्यांश और शब्दों की विद्यमानता है जो किसी साम्राज्य की समूल समाप्ति हो जाने के बाद भी बहुत समय तक, समय और इतिहास के द्वारों पर, उपस्थित रहते हैं—ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं।

हमने ऊपर जिन मापदण्डों को स्थिर, निर्धारित किया है, उनको एक विशाल प्राचीन हिन्दू साम्राज्य का अस्तित्व सिद्ध करने में उपयोग करने से पूर्व, आइये, हम देखें कि वे ठोस भी हैं अथवा नहीं।

हम जानते हैं कि हमारे अपने ही जीवनकाल में, आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व तक ब्रिटिश लोगों का एक विश्व-व्यापी साम्राज्य था। चूंकि उनके देश का नाम इंग्लैंड था, और उनकी भाषा अंग्रेजी थी तथा उनका विश्व-व्यापी अधिकार था, इसलिए आइसलैंड, सोमालीलैंड, बुखानालैंड, ऐण्डियन ओशन (हिन्द महासागर), ह्वाइट-सी (श्वेत सागर) जैसे अंग्रेजी ईसाई-मत उन-उन क्षेत्रों में फैल गया जहाँ उन्होंने शासन किया। (३) विश्व पर ब्रिटिश साम्राज्य के उत्कर्ष के दिनों में अंग्रेजों के रीति-रिवाजों, रहानियों, शोर्पें कों, पौराणिक वातों और प्रतीक-चिह्नों की नकल की जाने

लगी, उनका अनुकूलन होने लगा, और उनका द्व्यापक रूप में, विश्व के विशाल भू-भाग पर प्रचार-प्रसार हुआ। (४) अमरीका-द्वय से न्यूजीलैंड तक अंग्रेजी भाषा बोली जाने लगी क्योंकि उस विशाल क्षेत्र पर अंग्रेजों का अधिशासन था। (५) उनकी मुद्रा और उनके नाम-नीलों को उद्भूत और अधिशासन था। (६) उनकी मुद्रा और उनके नाम-नीलों में प्रसुक्त किया जाने लगा क्योंकि विश्व के वाणिज्य एवं उद्योग-धन्धों में प्रसुक्त किया जाने लगा क्योंकि कुछ समय पूर्व ही अंग्रेज-सत्ता विश्व की एक प्रमुख प्रभावी शक्ति थी। विश्व-भर में फृट और इंच, स्टोन और पौंड, फादिग और गिनी, सैकंड और मिनट, तथा नये वर्ष के प्रथम दिवस के रूप में पहली जनवरी को मान्यता दी गयी और इनको विश्व-भर में मात्र इसीलिए अंगीकार कर लिया गया कि वे साम्राज्य-निर्माता अंग्रेजों के मापदण्ड—नाम-नील थे। (७) "ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यस्त नहीं होता"—जैसे कुछ वाक्यांश ब्रिटिश लोगों के विश्व-प्रभुत्व की कथा को तबतक चारों मुखों से कहते रहे जबतक कि यह आज से अनुमानतः पाँच हजार वर्ष तक इतिहास का एक अंश बना रहे—वैसे, उस समय तक १६वीं और २०वीं शताब्दी के ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य चिन्ह इतिहास से विलूप्त हो गये होंगे अथवा इनमें सूधम हो गये होंगे कि उनको पहचानना प्रायः असम्भव हो जायेगा।

बाइंस, हम 'नागालैंड' नामक एक अन्य शब्द का उदाहरण लें। ब्रिटिश शासन से जब भारत स्वतन्त्र हो गया, जब भारत के एक भू-भाग का यह नामकरण किया गया था। यह तो भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री थीं जवाहरलाल नेहरू ही वे जिन्होंने अति प्राचीन, चिरकालीन हिन्दू, नक्कल परम्परा बतें, नये स्वतन्त्र भारत के एक भाग के लिए अंग्रेजी नाम चुने लिया। स्वतन्त्र भारत के प्रधानमन्त्री द्वारा, ब्रिटिश शासन के अधिकार में स्वतन्त्र किये गये एक प्रदेश के लिए उस अंग्रेजी नाम का चुना बन में उत्पन्न हो जाता है। इनसे का यह अवश्यमभावी दुष्परिणाम यानिक रूप से स्वतन्त्र होने पर भी थी जवाहरलाल नेहरू असत्त प्रधान में भास्त पर ब्रिटिश अधिपत्य का चिन्ह जात इतिहास के गप्टों से नूपा गी हो जाय, तो भी हजारों वर्ष बाद यदि यह स्मृति प्रचलित

रही कि भारत का एक भाग कभी, किसी समय 'नागालैंड' नाम से पुकारा जाता था, तो मात्र उस शब्द से—'नागालैंड' नामक एकाकी शब्द से ही यदि कोई विवेकी इतिहासकार यह निष्कर्ष निकाल ले कि ब्रिटिश लोगों ने कम-से-कम भारत के एक भाग पर तो शासन किया ही था, तो वह गलत प्रकार एक भावी इतिहासकार उस वर्ष को खोज निकालता है जब उसका प्रदेश को 'नागालैंड' नाम दिया था, और उसी से वह यह निष्कर्ष भी निकाल लेता है कि उस क्षेत्र पर कम-से-कम उस वर्ष तक तो ब्रिटिश शासन अवश्य ही रहा होगा, तो अधिक-से-अधिक उसकी गलती ठीक समय का पता लगाने में कुछ समय-माव की ही तो होगी, किन्तु वह यह निष्कर्ष निकालने में गलत नहीं होगा कि ब्रिटिश लोगों ने उस क्षेत्र पर किसी समय शासन तो अवश्य ही किया था। कई हजार वर्ष पूर्व के इतिहास का सही आकलन करने में समय की छोटी-सी त्रुटि नगण्य ही होगी, किन्तु विश्व-व्यापी ब्रिटिश साम्राज्य के पूरी तरह विस्मृत तत्त्व के भू-शोद्धार की बात अभिलिखित इतिहास के लिए अमूल्य निधि होगी।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि एक घटना के होने के हजारों वर्ष बाद भी इतिहास में प्रचलित एकाकी शब्द और वाक्यांश भी विस्मृत इतिहास की पुनरुत्थाना में किस प्रकार अत्यधिक मूल्यवान सिद्ध हो सकते हैं। एक विश्व-व्यापी हिन्दू साम्राज्य की कहानी की पुनरुत्थाना करते समय भी हम स्पष्ट दर्शाएँगे कि विगत हजारों वर्षों से समय के अनन्त प्रवाह के साथ चले आ रहे कुछ शब्द ऐसे हैं जो अति प्राचीन विश्व-व्यापी हिन्दू साम्राज्य की कथा को पुनः गढ़ने में असीम, अत्यधिक सहायक हैं। यदि उन शब्दों और वाक्यांशों को ठीक प्रकार समझ लिया जाये और उनका विज्ञेयण किया जाये, तो उनमें असीम अर्थ निरूप हैं, तथा वे एक अति प्राचीन हिन्दू साम्राज्य की, जो विश्व-व्यापी था, अकथ कहानी मुख्यरित करते लिखित होंगे।

: १६ :

प्राचीन भौगोलिक विश्व-मानचित्र के सभी नाम संस्कृत भाषा के ही थे

बहुत ही मरम्मतापूर्वक सभी लोग अनुमान लगा लेते हैं कि इतिहास में जो भी कुछ जानने योग्य है, वह सब पहले ही जात है। यह अनुमान किसी ठोस तथ्य पर आधारित नहीं है। जिस प्रकार रसायन, भौतिकी आदि विषयों में पूरी गुणाङ्क है, उसी प्रकार इतिहास में भी अज्ञात वातों की जानकारी खोज लेने के पूरे-पूरे अवसर है—बहुत कुछ ज्ञात करना शेष है।

प्राचीन इतिहास में एक बहुत बड़ा रिक्त स्थान पड़ा है जिसका सम्बन्ध प्राचीन भारतीय (हिन्दू) साम्राज्य से है। आधुनिक ऐतिहासिक पाठों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता है कि किसी समय एक विश्व-व्यापी हिन्दू साम्राज्य विद्यमान था; फिर भी कुछ ऐसे सूत्र उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से उस साम्राज्य को क्या का ताना-बाना पुनः बुना जा सकता है जिसको जनन्मति से पूरी तरह विस्मृत किया जा चुका है।

संवेदवद्य हमें यह स्मरण रखता चाहिये कि हिन्दू धर्म-ग्रन्थों, महाभाग्यों, और लोक-साहित्य में भारतीय संस्कृतों, युवराजों और उनके वंशजों द्वारा विभिन्नों के वारस्वाद संदर्भ और असंख्य उदाहरण संबोधित गिरते हैं। प्राचीन व्यक्तियों के लिए संभावना है कि वे ऐसे संदर्भों का कानूनिक उपयोग को मनगढ़न्त उद्घापोह मानकर उपहास करें। किन्तु यह कोई उपहास की बात नहीं है। किन्तु इस प्रकार के कल्पित अतिव्यक्ति को शारीर भौगोलिक नाम संस्कृत भाषा में होने के कारण उन-

संदर्भों को पुष्ट करने वाला साध्य प्राप्त हो जाता है। चूंकि प्राचीन हिन्दुओं की भाषा संस्कृत थी, अतः जब वे समस्त विश्व में फैले, वब उन्होंने समुद्रों, पर्वतों, नद-नदियों, और विभिन्न प्रदेशों के नाम संस्कृत भाषा में रख दिये।

प्राचीन हिन्दुओं में सम्पूर्ण विश्व में फैल जाने की सामर्थ्य और नम्यक दृष्टि व्याप्त थी—इस बात का प्रमाण वैदिक धर्मदिश 'कृष्णन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् 'विश्व को आर्य बनाओ' में मिलता है। हूँ, यहाँ इस बात पर अधिक बल देना चाहते हैं कि 'आर्य' किसी जाति का द्वोतक शब्द नहीं है। समकालीन विश्व को यह विश्वास दिलाकर ऋषित किया गया है कि 'आर्य' कोई जाति नहीं। 'आर्य' शब्द हिन्दू अंबवा वैदिक जीवन-पद्धति का द्वोतक है जो इस सांसारिक मानवतावादी सिद्धान्त पर आधारित था कि हम सब दिव्य अंश से उत्पन्न हुए थे, और उसी दिव्य अंश में ही समा जाना हमारा जीवन-लक्ष्य होना चाहिये। हिन्दू-धर्म का एक मूल सिद्धान्त यह है कि हमारा जीवन उसी उच्चादर्श के अनुरूप ढलना चाहिये। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, प्राचीन हिन्दुओं ने एक आचार-पद्धति का निर्माण किया था जिसमें मानसिक और शारीरिक शुद्धता का जीवन तथा कर्तव्य-पालन व समाज-सेवा की महिता का कठोर नियमन अपेक्षित था। 'आर्य' और 'आर्यंत्व' से ध्वनित होने वाली वही जीवन-पद्धति है।

विश्व की विशाल जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग द्वारा स्वयं को 'आर्य' कहा जाना इस बात का एक बहुत महत्वपूर्ण और विशिष्ट प्रमाण है कि प्राचीन हिन्दू लोग अपने जीवन-सिद्धान्त 'कृष्णन्तो विश्वमार्यम्' (विश्व को आर्य बनाओ) का अनुपालन करने में पूरी तरह सफल हुए थे।

विश्व साम्राज्य स्थापित करने वाला कोई भी देश विभिन्न प्रदेशों, समुद्रों आदि के नाम अपनी रुचि अनुसार ही रखता है। इस प्रकार, चूंकि भारतीय देश का नाम सिंधु-स्थान था, इसलिए उन्होंने देश-देशान्तरों के नाम, उसी पद्धति पर, बलूचिस्थान, तुरकस्थान, अबैस्थान आदि रखने प्रारम्भ कर दिये।

अतः प्राचीन विश्व-मानचित्र में भारतीयों द्वारा दिये हुए जनवा भारत द्वारा प्राप्त किए हुए नाम प्रचलित थे। भारतीयों द्वारा किसी

विशाल साम्राज्य का उपभोग करने का यह एक अति महत्वपूर्ण प्रमाण है जहाँ उस साम्राज्य का उल्लेख आज के प्रचलित इतिहास-ग्रन्थों से सर्वथा विलुप्त कर दिया गया है।

आइए, हम इंडोचीन, इंडोनेशिया और बैस्ट इंडीज जैसे शब्दों पर भी विचार करें। इस्ट इंडीज हमारे अपने ही युग में सम्पूर्ण विश्व-मानचित्र पर प्रसारित था। वे शब्द उस युग की ओर संकेत करते हैं जब भारत और भारतीय लोग विश्व का नेतृत्व करते थे। उस प्राचीन विगत काल में भारत विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र था जो विशालतम् भू-भाग पर नियन्त्रण, अधिकार करता था। इससे पूर्व कभी भी, एक ही राष्ट्र-शक्ति ने इतना भू-भाग अपने अधिकार के अन्तर्गत नहीं किया था। यही कारण है कि हर किसी की जिह्वा पर 'भारत' और 'भारतीय' (इण्डिया और इण्डियन) शब्द चढ़े रहते थे, तथा प्रत्येक भूमि अथवा जन-समुदाय की परिभाषा भारत (इण्डिया) को दृष्टि में रखकर ही की जाती थी।

यही वह विश्व-व्यापी सम्मोहन था जिसने कोलम्बस को प्रेरित किया कि वह उस महान् (भारत) देश की खोज करने को निकल पड़ा और अमरीका के बादिम निवासियों को इण्डियन (भारतीयों) की संज्ञा से सम्बोधित करने की भूल कर दें।

'इण्डियाना' और 'इण्डियनापोलिस' शब्दावलियाँ, तुलनात्मक रूप में व्याख्यानिक होने पर भी, उसी सराहना-भाव से व्युत्पन्न हैं जो सम्पूर्ण विश्व महान् भारतीय साम्राज्य के प्रति रखता था जिसकी स्मृतियाँ उस रही थीं।

विलुप्त और चिह्नित इतिहास की पुनर्रचना में 'इण्डियन ओशन' (हिन्द महासागर) शब्दावली का भी प्रभूत महत्व है। विश्व-मानचित्र में उन्हें वह स्पष्ट जात होता है कि 'हिन्द महासागर' से 'चिपटा' हुआ इण्डिया (हिन्द वस्त्रा भारत) तो तुलनात्मक रूप में अत्यन्त छोटा देश है। अफ्रीकी महाद्वीप तो बहुत व्यापिक विशाल, भूमि-प्रदेश वाला छेत्र है। हिन्द महासागर के बाय पक्षा हुआ अरेक्युन प्राय-हीण भूमि का एक अन्य बड़ा भाग है। किंतु उस महासागर का नाम भारत (हिन्द, इण्डिया) के नाम के अनु-

सरण पर नयों रखा जाय ? स्पष्टतः कारण यह है कि प्राचीन विगत काल में भारतीय नौ-सेना उस समुद्र पर (तथा अन्य अनेक सागरों पर) वर्तोंच्च अधिशासन करती थी। अन्य कोई ऐसी जित नहीं थी जो अमरीका-द्वय से लेकर आस्ट्रेलिया तक भारत की महान् नौ-सेना की सामर्थ्य को चुनौती दे पाती। संक्षेप में, भारत तब सागरों का अधिपति था। यही वह अप्रतिम प्रभुत्व था, अनन्य, बे-जोड़ साम्राज्य था जिसके कारण सागर का नाम भारत के साथ जोड़ दिया गया क्योंकि भारत के जहाज उस सागर की छाती चीरते हुए समग्र संसार में जाया करते थे।

'मेडिटरेनियन' शब्द भी संस्कृत नाम है जो उन दिनों का स्मरण दिलाता है जब संस्कृत भाषी भारतीय धर्मिय (हिन्दू योद्धागण) उस समुद्र के चारों ओर बने हुए बन्दरगाहों पर अपना नियन्त्रण रखते थे।

'मेडिटरेनियन' शब्द की संस्कृत-मूलक व्युत्पत्ति इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है, संस्कृत का 'धरातल' शब्द अंग्रेजी के 'टेरेस्ट्रियल' शब्द में बदल जाता है। इसी प्रकार संस्कृत का 'मध्य' शब्द यूरोपीय भाषाओं में 'मेडि' अपभ्रंश रूप धारण कर रहा है। इसलिए, यूरोपीय धातु 'टेरा' संस्कृत की 'धरा' धातु है, और 'मेडि' धातु संस्कृत की 'मध्य' शब्दावली है। संस्कृत-भाषी भारतीयों ने उस सागर का नाम 'मध्य-धरातल' अर्थात् 'पृथ्वी के भू-खण्ड समूहों के केन्द्र में समुद्र' रखा था। अंग्रेजी 'मेडिटरेनियन' शब्दावली का यथार्थतः यही अर्थ है। इस सागर का संस्कृत-नाम तबतक नहीं पड़ता जबतक कि संस्कृत-भाषी हिन्दुओं ने उस सागर के सभी भागों पर और उसके सभी बन्दरगाहों पर अपना नियन्त्रण न रखा होता। 'मेडिटरेनियन' शब्द के संस्कृत-मूल से हम जिस निष्कार्य पर पहुंचते हैं, उसको उन लोकों के इतिहासों और नामों के मूल को खोजकर भी सत्याग्रित किया जा सकता है।

'रक्त सागर' (रेड सी) भी इसीलिए नाम पड़ा है क्योंकि प्राचीन हिन्दुओं ने यही नाम रखा था। हम रामायण में इसका उल्लेख 'लोहित सागर' के रूप में उस समय पाते हैं जब भगवान् श्रीराम के दूत अपहृता सीताजी को खोज निकालने के लिए सभी दिशाओं में गये थे। 'लोहित' का

१५४

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

जब 'रक्षत'—मात्र है। इस प्रकार 'रेड सी' नाम एक प्राचीन संस्कृत नाम का अनेकों अनुवाद मात्र है।

इसी प्रकार 'ह्वाइट सी' (श्वेत सागर) नाम भी प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्विचित किए गए 'क्षीर तागर' नाम का ही यन्त्रवत् अनुवाद है। इतिहास में ऐसा होता है कि साम्राज्य-निर्माताओं द्वारा प्रयुक्त नाम इतिहासीय भाषाओं में अनुदित रूप में ही अक्षुण्ण बने रहते हैं—स्थानीय जन-स्थानीय भाषाओं में प्रचलित रहते हैं। 'ह्वाइट सी' और 'रेड सी' इसी प्रकार के बोलियों में प्रचलित रहते हैं। ये दोनों नाम प्राचीन हिन्दुओं के विश्व-व्यापी प्रभुत्व को प्रमाणित करते हैं।

जो समुदाय, विश्व पर शासन करता है, प्रायः विभिन्न विजित प्रदेशों के नाम अपने देश के नामों की पढ़ति पर ही रखने का उपक्रम करता है। इसी प्रकार, उदाहरणार्थ, जब इंग्लैंड विश्व की प्रभावकारी राजनीतिक शक्ति बन गया, तब ब्रूटोलैंड और बुखानोलैंड जैसे नाम जन-प्रिय हो गए। इसी प्रकार, जब हिन्दुओं का सम्पूर्ण विश्व पर अधिशासन था, तब चूंकि उनके अपने देश का नाम सिन्धुस्थान था (जो अपन्ने रूप में हिन्दुन्याम ही गया) इसलिए उन्होंने अपने प्रभुत्व के अन्तर्गत प्रदेशों के नाम इसी ध्वनियों पर अफगानिस्थान, बलूचिस्थान, तुरगस्थान (आधुनिक तूर्सी), अंडेस्थान (आधुनिक अर्गेचिया), घज्जिस्थान, घबूलिस्थान, कुदिस्थान, कठाकस्थान और उज्जवेकस्थान आदि रख दिए।

'ईरान और 'ईराक' नाम भी हिन्दू संस्कृत मूल के ही हैं। वे 'ईरावती' (ईरावदी) में प्रयुक्त 'ईर' संस्कृत धातु से व्युत्पन्न हैं। संस्कृत शब्दकोश में 'ईरान' शब्द की परिभाषा 'नवणयुत', निर्वन प्रदेश' है। ईरान यथार्थतः यही तो है। 'कर्छ-रण' शब्द में प्रयुक्त 'रण' शब्द भी उसी संस्कृत धातु से व्युत्पन्न है। लघु प्रशिक्षा में ऐसे नगर थे जिनके नाम संस्कृत-प्रणाली पर थे; परा ब्रह्मदिशापूर क्षीर विदिशा (एडिसा)। सीरिया और असीरिया नामों का उच्चारण शीक-भाषा में 'मुरिया' और 'अमुरिया' होता है। उनकी व्युत्पत्ति दो संस्कृत-भाषी प्राचीन हिन्दू समुदायों 'मुर' और 'अमुर' से है, जिनका उच्चार हिन्दू धर्म-जन्मों में प्रायः मिलता है।

दो अक्रीबी देश माली और सुमाली रामायण में वर्णित दैत्य-समुदाय के दो नायकों के नाम से व्युत्पन्न हैं।

सीताजी के लिए विश्व-व्यापी खोज के अवसर पर रामायण में सुन्द-जलदमरुमध्य का भी उल्लेख आता है।

'मुमेरियन्स' शब्दावली 'मुमेरु' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'स्वर्णम-पर्वत' है और जिसका बारम्बार उल्लेख हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। 'अल्टाई' शब्द भी संस्कृत के 'मुमेरु' शब्द का स्थानीय भाषायी रूपान्तर है।

जैसा एक आगामी अध्याय में स्पष्ट किया गया है, इंग्लैंड शब्द भी संस्कृत शब्द 'अंग्ल-स्थान' से ही बना है।

'स्कैण्डीनेविया' शब्द योद्धाओं की भूमि के दौतक, संस्कृत भाषा के 'स्कन्ध-नाभि' शब्द का अपन्ने रूप है। (यूरोप में एक प्रदेश) स्कैण्डी-नेविया के बीकिंग्स लोग अपने योद्धासम गुणों के लिए विख्यात थे।

जर्मन लोग अपने देश को 'द्यूत्सलैण्ड' बोलते हैं। यह नाम 'दैत्यस्वान' से व्युत्पन्न है। दैत्य लोग एक प्राचीन, हिन्दू समुदाय थे जो संस्कृत-भाषी थे। हिन्दू पौराणिकता के अनुसार वे लोग 'दैत्य' मात्र इसलिए पुकारे जाते थे कि उनका जन्म 'दिति' नामक एक महिला के गर्भ के हुआ था।

'डच' शब्द भी 'दैत्य' शब्द का ही अपन्ने रूप है। इसका दृष्टान्त भारत में उत्तर प्रदेश में स्थित 'वहराइच' नाम के नगर से प्रस्तुत किया जा सकता है। 'वहत्-आदित्य' शब्द लोकभाषा में 'वहराइच' अपन्ने रूप अंगीकार कर देता। उसी प्रकार 'दैत्य' शब्द भी प्रचलित शब्द 'डच' का मूल-शब्द था।

'कैश्यपन सी' (कश्यप सागर) का नाम भी सुप्रसिद्ध श्रृंगि कश्यप के नाम से व्युत्पन्न है, जो दैत्य समुदाय के पूर्वज थे। कश्यप और उनके बंशज देव्यों का उल्लेख भारतीय (हिन्दू) पौराणिक-ग्रन्थों में मुख्य रूप में उपलब्ध होता है।

'दानव' नदी का नाम भी संस्कृत शब्द 'दानव' से व्युत्पन्न है। संस्कृत का 'दानव' शब्द उसी प्रकार 'दानव' हो जाता है जिस प्रकार संस्कृत का 'बचन' शब्द लापरवाही-बण आधुनिक जन-भाषा में 'बचन' हो जाता है। जैसे 'दानव' उपनाम 'दानव' शब्द हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में 'दैत्य' समुदाय के प्राणीयवाची रूप में प्रयुक्त होता है, इसलिए देव्यों उपनाम दानवों उपनाम

दानबों की भूमि में से प्रचाहित होने वाली नदी 'दानब' नाम से पुकारे जाने लगी।

इसी प्रकार, मिथु देश का 'नाइल' नाम भी विश्व-व्यापी हिन्दू साम्राज्य के दिनों में संस्कृत लोकों, लोजियों द्वारा दिया गया था। संस्कृत में 'नील' शब्द का अर्थ नीला है। बाद में, शताविदियों द्वारा जाने पर, जब उस संस्कृत शब्द का अर्थ विस्मृत हो गया, लोगों ने 'नीला' अंग्रेजी विशेषण लोड दिया, और उस नदी को 'लू नाइल' (नीली नील नदी) बोलना आरम्भ कर दिया, उनको यह अनुभूति नहीं रही कि मूल संस्कृत नाम 'नील' स्वयं ही नीली जल-धारा का द्वोतक था।

अगस्त-सितम्बर, १८७० के आस-पास प्रैस ट्रस्ट आफ इंडिया नामक समाचार-एजेंसी ने समाचार दिया था कि ब्रूनी के बन्दरगाह का नाम स्वर्णोदय (मुस्तिम) शासक की पदबी को स्मृति में 'सेरी भगवान्' कर दिया गया था। यह इस बात का एक अन्य उदाहरण है कि स्वयं हमारे ही युग में प्राचीन हिन्दू संस्कृत शब्दों को, जो सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित हैं, किस प्रकार गलत अवलोकन का द्वारा है और उनकी गलत व्याख्या की जा रही है। संस्कृत के 'श्री भगवान्' का अर्थ 'सर्वशक्तिमान् प्रभु' है। इस प्रकार, यह ब्रूनी के हिन्दू-शासक की पदबी थी। बाद में, जब अरब लोगों ने उन भू-प्रदेशों पर आकर्षण किए और राजा से रक्त तक के सभी लोगों को अत्यन्त क्रृता, निशापूर्वक इस्ताम में धर्म-परिवर्तित कर दिया, तब वह सम्राट्, यद्यपि मुस्तिम घर में प्रविष्ट हो चुका था, फिर भी, अपनी पवित्र हिन्दू पदवियों को ही विरोधार्थी किये रहा। वर्णनुक्ति द्वारा जाने पर वे संस्कृत शब्द उपर दौड़ते थे, जैसा उपर दर्शाया ही जा चुका है। यह सब होते हुए भी शताविदियों के उत्तार-चढ़ाव और बलात् धर्म-परिवर्तनों के कूर आधारों में ने 'सेरी भगवान्' शब्द का अध्यक्ष बने रहना हिन्दू परम्परा की उन गहरी बहों की प्रमाणित करता है जो प्राचीन विश्व के समस्त भागों में सुदृढ़ रूप

पूर्णस्वाविश्व और चैकोस्तोवाकिया जैसे यूरोप के वे क्षेत्र जहाँ स्लाव नहीं हैं, भी प्राचीन हिन्दू-संस्कृत परम्परा बाले ही थे जैसाकि इस तथ्य से प्रत्यक्ष है कि प्राचीन स्लाव लोग इन्द्र, वरुण, यम और सूर्य (हरिदास्त्र)

जैसे हिन्दू देवताओं की पूजा करते थे। यही कारण है कि चैकोस्तोवाकिया की राजधानी प्रेग संस्कृत नाम का एक टुकड़ा है।

यूरोप के एक अन्य प्रदेश—अर्थात् लटविया में भी राजधानी का नाम संस्कृत भाषा का ही है। लटविया की राजधानी 'क्रूग' है जो स्पष्टतः संस्कृत धातु है; यथा 'क्रूग्वेट' में।

हम इस प्रकार के असंख्य स्थान-वाचक नाम उदृत कर सकते हैं जो संस्कृत भाषा के हैं। ये स्थान सम्पूर्ण विश्व में स्थित हैं; यथा (बुद्ध-विहार का अपञ्चश रूप) बुखारा उज्बेकस्थान में, राम मर (अर्थात् भगवान् राम का तालाब) तुकों में, निशापुर ईरान में, नव बहार (नव विहार) ईराक में, (यज्ञाग्नि 'मधा' से) मवका अरेबिया में, नगर-हार अफगानिस्थान में, और रामचा (अर्थात् रामस्थान—राम का निवासस्थान) जोड़न में। ये सभी प्राचीन विगतकाल में एक विशाल हिन्दू साम्राज्य के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं।

हस में 'स्टालिनग्राड' और 'लेनिनग्राड' जैसे नाम ऐसे ही हैं जैसे भारत में 'नन्दीयाम' और 'सेवाग्राम'। हसी प्रत्यय 'ग्राड' प्राचीन संस्कृत 'ग्राम' का अपञ्चश रूप है। सोवियत संघ का एक भाग साइबेरिया, जो स्थानीय लोगों द्वारा 'शिविर' उच्चारण किया जाता है, विशुद्ध संस्कृत 'शिविर' शब्द है जो एक निवेश का द्वोतक है। यह नाम उन अस्थायी आवासों से व्युत्पन्न है जो भारतीय प्रचारकों ने वैदिक संस्कृति के प्रचार के लिए उस अनुदार क्षेत्र में लगाए थे। यह भी सिद्ध करता है कि प्राचीन संस्कृत-भाषी हिन्दुओं ने साइबेरिया को भी अपना उपनिवेश बना लिया था।

इस प्रकार, प्राचीन विश्व-मानचिक्र का विस्तारपूर्वक अध्ययन एक प्राचीन हिन्दू साम्राज्य का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह आश्चर्य-कारी भौगोलिक और स्थान-नामवाचक साह्यमात्र इस आधार पर उपेक्षित, तिरस्कृत नहीं किया जा सकता कि प्रचलित ऐतिहासिक पाठ्य-पुस्तकों में एक प्राचीन विश्व-व्यापी साम्राज्य का तो कोई उल्लेख समाप्त नहीं है। यदि किसी कारण-व्यग उस साम्राज्य के अभिलेख विनष्ट हो गये हैं, तो उनकी युनरेंसना उन सभी साक्षों से करनी होगी जिनमें से भौगोलिक और स्थान-नामवाचक नाम तो एक सूत्र ही है। इस प्रकार के साक्ष्य के अनेक अन्य पक्ष भी ही हैं जिनकी समीक्षा हम पृथक्-पृथक् अध्यायों में, आगे के पृष्ठों में करेंगे।

। १६ :

आयुर्वेद-हिन्दू चिकित्सा-शास्त्र ने प्राचीन विश्व को स्वस्थ रखा

इस में पूर्ववर्ती पूरोग के इतिहास के बारे में और मोहम्मद से पूर्व के अरेविया के इतिहास के सम्बन्ध में बहुत ही कम ज्ञानकारी उपलब्ध है क्योंकि मनानीन होने ही इतारणी और मुस्लिमों ने कमशः अपने-अपने पूर्वकालिक व्यक्तियों—पूर्वजों की सम्पत्तियों को समूल समाप्त कर देते अथवा उनका गृह विसर्जन करने का भरमक प्रयत्न किया था।

इस में पूर्व वृत्तों में जीवन के सम्बन्ध में किसी पश्चिम देशवासी में नया मोहम्मद से पूर्व अरेविया के आगे पूर्वजों के जीवन के सम्बन्ध में किसी शुल्कम व्यक्ति में प्रगत करा। इस प्रगत का तुरन्त, एक ही उत्तर वे दे देंगे कि पूरोग और पश्चिम देशवासी में कुछ प्रतिमा-पूजक अवोध व्यक्ति रहा करते हैं जो पश्चरी, वृद्धी और जल-धाराओं की पूजा-अचंना करते थे, उनके जीवन कोई सुपरिणामदायक, महस्तपूर्ण नहीं थे और ऐसा था—

वर्षन विष्वकाम के बारे में और अज्ञानता-पृक् इस प्रकार की धूटता, निर्विकरण विश्व के इतिहासकारी ने बहुत ही लम्बे समय तक चलने दी है। अब इसे पश्च-भर के लिए भी सहन नहीं किया जाना चाहिये। कोई भी व्यक्ति जाव पह टिप्पणी देकर इस और मोहम्मद के पूर्व मानवता के इतिहास को अवलिप्त नहीं कर सकता कि पूर्वकालिक व्यक्ति नगण्य, प्रतिमा-पूजक शब्दोंश्च अस्ति थे।

पश्चिम-विष्वकाल के आदिकाल में ही शक्तिशाली राष्ट्र और शक्तिशाली नायात्र थे जो पृथ्वी की धोना रहे हैं और जो पृथ्वी पर शासन करते

रहे हैं। पृथ्वी पर मानव-सम्पत्ति कर्त्ता-कर्त्रों की पुरानी है। और हमें पृथ्वी पर सबसे पुरानी जिस सम्पत्ति के दर्जने होते हैं, वह हिन्दुओं की सम्पत्ति है। वे हिन्दू लोग 'कृष्णस्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक उद्बोधन से प्रेरित होकर समस्त विश्व में फैल गये थे। हिन्दू लोग ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने मारे संसार को दर्शन-शास्त्र, खगोल-विज्ञा, ज्योतिष्य, गित्य और वास्तु-कला तथा अन्य सभी विज्ञानों और कलाओं की शिक्षा दी थी।

विश्व के प्रथम प्रशासकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, अन्वेषकों और शिक्षकों के रूप में प्राचीन हिन्दू लोग विश्व के सुदूरतम भागों में अपने साथ अपनी अद्वितीय चिकित्सा-पद्धति भी लेते गये। 'आयुर्वेद' के नाम से जात उनका यह प्राचीन शास्त्र विश्व के सभी भागों में फैल गया था।

अभी भी प्राचीन अवधिष्ट चिह्नों में सिद्ध किया जा सकता है कि प्राचीन चिकित्सा-पद्धति, आयुर्वेद का समस्त विश्व में अध्ययन और रोग-निवारणार्थ व्यवहार किया जाता था।

यह तो व्यापक रूप में स्वीकार किया जाता है कि अरब निवासियों ने अपने सभी विज्ञानों और कलाओं का ज्ञान प्राचीन हिन्दुओं से अर्जित किया था। हिन्दुओं ने अरब लोगों को उन अध्ययनों के साथ-साथ चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा भी दी थी। इस तथ्य की पुष्टि हिन्दू आयुर्वेद के साथ उनकी अरबी (यूनानी) चिकित्सा-पद्धति की नितान्त समझता से हो जाती है।

अरब लोगों के बारे में जात है कि वे अभी भी मानक आयुर्वेद-ग्रन्थों के प्राचीन रूपान्तरों का ज्ञान अर्जन करते हैं और उन्हीं का अनुसरण करते हैं। रोग-निदान की अरबी-प्रणाली भी पूरी तरह हिन्दू—अर्याद् रोगी की नाड़ी, नल्ज में ही है।

अरब लोग अपनी चिकित्सा-पद्धति को यूनानी कहते हैं जो इस बात की दोतक है कि उन लोगों ने इसका ज्ञान ग्रीस से प्राप्त किया था क्योंकि ग्रीस के लिए उनका शब्द यूनान है। चूंकि यूनानी और आयुर्वेद-प्रणाली समान हैं, इसलिए स्पष्ट है कि आयुर्वेद ग्रीस के माध्यम से अरेविया पहुँचा था। यह सिद्ध करता है कि प्राचीन ग्रीस भी आयुर्वेद का अनुसरण करता

था। स्पष्टतः इसका निष्कर्ष यह है कि भारतीय प्रशासक और चिकित्सक लोग शील भी नहीं थे।

पैशम्बर मोहम्मद के सम्बन्ध में मन्त्ररणों में अभिलिखित है कि जब कभी उनकी पहनी काई-जा बीमार हो जाती थी, तब वे भारतीय चिकित्सकों को ही चिकित्सा-कार्य हेतु बुलाया करते थे। यह तभी सम्भव हो सकता था क्योंकि उस समय के अरेबिया में भारतीय विचार, शिक्षा और प्रशासन का छनूनहरण किया जा रहा था। हम इस तथ्य का उल्लेख लिटिश शासन के अधीन भारत के सम्बन्ध में अपने अनुभव के आधार पर कर रहे हैं। लिटिश प्रशासन के अधीन जब भारत हो गया, तब आहिस्ता-आहिस्ता भारतीय-आयुर्वेदिक चिकित्सकों का सम्मान कम होता गया जबकि एलो-पैचो और अनुसरण करने वाले चिकित्सकों का जनता में मान बढ़ गया। भारत के गण-मान्य, बड़े-बड़े लोग परामर्श हेतु राज्यसभा-पद्धति के चिकित्सक को बुलाने में गौरव करने लगे। आयुर्वेदिक चिकित्सकों के प्रमाण-पत्रों का बहिष्कार करके, प्रशासन ने राज्यसभा-चिकित्सकों द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्रों को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। अतः, पैशम्बर मोहम्मद के युग में अरेबिया में भारतीय चिकित्सकों से रोगोपचार-हेतु परामर्श किया जाना एक ऐसा तथ्य है जो इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि तत्कालीन प्रशासन भारतीय था। सम्भावना है कि कुछ व्यक्ति क्रीष्णवेद में इस निष्कर्ष का घोर तिरस्कार कर देंगे। उन लोगों के विचारण्य हम दो बातें प्रस्तुत करेंगे। पहली बात यह है कि प्राचीन भारतीयों ने मानव-मानव में और देश-देश के मध्य कभी कोई जटिल, अन्तर नहीं किया था। उनके लिए तो समस्त विश्व ही सामान्य मानव था थर था। अतः वह हम यह कहते हैं कि भारतीय विचार, और प्रशासनियों द्वारा व्याप्त थीं, तब हमारा तात्पर्य मानव इतना है कि भारतीय कृषियों और तस्वदगियों द्वारा विकसित तथा प्रचारित-इसार्थि दर्शन-दान्त, शिक्षा-सम्बन्धी प्रणालियों, प्रशासनिक विधियों, सामाजिक दृष्टि, औषधियों आदि उन दिनों के अरेबिया में प्रचलित थीं। इस कथन से ऐसी कोई बात तो नहीं है जिससे किसी की भावना को ठेस फूँका जाए। इसके विपरीत, इस तथ्य से तो सम्पूर्ण मानवता में ऐक्य की भावना

संबंधित होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि भारतीय प्रशासनिक, सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी ढाँचों का अंगीकरण अरेबिया पर भारतीय आधिपत्य के राजनीतिक और/अथवा राजकीय प्रभाव का ज्ञातक न होकर भारत और अरेबिया सहित प्राचीन विश्व के शेष भाग के मध्य सामान्य नागरिकता का परिचायक है।

भारतीय चिकित्सा-पद्धति के प्रचलन के चिह्न योस और अरेबिया में देख लेने के बाद, आइये, हम प्राचीन विश्व के अन्य क्षेत्रों की जाँच-पढ़ताल भी करें।

रूस के विशाल एशियायी भाग 'साइबेरिया' का ही उदाहरण ली। एक विशाल और अशरण्य जलवायु बाला तुलनात्मक रूप में निजंन स्थान होने के कारण साइबेरिया की प्राचीन भारतीय परम्परा तुलनात्मक रूप में अधिक सुरक्षित बनी रही है।

कदाचित् लोगों को यह जात नहीं है कि साइबेरिया में अभी भी मानव आयुर्वेद ही प्रचलित है और उसे ही अक्षुण्ण रखा हुआ है। साइबेरिया-निवासियों ने अभी भी प्राचीन आयुर्वेदिक पाठ्य-ग्रन्थों को, भारतीय जड़-बूटियों के रेखाचित्रों सहित, सुरक्षित रखा हुआ है। साइबेरिया में प्राप्त अष्टांग-आयुर्वेद की एक प्राचीन भारतीय पाठ्य-पुस्तक की फ्रॉटो-प्रति 'सरस्वती-विहार', जे-२२, हीजा खास, नथी दिल्ली-१६ में लाकर रखी गयी है। 'सरस्वती-विहार' के प्रतिनिधियों ने सन् १६६८ ई० के आम-पास साइबेरिया का भ्रमण किया था। उनका कहना है कि हिंगाष्टक और विफला चूर्ण जैसी सामान्य घरेलू आयुर्वेदिक दवाइयाँ वहाँ के निवासियों द्वारा सामान्य रूप में सेयार की जाती हैं और उपयोग में लायी जाती हैं। साइबेरिया के निवासी 'गंगा-जल' के प्रति भी अत्यधिक अड़ा, आदर-भाव प्रदर्शित करते हैं। यह सबकुछ इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है कि भारतीय अध्यापक, प्रशासक और चिकित्सक चिर अतीतकाल में साइबेरिया गये थे, वहीं ठहरे थे, वहीं उन्होंने कार्य किया था और शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया था। ज्ञान की बतंमान स्थिति का विचार करते हुए तो यह सब अतिशयोक्तिपूर्ण, काल्पनिक, असम्भव ही प्रतीत होता है, किन्तु हम यहीं और अपने अन्य प्रकाशनों के माध्यम से जो विरले साध्य प्रस्तुत कर रहे

है, उनपर विचार करते हैं, इतिहास के इन भी विस्तृत अध्यायों को
नावधानीपूर्वक जोड़ना पड़ेगा, उनका अध्ययन करना होगा और फिर,
उनको जोड़ना होगा ।

उनका जाइया है।
व्यय 'साइबेरिया' शब्द ही संस्कृत मूलोदभव है। पृथ्वी की सर्वप्रथम नदियों का तेजार करने वाले भारतीय अन्येषकों और भूगोल-वैज्ञानिकों ने उस शब्द को यह नाम प्रदान किया था। यद्यपि इसकी अंग्रेजी वर्तनी 'साइबेरिया' शब्द को यह नाम प्रदान किया था। यद्यपि इसकी अंग्रेजी वर्तनी 'साइबेरिया' की जानी है, तथापि नभी स्थानीय लोग अपनी भूमि को 'शिविर' कहकर पुकारते हैं। यह स्पष्टतः मूल-संस्कृत शब्द है। संस्कृत में 'शिविर' शब्द तम्बू लगाना, या अस्थायी निवेश स्थापित करने का शौक है। चूंकि माइबेरिया अग्रण्य क्षेत्र है, लोग वहाँ पर सामान्यतः अस्थायी मकानों में रहते हैं।

अतः यदि प्राचीन भारतीय (हिन्दू) चिकित्सा-पद्धति श्रीस, अरेविया और साइवेन्या द्वासे विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित रहा—ऐसा देखा जा सकता था, तो स्पष्ट है कि आयुर्वेद विश्व के सभी क्षेत्रों में व्याप्त हो चुका था। यह ऐतिहासिक तर्क है जो ऐतिहासिक कार्यविधि का एक महत्वपूर्ण अंश है। विशेष हम में तब जबकि व्यक्ति किसी अति प्राचीन, इतिहास के ज्ञात लघुता लज्जात वातों को लोग निकालने के शोध-कार्य में लीन हो। यह ऐसा ही है जैसे आई हुई बस्तुओं के दोर में से एक नमूना लेकर सारे द्वेर की परामर्श बार लेना।

हिन्दू औषध-विज्ञान की चिकित्सा-प्रणाली का ज्ञान मानव को सर्व-प्रथम हांने का एक अति महत्त्वपूर्ण प्रमाण इस तथ्य में उपलब्ध होता है कि पर्मिली चिकित्सा-जागत्र की शब्दावली में आयुर्वेद से व्युत्पन्न शब्दों की भरपार स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

ब्रह्मजी नाट 'कफ' का विचार करेंगे। यह वही 'कफ' शब्द है जो आयुर्वेद में अति लाभान्व्य शब्द है। आयुर्वेद के मूल-सिद्धान्तों में से एक यह है कि किसी भी गंभीरे के गरीब में होने वाला रोग 'वात-पित्त-कफ' [अंग्रेजी में, *vata*(वात), *pitta*(पित्त), *kapha*(कफ)] में असन्तुलन का प्रतिरूप है। वही आयुर्वेदिक शब्द 'कफ' ब्रह्मजी में भी 'कफ' के रूप में ही विद्यमान है। आपति यह की जा सकती है कि आयुर्वेद में 'कफ' का अर्थ तो

बलगम होता है, परन्तु अंग्रेजी भाषा के 'कफ' का अर्थ थोड़ा भिन्न है। प्रयोग में अन्तर तो स्पष्ट है किन्तु इसका कारण तो अंग्रेजी चिकित्सा-व्यवहार और प्राचीन आयुर्वेद के मध्य अलगाव की शातांत्रियता है। चूंकि सम्पूर्ण विश्व में यह माना जाता है कि 'कफ' (अंग्रेजी भाषायी) को उत्पन्न करने वाले तत्त्वों में से एक मूल तत्त्व बलगम है, इसलिए स्पष्ट है कि अपने सम्पूर्ण अन्तर्गत में कुछ विचलित हो जाने पर भी अंग्रेजी भाषा वाला 'कफ' शब्द आयुर्वेदिक 'कफ' शब्द से भिन्न कुछ भी नहीं है।

अंग्रेजी 'हार्ट' शब्द के लिए एक अति महत्त्वपूर्ण आयुर्वेदिक शब्द 'हृदय' लीजिये। अंग्रेजी चिकित्सा-पढ़ति में रोगी के हृदय की घड़कन (हार्ट-बीट) की परीक्षा करना अति सामान्य बात है, फिर भी, आम तौर पर यह सर्वज्ञात नहीं है कि 'हार्ट' शब्द भी प्राचीन आयुर्वेदिक, संस्कृत, हिन्दू-मूलक है। 'हृदय' शब्द से व्युत्पन्न अनेक शब्दों में 'हार्दिक' भी एक शब्द है जिसका अर्थ 'हृदय से अनुभूत' है। इस प्रकार, कोई संस्कृत-भाषी व्यक्ति जब किसी के प्रति अपनी 'हृदय से अनुभूत' कृतज्ञता, वधाई प्रकट करना चाहता है, तो वह 'हार्दिक अभिनन्दन' कहता है। इस चर्चा से यह अनुभूति हो जाएगी कि संस्कृत में 'हार्दिक' का अर्थ 'हृदय से अनुभूत' (हार्ट-फैल्ट) है। अर्थात् संस्कृत का 'हृद' अंग्रेजी में 'हार्ट' उच्चारण किया जाता है।

रोग-निदान-शास्त्र से सम्बन्धित एक अन्य अंग्रेजी शब्द 'हिकप्स' है। इस शब्द संस्कृत का 'हिक्क' है।

चिकित्सा-विज्ञान की शाखा, जिसका नाम वृद्ध-रोग-निदान है, पूर्ण-
पैण आयुर्वेदिक मूलक है क्योंकि संस्कृत में 'जर' का अर्थ वृद्धावस्था और
'जोन्टो' किसी जीव के 'अन्त' का शब्दक है—अंग्रेजी शब्द है 'जरन्टो-
लौजी'। 'जरन्टोलौजी' यथार्थ में जीव-प्राणियों के सम्बन्ध में इस बात के
अध्ययन का विज्ञान है कि वे वृद्धावस्था को कैसे प्राप्त होते हैं और मर जाय-
ते हैं। इस तथ्य से स्पष्ट है कि यह अध्ययन, जिसे आधुनिक व्यक्ति-
प्रशिक्षण की दैन समझते हैं, अति प्राचीन भारतीय, हिन्दू आयुर्वेदिक पुरा-
नस्तु है। इसका अध्ययन और प्रशिक्षण प्रशिक्षण में तबतक होना सम्भव
ही था जबतक सूरोपियनों को अधिशासित और प्रशिक्षित करने के लिए

१६४

भारतीय गिरजा और प्रशासक सम्पूर्ण सूरोप में न फैल गये हों। हम यहाँ इस बात की ओर पुनः इंगित करना चाहेंगे कि इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय लोग सूरोपियों को अपने गुलाम व्यक्ति समझते थे। भारतीय लोग सम्पूर्ण विश्व को एक ही प्रदेश समझते थे और सभी मानवों को एक ही भाल-समुदाय मानते थे। कदाचित् अभी भी भारतीय लोग ही विश्व का ही भाल-समुदाय मानते थे। कदाचित् अभी भी भारतीय लोग ही विश्व का एक-मात्र ऐसा समुदाय है जो एक-विश्व और एक-मानव-समुदाय का विचार करता है।

अंग्रेजी शब्द 'लैंड' लै। यह भी संस्कृत-मूलक है। संस्कृत का शब्द 'प्रनिव' है। संस्कृत का अन्त्य-भाग 'व' अंग्रेजी में 'ड' हो जाता है। इस प्रक्रिया का दण्डन 'लैंप्स्टैंड' शब्द में किया जा सकता है। संस्कृत में, वह अंग्रेजी 'स्टैंड' शब्द, 'स्थान' है। इसी प्रकार, प्राचीन संस्कृत शीर्ष 'आंग्ल-स्थान' पहले 'एन्गललैंड' में और फिर 'इंग्लैंड' में परिवर्तित हुआ देखा जा सकता है।

अंग्रेजी चिकित्सा-शास्त्रीय 'पिन्चिटरी ग्लैंड' शब्द भी बलगम के लिए प्रयुक्त आयुर्वेदिक शब्द 'षित' से व्युत्पन्न है, जैसा पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। मस्तिष्क में जल-अतिसेक करने वाला 'हाइड्रो-सेफेलस' रोग संस्कृत शब्द 'आईकपान' है।

अंग्रेजी रोग-विज्ञान में 'ओस्टिओ-मेलेसिया' और 'ओस्टिओ-पैरोसिस' नामक दोनों रोगों के नाम संस्कृत से व्युत्पन्न हैं। संस्कृत में 'अस्थि' का अर्थ 'हट्टी' है (दो अंग्रेजी में 'ओस्टिओ' में बदल गया है) और 'मल' का अर्थ 'दूषित होना, गोग-युक्त होना अथवा बुरा' है। इससे स्पष्ट है कि इन दोनों रोगों का अध्ययन प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों से किया गया है।

केसर का जल अथवा घातक अर्बुद (प्रनिय) का वर्णन करने में प्रायः उपयोग में लाया जाने वाला 'मलिनेन्ट' शब्द संस्कृत का अलिन शब्द है जिसका अर्थ दूषित, बुरा, मैला आदि है। उही संस्कृत शब्द अंग्रेजी में व्यापक रूप में प्रयोग में आता है; यथा मेलबॉक्ट, माल-रद्मिनिस्ट्रेशन, माल-एंडोइट, माल-प्रेविट्स, माल-एड्जस्टमेंट, मेलसी... आदि।

रोगी अपने अपने चिकित्सक से प्रायः शिकायत करता है कि उसका दिन

अयवा सिर 'चक्कर' अनुभव करता है। इस रोग का अंग्रेजी शब्द 'स्पिन' है। मह शब्द संस्कृत, आयुर्वेदिक-मूल का है। संस्कृत का शब्द स्पन्दन है। अंग्रेजी का 'स्पिडल' शब्द भी उसी संस्कृत-मूल का है। यूरोपीय 'मैटरनटी' शब्द संस्कृत का 'मातृ-नीति' है और 'पैडाट्रिक्स' शब्द संस्कृत के तीन शब्द पद—अस्थि-शास्त्र का मिश्रित समूह है। 'पैडा' से शिशु का अर्थ लगाने वाली व्युत्पत्ति काल्पनिक है, भ्रामक है। 'डैन्टिस्ट्री' शब्द संस्कृत का 'दन्त-शास्त्र' शब्द-युग्म है।

उपर प्रदर्शित किये उदाहरणों के अनुसरण पर यूरोपीय चिकित्सा-पद्धति की शब्दावली तथा निदान व रोगोपचार के मूल की अति सूक्ष्म और व्यापक परीक्षा इस तथ्य को अवश्य द्वी उद्घाटित कर देगी कि हिन्दू ऋषियों और दृष्टाओं द्वारा चिर-विस्मरणीय युगों में इतनी सुदक्षतापूर्वक विकसित प्राचीन मान्य, पूर्णता-प्राप्त, दोष-रहित, खच्च-हीन, मिष्ठुण औषध-प्रणाली पर ही नौ-सिखिएपन वाली, अस्पष्ट, व्यावसायिक, भयावह रूप में खच्चीली, और लडखडाती-दिखावटी पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति प्रस्तुत की गई है। प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति का प्रचार-प्रसार, समस्त विश्व में अथक, परहितवाद-परक, निःस्वार्थ हिन्दू प्रवर्तक कल्याणकर्ताओं ने किया था। उनका कार्य प्रेम और सेवा-भाव से प्रेरित था क्योंकि यह तो सर्वज्ञात ही है कि प्राचीन हिन्दू आयुर्वेदिक चिकित्सक और उनके आनुषंगिक कामिक, निःशुल्क, धर्मर्थ ही अपनी सेवाएँ और उपचार प्रस्तुत किया करते थे। कारण यह है कि किसी व्यक्ति की शारीरिक व्यथा से किसी भी प्रकार का धनोपार्जन उन हिन्दुओं के लिए तिरस्करणीय था। आयुर्वेद का धर्मदिश है कि सम्पूर्ण चिकित्सा-सहायता पूर्णतः, नितान्त निःशुल्क होनी चाहिये। हिन्दू रीति-नीति का भी यही आग्रह रहा है कि शिक्षा-सम्बन्धी सभी कार्य भी नितान्त निःशुल्क होने चाहिये। हमारे अपनी ही युग में ऐसे व्यक्ति मिलने कोई विरली, निराली बात नहीं है जो आयुर्वेदिक उपचार करते हैं किन्तु बदले में किसी प्रकार का धन अथवा अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करते हैं। चिकित्सा-सेवा के बदले में किसी भी प्रकार की प्रतिपूर्ति नहीं करना उनका कठोर व्यावसायिक सिद्धान्त होता है।

दुःखित, व्यक्ति के प्रति इस प्रकार की निःस्वार्थ सेवा और आचरणक-

प्रस्तु व्यक्ति को निःशुल्क शिखा देना प्राचीन युग में मात्र इसी कारण सम्भव हो पाये कि हिन्दुओं ने अपने प्रबुद्ध, बुद्धिजीवी व्यक्तियों के हृदय में विराग, मितव्ययिता और सभी जीवों के प्रति अपरिहार्य कर्तव्य-पालन की भावना का उच्च आदर्श स्थापित किया हुआ था। साथ-ही-साथ, लाभार्जन करने वालों को और वेतन-भोगियों को प्रशिक्षित किया गया था कि वे ऐसे सभी निःस्वार्थ, सामाजिक-कार्यकर्ताओं की देखभाल, उनके खान-पान, जीवन-व्यापन के लिए अत्युदार (अंश) दान हारा सहायता करें।

व्यावसायिक द्वालूता के ऐसे विशुद्ध, निष्कलंक आदर्शों के अतिरिक्त आयुर्वेदिक औषध-निर्माण सम्बन्धी और रोगि-शर्या-सम्बन्धी स्तर भी अत्युच्छावस्था को प्राप्त थे। आयुर्वेदिक विशेषज्ञ-जन आडम्बरहीन छोटे-छोटे गाँवों में कम-से-कम परिधानों में रहा करते थे। वे लोग जंगलों से जड़ी-बूटियों लाने से लेकर गांव और शहरों में रोगियों को दवा देने तक लगभग सारा ही कार्य स्वयं किया करते थे। सम्पूर्ण व्यावसायिक काम-काज स्वयं करने से उसमें शुद्धता होती थी। सभी जड़ी-बूटियों को कूटने-पीसने से लेकर रोगियों को दवा पिलाने तक का सम्पूर्ण कार्य ये आयुर्वेदिक वैद्य, लोग स्वयं ही किया करते थे।

आयुर्वेदिक रोगि-शर्या और औषध-वितरण सम्बन्धी ज्ञान कुछ व्यावसायिक व्यक्तियों तक ही सीमित रहने के स्थान पर जानवृक्षकर, मुनियोजित इंग से परिवार की महिलाओं और साधारण ग्रामीण कारीगर और किसान तक के सभी स्तरों के व्यक्तियों को भी रहस्य-उद्घाटित किया जाता था। सभी सामान्य रोगों और चोटों के लिए वे सभी लोग शीघ्र प्रभावकारी और प्रायः निःशुल्क, सस्ती दवाइयों का सेवन जानते थे। इसके अतिरिक्त, बखोदर, शांथिक अयरोग, पुराना अमीदा, रक्तचाप, बवासीर और मधुमेह जैसे खृतरनाक रोगों के लिए भी रामबाण औषधियों का विकास आयुर्वेद चिकित्सा-वास्त्र में किया जा चुका था।

पूर्व-स्थित आयुर्वेदिक महाविद्यालय के एक प्रधान आचार्य ने एक बार नुगे दसाया था कि अस्त्वन्त सादे वेश वाला एक स्थानीय व्यक्ति यहाँ रहना चाहिए अस्थि-अयरोग के उपचार के लिए अत्यन्त साधारण तथापि वहि प्रभावकारी दूषाश का बाल था। उसने उस रोग के सभी वीमारों की

निःशुल्क, धर्मर्थ चिकित्सा करने की सेवा हृदयंगम की हुई थी। स्थानीय अस्पताल के चिकित्सकादि अस्थि-अयरोग का कोई उपचार-हेतु निरन्तर उस सीधे-सादे व्यक्ति के पास ही भेज दिया करते थे। वह व्यक्ति रात्रि के समय एक निकटस्थ जंगल में जाता था, कोई जड़ी-बूटी लाता था, पानी सहित उसको पत्थर पर घिसता-रगड़ता था, और रोग-प्रस्तु भाग पर उसका लेपन करता था। रोगियों को ठीक होने में कोई समय नहीं लगता था। किन्तु अफसोस की बात यह थी कि वह व्यक्ति यह नहीं बताता था कि वह जड़ी-बूटी कौन-सी थी। अस्पताल के चिकित्सकों ने उस रहस्य की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से एक बार उस व्यक्ति का चोरी-छिपे अनुसरण किया। वह व्यक्ति, पह अनुभव होते ही कि कोई उसका पीछा कर रहा था, चम्पत हो गया। उसके बाद, उसे कभी किसी ने नहीं देखा। वह किसी की दिखायी नहीं दिया।

मैं एक वृद्धावस्था को प्राप्त, प्रत्यक्षतः तेजवती, महिला को जानता हूँ, जिसको अकस्मात् ग्रांथिक-अयरोग हो गया। बाहर उभरती हुई ग्रन्थियों ने उसके चाँदि-से मुखड़े को विट्रूप कर दिया। उन ग्रन्थियों से दुर्गन्धमय स्राव ने स्वयं उसके लिए और अन्य लोगों के लिए भी जीवन को नरक बना दिया था। वह अन्य लोगों के लिए बोझ बन गई। उसने इलाज के लिए भरसक खोज की। सभी व्यक्तियों ने उस रोग को असाध्य घोषित कर दिया। फिर, किसी ने उसे एक अप्रदर्शनप्रिय, निरभिमानी देहाती दर्जी के बारे में बताया जो भारत के महाराष्ट्र प्रदेश के कराड नगर में रहता था। सभी प्रकार निराश होने पर भी वह उसके पास जा पहुँची। उस दर्जी ने महिला से पूछा कि उपचार-हेतु उसके अंग को फफोलने से होने वाली पीड़ा को क्या वह सहन कर लेगी। रोगी महिला ने उत्तर दिया कि मैं इस रोग से इतना तंग आ चुकी हूँ कि उपचार-हेतु सभी प्रकार का कट्ट सहन कर लूँगी। उपचार प्रारम्भ कर दिया गया। दर्जी एक फटे हुए चिक्कड़े कपड़े को, खुले में, वृक्ष के नीचे फैला देता था। महिला को उस वस्त्र पर पालथी मारकर बैठना होता था। शब्द दर्जी उस महिला की प्रनियतों पर एक मोटा-सा रक्तिम लेप पोत दिया करता था। लेप सूखने

पर उन्हियों तो सुकाहने लगती थीं जिसके कारण उनमें जमा हुआ रक्त और प्रबाट बाहर निकलने लगता था और रोगी के मुख पर से बहता हुआ और प्रबाट बाहर निकलने लगता था और रोगी के मुख पर से बहता हुआ नीचे बहने लगता था। यह उपचार कुछ दिनों तक आरी रहा और बहुत-दोड़े दिनों के भीतर ही उस महिला का मुखड़ा पूर्ववत् सुन्दर हो गया। जिन जिसी प्रकार का निशान छोड़े हो, वह रोग गायब हो गया था। उस दर्जे ने उपचार करने का एक पंसा भी नहीं लिया। उसने जो कुछ कहा, वह यह था—“मैं भगवान् की प्रार्थना करता हूँ, और उसकी अपरम्पार शक्ति व हृषी के लिए आप भी उसी की प्रार्थना करें, तथा उसका धन्यवाद करें।”

अनेक परिवारों की महिलाएँ खसरा और सूखा रोग जैसे सामान्य रोगों से चिन्तित बच्चों का निःशुल्क उपचार किया करती थीं। घरेलू बस्तुओं से सस्ता इलाज हाँने के कारण उनके निवास-स्थानों पर प्रायः भीड़ लगी रहा करती थी, जिनमें दूर व पास के स्थानों से ऐसे बच्चे अपने निर्धन माता-पिता सहित उनके यहाँ उपस्थित रहते थे।

महिलाओं के प्रसव-कार्य तो निरपवाद रूप में घरों में ही हुआ करते थे। संयुक्त परिवार की ज्येष्ठा महिलाओं के कुशल-मार्मदशन में यह कार्य सम्बन्ध होता था। आयुर्वेदिक औषधों के सम्बन्ध में जान इतना सामान्य था और उनकी प्राप्ति इतनी सरल कि प्रायः प्रत्येक ज्येष्ठ पुरुष अथवा महिला को, कुछ समय बाद, सभी सामान्य रोगों का उपचार करना आ जाता था। लौसी, चुकाम, सिर-दर्द, अनिद्रा, पेट-दर्द, मतली-मचली और एवं उन साधारण रोगों के उपचार-हेतु तुरन्त प्राप्य आयुर्वेदिक औषधों का एक संग्रह प्रायः सभी लोग अपने-अपने घरों में रखते थे। सभी आयुर्वेदिक औषधियों प्रायः इतनी सस्ती होती थी कि थोड़ी-सी मात्रा के लिए कोई भी व्यक्ति उनकी कीमत माँगने की परवाह नहीं करता था। जिसूल ही तुरन्त शाप्त हो जाती थी कि औषधि

एहं वेद की बात है कि प्राचीन हिन्दू चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद जनता की बीचे उपेक्षा के कारण जानेः-जानेः लोप होता जा रहा है। यह प्रत्येक इन्द्रिय के एक वाद्य चिकित्सा-विज्ञानी थी। आयुर्वेदिक औषधियों की एक

परख सर्वोच्च, सर्वोत्तम है जो अन्य किसी भी औषधि में उपलब्ध नहीं है। सभी औषधियाँ खाद्य होनी चाहिए और सभी खाद्य बस्तुएँ औषधि। सभी आयुर्वेदिक औषधियाँ इस सिद्धान्त पर खरी उत्तरती हैं। इसके अनिरिक्त, आयुर्वेद के उल्लेखनीय गुणों, लक्षणों में से कुछ ये हैं कि वे सरल और तुलनात्मक रूप में कम कष्टदायक उपचारी हैं, चमत्कारी प्रभाव होता है, औषधियों सरलतापूर्वक प्राप्ति है, इनमें चीरा-फाड़ी के स्थान पर औषधि-सेवन पर अधिक विश्वास होता है, सूल औषधियों की घर पर ही तैयार किया जाता है और रोगियों का उपचार भी घर पर ही किया जाता है, वे औषधियों मादक नहीं होतीं, इनमें कलेशदायक, बेढ़गे, रोग-निदान सम्बन्धी अनाप-शनाप बस्तुओं का सर्वथा अभाव है, औषधियों का नगण्य मूल्य होता है तथा इनमें यह सुविधा होती है कि कोई भी व्यक्ति इनको रोगी को दे सकता है—उनका सेवन करा सकता है।

प्राचीन हिन्दुओं ने एक अति कुशल और सस्ती चिकित्सा-प्रणाली का न केवल आविष्कार और विकास ही किया था, अपितु उसे सम्पूर्ण प्राचीन विश्व में प्रचारित-प्रसारित करने में सफलता भी प्राप्त कर ली थी। यह तथ्य इस बात का प्रमाण भी है कि उन्होंने एक ऐसा मानव-चातृत्व स्थापित करने में भी सफलता प्राप्त कर ली थी जिसमें किसी भी प्रकार का अंत्रीय, जातीय अथवा राजनीतिक भेद-भाव नहीं था।

: २० :

सम्पूर्ण प्रशान्ति क्षेत्र हिन्दू-प्रदेश था

विश्व की जनता सामान्य रूप में यह अनुभव नहीं कर पाती है कि हिन्दूत्व और संस्कृत किसी अधिक भावामें ऐक्य की भावना को जन्म देता है। व्यक्ति विश्व के किसी भी भाग पर पदार्पण करे—उसे एक प्राचीन हिन्दू संस्कृति के चमत्कारी लक्षण दृष्टिगत होने अवश्यम्भावी है जिसमें वह क्षेत्र अभी भी परिव्याप्त मिलेगा।

आइए, हम मलयेशिया का उदाहरण लें। लगभग दो दशक पूर्व, यह मलय देश के नाम से पुकारा जाता था। निकट ही, इसके दक्षिणी छोर पर मुरम्म सिंगापुर द्वीप है। मद्रास के पूर्व में लगभग २,००० मील पर है।

मलय और सिंगापुर, दोनों ही, संस्कृत शब्द हैं। संस्कृत साहित्य मलय शब्द से भरा पड़ा है। कल्पना की जाती थी कि मलय पर चन्दन विपुल भावा में होता था। मलय देश की एक कहावत में कहा गया है कि वहाँ पर चन्दन इनना अधिक होता है कि वहाँ वनजाति की पारिवारिक महिलाएँ उनको इंधन समझकर चूल्हा जलाती हैं।

अतः, मलय और सिंगापुर, दोनों ही, संस्कृत शब्द हैं। सिंगापुर की सही बंगाली सिंहपुर—बयात् सिंहों की नगरी होनी चाहिये। सन् १४६२ ई० में ब्रिटिश लोगों ने रेफल्स सिंगापुर की धरती पर पहुँचा था, तब उन्हें एक हिन्दू राजा का बनवाया हुआ किला देखा था। उस राजा का नाम परमेश्वर था। इस सम्बन्ध में वहाँ संस्कृत भाषा का एक शिलालेख था। इस किले के स्थान पर आजकल राजमार्ग बना हुआ है जिसे सिंगापुर में 'स्ट्रेटें रोड' कहते हैं।

वह किला लघुद्वी-सीमा पर नियन्त्रण रखने के लिए सिंहपुर-द्वीप के दक्षिणी ओर पर आचीन हिन्दुओं ने बनवाया था। यह उन दिनों का एक

अतिमहत्वपूर्ण नौसिक, मैनिक और वाणिजिक अड्डा था जब भारत सागरों का स्वामी था और उसके जलपोत दक्षिणी अमरीका के पूर्वी-तट से मैनिसको के पश्चिमी तट तक और उत्तर-ध्रुवीय क्षेत्र से दक्षिण-ध्रुवीय क्षेत्र तक के विशाल प्रदेश में स्थित सागरों की छातियों को अप्रतिहत चीज़ते हुए बै-रोक-टोक जाते-आते थे। 'रैफल्स के संस्मरण' उन पुस्तकों में से एक है जिसमें भारत के यशस्वी विश्व-साम्राज्य की एक झलक के दर्शन विद्वानों को मिल सकते हैं।

भारत की अवाध जल-याक्राओं का एक विचिन्न स्मृति-चिह्न अर्थात् प्राचीन भारतीय जलपोतों और युद्ध-पोतों के गले में लटकायी जाने वाली धातु की एक घण्टी जिसपर एक तमिल शिलालेख अंकित था, एक आस्ट्र-लियाई आदिम व्यक्ति को मछलियाँ पकड़ते समय उसके जाल में प्राप्त हुआ था।

मलाया (मलय-देश) और सिंगापुर एक राजमार्ग द्वारा जुड़े हुए हैं जो सुरंग पर बने हुए पुल के आर-पार गया है। ब्रिटिश लोगों के अधीन मलयेशिया आंशिक रूप में ब्रिटिश प्रदेश था और आंशिक रूप में छोटे-छोटे रजवाड़ों में महाराजाओं के अधीन उसी प्रकार था जिस प्रकार भारत में था। जिस प्रकार विश्व के कई देशों का बीभत्स भाग्य था, उसी प्रकार मलय देश भी अरब लोगों के बर्बर लासदायक, आतंकपूर्ण आक्रमणों का शिकार था। तलबार और मशाल के बल पर उन्होंने मलय-देश का घेरा गल दिया, और वहाँ के निवासियों को आतंकित कर दिया कि वे इस्लाम धर्म को स्वीकार करें। उस सर्वनाश की घड़ी में, सभी मलयेशियन लोग, जो सभी हिन्दू ही थे, राजकुमार से भिखारी तक, मुस्लिम बन गये—इस्लाम धर्म में परिवर्तित कर दिए गये।

किन्तु इस्लाम की जड़ें अभी गहरी नहीं जमी हैं। हमें आशा करनी चाहिये कि उनके यशस्वी हिन्दू विगत-काल की विरही स्मृतियाँ और अरब-आक्रमणकारियों द्वारा ढाहे गये सर्वनाश के सत्य बर्णनों के परिष्करणपूर्ण अध्ययन एक दिन मलयेशियायी लोगों को प्रेरित करेंगे कि वे अपने अति प्राचीन हिन्दू-धर्म को वापिस मार्गिंगे और उसे पुनः अंगीकार कर लेंगे।

मलयेशिया नासियों को भाषा और संस्कृति अभी भी संस्कृत और हिन्दू

है। उनकी राजधानी 'क्यालालम्बुर' का ही नाम लें। 'पुर' प्रत्यय संस्कृत का अस्त्व-स्वरूप है जो नगर-नगरियों का शोतक है। एक अन्य नगर 'सीराम-बन' है जो बास्तव में 'श्री राम बन' अर्थात् श्री रामचन्द्रजी का कुञ्ज-निकुञ्ज है। पहाड़ी उत्तरी मलयेशिया का एक नगर 'सुंगई पट्टणी' कहलाता है। इसका पुरातन संस्कृत नाम 'अंग पट्टण' था जिसका अर्थ 'पर्वतीय नगर' था। 'पेतालिङ-जय' नामक एक अन्य नगर का नाम 'स्फटिक-लिंग-जय' अर्थात् 'भगवान् शिव के महान् स्फटिक चिह्न' से ही व्युत्पन्न है। प्रसंगवज्र कह दिया जाय कि उसमें एक अतिमहत्वपूर्ण पुरातत्त्वीय-सूत्र प्राप्त होता है। उस नगर का मुख्य पूजा-स्थल अवश्य ही एक विशाल शिवलिंग रहा होगा, जो स्फटिक अथवा स्फटिक-सदृश इवेत संगमरमर का होगा। भारत में, आगरा स्थित सुप्रसिद्ध ताजमहल भी तेज-महा-आलय अर्थात् जाज्वल्यमान देवालय था जिसमें शिवलिंग प्रतिष्ठित था। जिस प्रकार ताजमहल को इस्लामी-कला में बदल दिया गया, उसी प्रकार सम्भव है कि 'पेतालिङ जय' की मुख्य मस्जिद स्फटिक शिवलिंग के एक प्राचीन हिन्दू देवालय के ऊपर ही स्थापित हो। धर्मान्ध इस्लामी आक्रमणकारी लोग इस बात के लिए कृत्यात् थे कि वे शिवलिंग हिन्दू मन्दिरों को मात्र धोर प्रतिकूलता के ही कारण मस्जिदों और मकबरों में बदल दिया करते थे।

सम्पूर्ण प्राचीन हिन्दू मलयेशिया में हिन्दू देवता भगवान् शिव ही भाराइना-भूजन के मुख्य विन्दु थे। कुछ दशक पूर्व 'सुंगई पट्टणी' में एक अति प्राचीन हिन्दू शिव मन्दिर उत्खनन में प्राप्त हुआ था। भारत की शोहा-जानि—शत्रियों—के मुख्य देवता भगवान् शिव और उनकी अर्द्धांगिनी भवानी अर्थात् दुग्धी ही थे। वे लोग जहाँ भी गये, अपने साथ भगवान् शिव को ले गये और उनको वहीं प्रतिष्ठित कर दिया। यही कारण है कि शिव के सभी भागों में भगवान् शिव मिलते हैं—न केवल प्रसिद्ध नगरों में, अग्नि-ईमार्ह-मत और इस्लाम के भी मुख्य आगाम्य-स्थलों में। ऐटिकल नगर के पांच के एट्टम्बन—प्रहालय में एक अति प्राचीन शिवलिंग भी भी मुश्योभित है। जब ईटम्ब-बासी हिन्दू थे, तब वे इसी शिवलिंग की पूजा करते थे। प्राचीन अरबों द्वारा जिस हिन्दू शिवलिंग की पूजा की थी, वही शिवलिंग भी भी मकबा में प्रतिष्ठित है। अपनी

वार्षिक प्राचीन हिन्दू तीर्थयात्रा के लिए एकवित होने वाले मुस्लिम व्यक्ति उसी शिवलिंग की पूजा करते हैं। भयानक यातनाओं के कारण इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए बाध्य होने से पूर्व प्राचीन अरब लोग उसी शिवलिंग की पूजा करते थे।

ऊपर दिये गये कुछ थोड़े से उदाहरणों से प्राचीन मलय-संस्कृति के विद्यार्थियों को यह तथ्य हृदयगम हो जाना चाहिये कि अनेक स्थानवाचक नाम हिन्दू, संस्कृत मूलोदगम ही हैं।

'इपोह' नाम से पुकारे जाने वाले नगर से कुछ मीलों पर गरम पानी का एक अरना है। प्राचीन संस्कृत पुण्डरीक स्तोत्र वहाँ प्राप्त हुआ था। उस स्थल पर लगे हुए स्तम्भ में संगमरमर के जड़े हुए कलक में उसी प्राचीन प्रन्थ के कुछ अवतरण खुदे हुए हैं। मैंने इसे सन् १६४४ ई० में देखा था।

मलाया के देशी राज्यों के शासक 'महाराजा' की संस्कृत उपाधि से श्री विभूषित हैं, यद्यपि वे लोग शनैः-शनैः अपने आपको मुलतानों के रूप में घोषित करने लगे हैं। स्वतः सिद्ध है कि यह बहुत बाद की अवस्था है वयोंकि जोहोर के तथाकथित मुलतान द्वारा दिए गये सन् १६४३-४५ के मध्य स्वागत-समारोह के अवसर पर मैंने अति प्रसन्नतापूर्वक 'जोहोर के महाराजा' शब्द उनके पटल-वस्त्रों पर कढ़े हुए अथवा मोहर लगे देखे थे।

मलाया में महाराजाओं के राजमहल अभी भी उनके प्राचीन संस्कृत नाम 'आस्थान' से ही जाने जाते हैं। उनके युवराज और राजकुमारियों 'पुत्र' और 'पुत्री' कहलाते हैं। संस्कृत में इन शब्दों का अर्थ 'बेटा' व 'बेटी' है। साधारण लोग भी यही सम्बोधन करते हैं। राजवंशी मलय कन्याएँ अभी भी सम्मानवर्धक 'महादेवी' सम्बोधन से पुकारी जाती हैं। इस प्रकार, किसी राजकुमारी का इस्लामी नाम फातिमा हो, तो भी उसे 'पुत्री, महादेवी फातिमा' के नाम से ही सम्बोधित किया जायेगा। इससे संस्कृत भाषा का अभी भी व्याप्त अनुलनीय प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार मलयेशियायी जीवन संस्कृत भाषा से भरा पड़ा है। इससे हमारे भारतीय विद्वानों और कूटनीतिज्ञों को मलयेशिया के साथ घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध करने और मलयेशियायी विद्वानों व वहाँ के सरकारी व्यक्तियों के साथ मिलकर पुरातत्त्वीय व ऐतिहासिक छानबीन व उत्खनन के लिए एक उत्कृष्ट सामग्री

ग्रापा होती है। उदाहरण के लिए, उनको चाहिये कि वे महान् स्फटिक जिवलिंग का पता लगाएं जहाँ 'पेतालिंग जय' के निवासी आराधना किया करते थे, और राजधानी क्वालालम्पुर का मूल संस्कृत नाम यथा था—यह भी खोज-बीन करें। यह तथ्य स्पष्टतया दर्शाता है कि करने के लिए यह भी शोज-बीन करें। यह तथ्य स्पष्टतया दर्शाता है कि करने के लिए कितना अधिक कठिन देश पड़ा है। फिर भी, हमारे दूतावास और इतिहास-लेखक अपने कल्पन्य से सर्वेषां अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। हमारे विदेश मन्दालय को चाहिये कि वे एक विशेष प्रकोष्ठ खोल लें जिसका कार्य विश्व के लगभग प्रत्येक भाग में ऐसे कार्य के महत्व की ओर अपने दूतावासों का व्यापार आकृष्ट करता हो।

जोहोर के मुख्तान की अनेक पुत्रियों में से एक का नाम 'कित्याधारी' था। यह विश्वद संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ 'अति ज्ञानवर्ती' है। सिंगापुर की एक बस्ती का नाम उसी के नाम पर रखा गया था क्योंकि ब्रिटिश लोगों द्वारा विश्व में यूनैटिव सिंगापुर जोहोर के महाराजा के आधिपत्य का भाग था।

मलय भाषा अभी भी संस्कृत शब्दों से ओत-प्रोत है। 'बुरी कामना' के द्योतक संस्कृत भाषी शब्द 'शाप' का मलय भाषा में उच्चारण 'सिरापह' है। 'सरज' कमज़ है, जैसा संस्कृत में है। 'सरीगाल' संस्कृत का 'शूगाल' अर्थात् गीढ़ है। संस्कृत का 'धी' शब्द सौन्दर्य और सम्मोहन के रूप में मलय में 'सेरी' उच्चारण किया जाता है। अतः 'सेरी नगरी' का अर्थ 'धी-नगरी' अर्थात् एक नगरी का गोरब और देखभाव है। मलय का 'सरी मुख' संस्कृत का 'धीमुख' अर्थात् जानन की आव्हा है। मलय 'संतेजा' संस्कृत का 'सन्तोष' शब्द है, जिसका मूल अर्थ सन्तोष, धैर्य, शान्ति, विश्राम और विश्रवा है।

मलय में उत्तराधिकारी युवराज का अर्थ-द्योतक 'टॉक मुकुट' शब्द संस्कृत का 'टोक-मुकुट' है। 'टोक' शिशु है और मुकुट ताज है। भाषा के लिए मलय शब्द ऐसा ही है जैसा संस्कृत में अर्थात् 'भाषा' ही है जो 'भासा' किया जाता है। संस्कृत में सावेकाल के लिए 'सन्ध्या' शब्द का मलय भाषी अवानक शब्द 'पारा' है। इसी संस्कृत व्युत्पत्ति 'सन्धिकाल' का उच्चारण

मलयवासी लोग 'सन्जाकाल' करते हैं। हिन्दी में भी संस्कृत का 'सन्ध्या' शब्द 'साँझ' में बदल जाता है।

पहाड़ी नमक के लिए संस्कृत भाषा में 'सैन्धव' शब्द है। मलय भाषा में यह शब्द अब 'ओरा' (यवक्षार) का द्योतक है। 'सेना' संस्कृत के समान ही कौज अथवा पैदल सेना का अर्थ-द्योतक करता है। 'पद्म' के द्योतक संस्कृत के 'प्लोक' शब्द को मलयवासी लोग 'सिलोक' के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उपहास अथवा व्यंगात्मक कविता के रूप में। दण्ड के लिए संस्कृत का 'शिक्षा' शब्द मलय भाषा में 'सिक्सा' उच्चारण किया जाता है। इसी में जातनाएं और कठिनाइयाँ भी निहित हैं। (एक ही गर्म के) भाईं या बहन के अर्थ-द्योतक संस्कृत शब्द 'सहोदर' को मलय भाषा में 'सीदर' उच्चारण करते हैं। शरीर पर लोमयुक्त कोमल बालों का अर्थ-द्योतक संस्कृत भाषा का 'रोम' शब्द मलय भाषा में अभी भी ज्याँ-का-त्यों प्रयोग होता है।

आकृति अथवा अन्य रूप-रंग के द्योतक 'रूप' शब्द ने अपना रूप ज्याँ-का-त्यों बनाए रखा है। इसी प्रकार रूपवान् का अर्थ मुन्दर अथवा मनोहर है। 'रंग' को सूचित करते वाले शब्द 'वर्ण' को मलय भाषा में 'रोपा' के रूप में अंगीकार किया हुआ है। संस्कृत का 'पंचवर्ण' (अर्थात् पाँच रंग वाला अथवा बहु-रंगा) शब्द मलय में 'अंचरोण' के रूप में विद्यमान है।

मलयेशिया के ग्रामीण लोग भी 'कृषि' के लिए 'रेसि' शब्द का प्रयोग करते हैं। किसी मुनि अथवा दृष्टा के लिए प्रयुक्त 'कृषि' के प्रति आज भी उसकी अत्यधिक अद्वा है। 'रत' (संस्कृत का 'रथ') साधारण रथ भी है और देवताओं का पंख-युक्त, उड़ने वाला रथ भी है। 'रस' स्वाद, सुगन्ध, चैतना, अनुभूति भी है और मूल संस्कृत के समान 'पारा' भी है।

सुन्चि शुद्ध और स्पष्ट, साफ है (सीच और स्वच्छ है) अतः, संस्कृत की ही भाँति 'महा-सुन्चि' का अर्थ 'अति शुद्ध' है। मलयेशियावासी इस शब्द का प्रयोग ईश्वर के पदनाम-हेतु करते हैं। सुआसी (स्वासी) प्रमु और रक्षक-गुरु है। सुअरा (स्वर) इवनि है, और सुअर्ग (स्वर्ग) का उच्चारण शूर्ग अथवा सौर के रूप में भी किया जाता है। भारत के ही समान 'सिंग' एक मिह—एक शेर का द्योतक है, और व्यक्तिगत नामों के साथ जोड़े जाने वाला अन्त्य प्रत्यय है। इसका संस्कृत व्युत्पन्न शब्द मिगासन (मिहासन)

सिंह के आत्म अर्थात् संस्कृत की राजगदी का द्योतक है। 'सत्य' का उच्चारण 'सेतिया' है और (मंसुकृत में सत्यवान्) 'सेतियावान्' का अर्थ सातत्य, अटूट भवित, विवितनीयता, आस्था और स्वामिनिष्ठा है। मृगसेतुवा (मृग-मत्त) संस्कृत-शब्द है, मलयवासी जिसका प्रयोग सामान्य पशुओं के लिए करते हैं। 'सेह' सभी का द्योतक संस्कृत का 'सर्व' शब्द है, और इसका प्रयोग मेह-सकलिया (सर्व-साकल्य) अथवा सेर-सेमेस्ता-सकलियान् (सर्व-समन्व-साकल्य) आदि में उपसर्ग के रूप में किया जाता है।

मनवेजिया में प्रयोग में आने वाले हिन्दू पौराणिक नामों में सेरि राम (श्री राम) और अर्जुन हैं (जिसका उच्चारण 'रंजुन' होता है)। अप्सरा, शिव, विष्णु, मन्त्री (मन्त्री—परामर्शदाता), राजा, महाराजा अपने मूल संस्कृत और उच्चारण बनाए हुए हैं। पौराणिक सर्प—राहु अभी भी मलय भाषा में विद्यमान है। राहु चन्द्र की शीर्ष-शिखा है। भारतीय पुराणों में यह के कारण प्रहृण उस समय होता है जब सूर्य या चन्द्र को वह 'यस' लेता है मलयवासी इसके बारे में अभी भी उसी प्राचीन हिन्दू पौराणिक थदा से जचाँ करते हैं।

मलयवासी व्यक्ति किसी सम्मानित ज्येष्ठ व्यक्ति को पत्र लिखते समय (अति अदेय) 'पूजी-मूर्जियान्' सम्बोधन करते हैं। संस्कृत में यही 'परम पूज्य' अथवा 'पूजनीय' है। 'पूजा' प्रार्थना अथवा शोभा का द्योतक शब्द है, मलय भाषा में ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार संस्कृत में है।

उपवास अवर्त्ति भूखा रहना मलय भाषा में 'पुबास' है। (भूमि) पृथ्वी पतंबी है, और देवी के रूप में इसे संस्कृत भाषा के समान ही 'देवी पतंबी' (देवी पृथ्वी) सम्बोधन किया जाता है। 'परणामा' पूर्ण चन्द्र (की पूर्णिमा) है और मास की द्योतक है। 'पेटेकसा' (परीक्षा) परीक्षा, जाँच, परीक्षण, पृष्ठताढ़ है। मुक्त, श्रेष्ठ, सर्वोच्च का अर्थ-द्योतक 'परदान' (प्रधान) अपना मुक्त संस्कृत शब्द ज्यों का त्यों बनाये हुए है। प्रधानमन्त्री को 'परदान मन्त्री पंडित' कहते हैं जिसका अर्थ कृषि अथवा विद्वान् व्यक्ति होता है। स्वरावि अथवा चरित्र का अर्थ-द्योतक 'प्रकृति' शब्द मलय भाषा में 'नेत्री' उच्चारण किया जाता है। 'बुद्धि-पेकर्ता' (संस्कृत का 'बुद्धि-प्रकृति') अपनी योग्यता के व्यक्ति का परिचायक शब्द है। भारत के ही

समान मुख्य या प्रधान के शोतक के रूप में 'पति' अन्त्य शब्द प्रयुक्त होता है। परिणामतः, मलयवासी व्यक्ति 'अधिपति' (सर्वोच्च स्वामी, मुक्तिया) के रूप में इस शब्द का प्रयोग करते हैं। पद अथवा श्री-पद युवराज के पावन चरणों की ओर इंगित करते हैं।

हिन्दू, संस्कृत सम्मता के बहल मलय तक ही सीमित नहीं थी। यह बोनियो, फिलिपाइन्स, कोरिया, चीन और जापान जैसे चतुर्दिक देशों में भी परिव्याप्त थी।

बहदि निकटवर्ती बोनियो के घने जंगलों की पूरी तरह खुदायी की जाये, तो वहाँ पर प्राचीन हिन्दुओं के प्रभुत्व के अनेक ऐतिहासिक स्मरण-चिह्न उपलब्ध हो जाएंगे। (बोनियो में) ब्रूनी के सुलतान की उपाधि 'सेरि भगवान्' अर्थात् श्री भगवान् (सर्वशक्तिमान् प्रभु) थी। आजकल वयोंकि वह सलतनत संस्कृत से विछुड़कर पृथक् हो गयी है, अतः उस उपाधि का गलत अर्थ 'शाही सलाहकार' लगाया जा रहा है। सन् १६७० ई० में, ब्रूनी की मुख्य बन्दरगाह का नाम सेरि भगवान् अर्थात् प्राचीन, हिन्दू संस्कृत उपाधि के नाम पर 'श्री भगवान्' रखा गया था। इस तथ्य से इतिहास-लेखकों के समक्ष स्पष्ट हो जाना चाहिये कि सुलतान के हिन्दू पूर्वजों का ज्ञान प्राप्त करना और यह पता करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि वह हिन्दू शासक वयों और कैसे इस्लाम-धर्म में धर्म-परिवर्तित हो गया था।

बोनियो का एक भाग 'सारवाक' एक विटिश व्यक्ति के सम्मुख अपनी प्रभु-सत्ता गेंदा बैठा था। फिर भी, 'सारवाक' का वह प्रवैत अंग्रेज शासक 'राजा' के नाम से ही जाना जाता था। वह 'सारवाक' नाम स्वर्य ही संस्कृत भाषा का है। अतः, भारत सरकार और उन पूर्वी क्षेत्रों में स्थित हमारे दूतावासों का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे बोनियो और सारवाक के क्षेत्रों का एक विशाल पुरातत्वीय सर्वेक्षण प्रारम्भ करें। एक ही भू-खण्ड के उन देशों में मिलने वाली वस्तुओं में धर्म-प्रन्थों, मन्दिरों, भवनों, प्रतिमाओं, चित्रों, सिक्कों और विलालेखों के होने की सम्भावनाएँ हैं। इस प्रकार, ये उपलब्धियाँ न केवल भारतीय, अपितु विश्व-इतिहास को भी समृद्ध करेंगी।

यश्य पि भौगोलिक इकाई के रूप में बोनियो एक अकेला विशाल द्वीप

है, तथापि राजनीतिक दृष्टि से यह दो भागों में विभक्त हो चुका है। ऐसे त्रियों राजा के अधीन बाला भाग 'सारवाक' साम्राज्य कहलाता था, जबकि अंगेन राजा के अधीन बाला जनि बाला शेष भाग और जो अब स्वाधीन द्वच-जात्यान के अधीन चला जनि बाला शेष भाग और जो अब स्वाधीन इण्डोनेशिया सरकार का एक भाग है—बीनियो कहलाता था। किन्तु इण्डोनेशियायी लोग अपने देश को जिस नाम से पुकारते हैं, वह प्राचीन भारतीय नाम 'कालीमन्दन' है। काली तो सुप्रसिद्ध भारतीय देवी है जिसको भारतीय जात्यान अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजते रहे हैं।

'इण्डोनेशिया' शब्द प्रायः भासक रूप में समझा जाता है, और उसकी व्याख्या भी असुख, असत्य ही की जाती है। सामान्यतः, यह अनुभव नहीं किया जाता है कि यह शब्द किसी भी प्रकार 'एशिया' का द्योतक नहीं है। 'नेशिया' तो द्वीपों के समूह का द्योतक है। इस प्रकार, 'इण्डोनेशिया' का अर्थ भारतीय द्वीप-समूह है। कहने का तात्पर्य यह है कि दस से बारह हजार प्रशान्त द्वीपों में से अधिकांश द्वीप (न केवल 'इण्डोनेशिया' नाम से पुकारी जाने वाली राजनीतिक इकाई में सम्मिलित द्वीप-समूह ही) प्राचीन भारतीय विश्व-साम्राज्य के ही भाग थे। प्राचीन भारतीय प्रशासनिक शब्दावली में उन सभी द्वीपों को 'द्वीपान्तर' ही, सामूहिक रूप से, कहा करते थे। संस्कृत भाषा में द्वीपान्तर का अर्थ 'अन्य द्वीप' भी है, किन्तु प्राचीन भारत की विश्व-प्रशान्त-सीमाओं के लिए प्रयोज्य होने पर, 'द्वीपान्तर' शब्द का अर्थ 'अमरीकी और एशियायी महाद्वीपों के मध्य स्थित द्वीप-समूह' है। यह तथ्य उस पर्यावाची शब्द से भी प्रत्यक्ष है जिसको जाग-वासी लोग इस विश्व-देश का पदनाम प्रकट करने के लिए प्रयोग करते हैं। वे इसे 'भूमान्तर' कहते हैं जो 'एक पृथक् प्रदेश' का संस्कृत-शब्द है। इसे जागा की भाषा में 'नूसान्तर' भी कहा जा सकता था क्योंकि वही 'नूसा' का अर्थ 'द्वीप' है।

विस्मरणातीत प्राचीन युगों में सम्पूर्ण पृथ्वी की गवेषणा करने वाले विश्वविद्यालय भारतीयों के निर्देशक-भूत्र थे—'चरेवेति' (चलते रहें—जगे-ही-जागे चलते रहें), 'हमन्तो विश्वमायंम्' (हम सब विश्व की गवाय, विश्व, सुसंकृत, कठुन्यनिष्ठ, ईश्वर से भय रखने वाला, शिखित

आदि-आदि—बनाए) और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारा संसार एक परिवार —एक इकाई है)।

उपर्युक्त तीन सिद्धान्तों से प्रेरित होकर जिस समय साहस्रों और परहितवादी प्राचीन भारतीय लोग प्रशान्त महासागर के विशाल विस्तार को पार करके विजित प्रदेशों की रूपरेखा तैयार करने लगे और प्रशासनिक व शैक्षिक सीमा-चौकियाँ स्थापित करने लगे, तब उन्होंने भारत से चलते हुए पूर्व और दक्षिण के विभिन्न द्वीप-खण्डों को अति मनोरम नाम दिया। आधुनिक 'जावा' नाम 'जौ' अन्न-कण की आकृति पर संस्कृत-भाषा के 'यवद्वीप' से ही व्युत्पन्न है। यह तथ्य विश्व की रूपरेखा तैयार करने और चित्रण प्रस्तुत करने में प्राचीन भारतीयों की निपुणता को पूर्ण करता है। जबतक उन्होंने किसी मानचित्र पर, चारों ओर के देशों से बिरे हुए उस सम्पूर्ण द्वीप को अंकित न किया हो, तबतक वे लोग इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते थे कि उस द्वीप की आकृति 'जौ' कण के समान थी।

भारतीय लोगों ने यव-द्वीप को हजारों-हजारों वर्ष पूर्व खोज निकाला होगा और यवद्वीप के रूप में आधुनिक जावा की रूपरेखा तैयार की होगी। इस तथ्य की प्रत्यक्ष रूप में पुष्टि इस बात से होती है कि भारत का सब-प्रथम महाकाव्य रामायण यव-द्वीप का उल्लेख करता है।

'सीलोन' शब्द मूल संस्कृत नाम 'सिहल' का व्यञ्जन शब्द है। इसी द्वीप को प्राचीन भारतीय लोग 'आमद्वीप' गर्भात् आम की आकृति वाला द्वीप बोला करते थे। यह बात इस तथ्य को भलीभांति दर्शाती है कि संस्कृत के प्रादेशिक नाम प्रायः उस भूमि की आकृति को भी प्रकट कर देते थे। प्राचीन भारतीय अन्वेषक, प्रशासक, अध्यापक आदि को, जो दूर-दूर स्थित देशों में जाया करते थे, संबद्धिक के रूप में वर्णन किया जाता था।

मलय प्रायःद्वीप का स्वयं अपना नाम भी 'मलय' संस्कृत शब्द से ही व्युत्पन्न है। इसका अन्य नाम 'बंग' था जो बंग की प्रचुरता से ही व्युत्पन्न है क्योंकि संस्कृत 'बंग' का अर्थ 'टीन' है। अन्य द्वीप 'सुमात्रा' और 'बाली' भी संस्कृत नाम हैं।

फिलिपाइन्स सहित इन सभी द्वीपों में दक्षिण भारत की भारतीय

लिपियाँ नवीं शताब्दी (ईसा) तक प्रभावी थीं। चौथी शताब्दी की भारतीय लिपि में संस्कृत भाषा में लिखित, ऐसा ही एक शिलालेख चार अष्टकों कोशालम् प्रस्तर-स्तम्भों पर कालीमन्त्रन क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व में स्थित कोहि-ग्रदेश (आधुनिक बोनियो) में मिला था।

उस जिलालेख में हिन्दू सम्भाद् मूलवर्मन द्वारा सम्पन्न किये गये एक महान् अश्वमेघ-यज्ञ का वर्णन है, जिसमें उस सम्भाद् ने २०,००० गों आद्याणों को दान की थी। संयोगवश, इससे यह भी सिद्ध होता है कि अद्वितीय हिन्दू सरकार ने बोनियों और अन्य प्रशान्त सामर के प्रदेशों में समृद्ध, विकसित गो-गालाएँ—गो-संबंधन मृह भी प्रस्थापित किये थे। नागरिकों की निःशुल्क, सामुदायिक महत्वपूर्ण सेवा करने के लिए इस प्रशान्त के दानों से नियमी हिन्दू आद्याणों का पुरोहित-बर्ग पाठशालाएँ अधिष्ठात्राय, चिकित्सालय, प्रशासनिक कर्मचारी विद्यालय आदि का भली-भांति संचालन कर पाता था। अश्वमेघ-यज्ञ करना हिन्दू प्रभुसत्ता का प्रतीक था। सम्पूर्ण प्रशान्त प्रदेश जिस विशाल हिन्दू साम्राज्य में सम्मिलित था, उसका नाम जैलेन्ड साम्राज्य था। उन क्षेत्रों के निवासी पन्द्रहवीं शताब्दी तक हिन्दू ही थे। उसके बाद बर्बर अरब लोगों ने उनको मुस्लिम धर्म अर्थात् करने पर बाध्य कर दिया।

उन अंतिमों की हिन्दू संस्कृति का वर्णन करते हुए, भारत विद्या की महान् विस्मृति स्वर्गीय डॉक्टर रघुवीर ने लिखा था कि इण्डोनेशियायी लोग, विशेष रूप में गुमावा, जावा और बाली के निवासी शिव, विष्णु, तारा, बुद्ध और बोधिसत्त्व का अनुसरण करते हुए, अच्छे हिन्दू बने रहे। ये द्वीप द्विनियों से ऊँचाये भरे पड़े हैं। उनकी सम्मता अद्वितीय, अनुपम है। जावा के बजाय ग्यान, केलो और नारियलों से घिरी पहाड़ी के ऊपर स्थित बन्दिर अनुपम, एकनेत्र है। प्रत्येक ऊँचाया ऊपरी आध्यात्मिक सीढ़ी का नीन बीमा है। उनके बलाकार अवश्य ही भारत के महानतम् मूर्तिकारों द्वारा प्रशिलित किये गये होंगे। उनकी मुख्याकृतियाँ भारतीय हैं, उनकी बंग-सूरा भी भारतीय है, और उनकी कथाएँ जातकों में से हैं। राजा शिवि-

का चरित्र इतनी मामिकता से चिह्नित किया गया है कि वैसा दृश्य भारत में भी विरला ही है, लगभग अप्राप्य है। उस दृश्य में राजा जिवि को अपना ही शरीर-मांस काटकर तराजू में तौसते हुए दिखाया गया है, जिसमें वे यत्न कर रहे हैं कि दूसरे पलड़े में वैठे हुए बाज़ के बराबर उनका माम हो सके। भारतीय साहसिक यात्राओं के सही चिक्रण की पुनरुचना हेतु भारतीय व्यापारिक जहाज के दृश्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके आले और आंकियाँ, जो बीते हुए युग के कला-कौशल की अद्भुत, अनुपम अमूल्य निधियाँ हैं, भावी पीढ़ियों द्वारा सदा सराहना की पात्र रहेंगी और उनको सदा प्रेरणा भी प्रदान करती रहेंगी।

डॉक्टर रघुवीर लिखते हैं—“प्रामवनन-संकुल बोरो-बु-कुर से बहुत दूरी पर स्थित नहीं है। इसके जैसा कोई अन्य स्मारक न तो भारत को ज्ञात है, और न ही (विश्व के) अन्य किसी निकटवर्ती अथवा दूरस्थ देश को...। रामायण के समानान्तर ही, कृष्णायन के नाम से विद्याल, भगवान् कृष्ण की जीवन-लीलाएँ यहाँ चिह्नित हैं—दैवी बालक कृष्ण के अद्वितीय, अनुलब्ध चलशाली हाथों से शक्तिशाली दैत्य के टूकड़े-टूकड़े करके दिखाये गये हैं। एक अन्य स्थान पर, कुम्भकर्ण को निद्रा से जागृत करने के लिए अंखों की विशाल ध्वनियाँ और हाथियों की चिंचाहँ चिह्नित की गयी हैं, जो स्वयं में उत्कृष्ट ध्वनी की कला-कृतियाँ हैं।”

“प्रामवनन में विसूति को समर्पित मन्दिरों की मुख्य द्वयी चार बृहत्ताकार पंक्तियों में बने छोटे-छोटे देवस्थानों से, मूलरूप में, घिरी हुई थी। अधर्मनिष्ठों द्वारा विघ्नास के साथ-साथ (अर्थात् बर्बर अरबों द्वारा सर्वनाश होने के साथ-साथ) समय ने भी कम विनाश नहीं किया है। देवालयों की चौथी पंक्ति का समूल नाश इन्हीं के कारण हुआ है। अब जो कुछ बच पाया है, वह आयताकार पत्थरों के खण्ड-ही-खण्ड है...।” हिन्दू-धर्म ने विदेशी बर्बर आक्रमणकारियों के सम्मुख १३वीं शताब्दी से परास्त होना प्रारम्भ कर दिया था। पन्द्रहवीं शती समाप्त होते-होते, अरबों द्वारा भयंकर यातनाओं के शिकार होने पर, पुरुषों की हत्याएँ, महिलाओं के शोल-भंग और घर लूट जाने पर, डर जाने के कारण अधिकांश निवासी इस्लाम-धर्म स्वीकर करने पर बाध्य हो गये थे।

हृषि के अन्तिम हिन्दू युधराज बाली चले आये। सौभाग्यवश, बाली इत्तमाम के स्पर्जन से पूर्थक् रहे पाया, और भारत से बाहर एकमेव बाली हिन्दू-प्रदेश के रूप में आज भी जीवित है।

प्राचीन जावायी गीतों का सम्बन्ध भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत के कथानकों से है। जावा में छाया-नाटक भी भारतीय पौराणिक कथाओं और महाकाव्य की गाथाओं के राम और कृष्ण, अर्जुन-भीम और द्वितीय चंद्र पात्रों के इदं-गिरं ही रचे जाते हैं। इण्डोनेशिया का (राष्ट्रीय) द्वितीय दो रंग बाला होने के कारण 'द्वि-वर्ण' कहलाता है, जो संस्कृत नाम है। इण्डोनेशियायी संविधान के पाँच आधारमूल, मूल सिद्धान्त भी संस्कृत के 'पञ्चोल' शब्द से ही नामांकित हैं। यहाँ की बायु-सेवा (हवाई कम्पनी) का नाम 'गरुड़' है जो भगवान् विष्णु का बाहन है। पुरानी जावायी भाषा के बारे दक्षिण-भारत की पल्लव-लिपि से व्युत्पन्न हैं। इण्डोनेशियायी लोग जब्ती भी हिन्दू-वर्ण सानते हैं और इसे शक-सम्बन्ध कहते हैं।

हिन्दू राग-रागिनियों, पूजा-अचंना, धार्मिक कृत्यों, इतिहास, खगोल-ज्ञान, ज्योतिष-ज्ञान, जादू-टोना, प्रेम-आङ्गान, प्राणियों का पूर्व-रूप से विकास-क्रम और पौराणिकता के सम्बन्ध में प्राचीन इण्डोनेशियायी पाठ-सामग्री हजार वर्षों से अधिक की संख्या में विद्यमान है—ऐसा विश्वास किया जाता है। जिन प्राचीन, हिन्दू राजाओं के राज्यकाल में उपर्युक्त विभिन्न विद्याओं का प्रचार-प्रसार समस्त प्रशान्त-क्षेत्र में हुआ उनके नाम और उपाधियाँ कुछ इस प्रकार थे—श्री ईयान् विक्रम धर्मोत्तुम देव, श्री लोकेश्वर धर्मवंश ऐर-लंग बनन्त विकमो-तुंगदेव।

भारत से मलयेशिया, इण्डोनेशिया, बोनियो, कोरिया, इण्डोचीन और किलिंबाइन्स व पूर्व में जापान, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड और पश्चिम में गोकिंगों तक केने समस्त प्रशान्त-क्षेत्र में केवल हिन्दू जीवन-पद्धति ही व्याप्ती थी। आधुनिक गल्लावली में कहा जाय, तो हिन्दू धर्म ही एकमात्र रूप से जो उन द्वयों के नियासियों को जात था। संक्षेप में कहा जाय तो कह जाते हैं कि प्राचीन युगों में समस्त विश्व का एक ही धर्म था—और वह हिन्दू धर्म था। विश्व-भर में इसका प्रचार-प्रसार प्राचीन हिन्दुओं की अप्रगति और परहितवादी भावना का प्रमाण है। विश्व-

इतिहास का यह अद्वितीय चमत्कार इस बात का भी साक्ष्य है कि प्राचीन भारतीयों ने न केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही, अपितु दूर-संचार व्यवस्था से लेकर निर्माण-तकनीक तक की जीवन की प्रत्येक विधा में महान् भौतिक प्रगति भी कर रखी थी।

अतः विदेश-विभाग मन्त्रालय को चाहिये कि वे भारतीय द्रूतावासों पर इस बात का जोर डालें कि वे लोग मात्र नाच-गानों, खाने-पीने में ही मस्त न रहें। अनेक प्रमुख कर्तव्यों में से एक कर्तव्य यह होना चाहिये कि वे जिस-जिस देश में भी रहें, उस देश की पूर्ण परिकसा, खोज-बीन करें और भारतीय पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों को सुनिश्चित करें, उनकी पुरातत्त्वीय खुदाई कराएं और उन स्थलों तथा वहाँ प्राप्त हुए स्मृति-चिह्नों को सुरक्षित रखवाएं, और आतिथेयी सरकारों की सहायता से विशेषज्ञों द्वारा उन वस्तुओं का वर्गीकरण कराएं। उनको आतिथेयी सरकारों की सहायता इस दृष्टि से भी करनी चाहिये कि वे अपनी भाषा, रीति-रिवाजों, नामों और उपाधियों में प्राप्त हिन्दू, संस्कृत सम्पर्क-सूक्ष्मों को पुनरुज्जीवित कर सकें जिससे प्राचीन विश्व के एक सामान्य, हिन्दू, संस्कृत सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर विश्व में एक सांस्कृतिक एकीकरण सम्पन्न हो सके, सांस्कृतिक एकता पुनः स्थापित हो सके।

: २१ :

प्राचीन इंग्लैंड हिन्दू-देश था

काल के अनन्त प्रबाह में प्राचीन इतिहास उसी प्रकार भूलता जाता है जिस प्रकार प्रत्येक पीढ़ी अपने ऊपर की एक-दो पीढ़ियों को छोड़कर अन्य सभी पूर्वजों को अपनी स्मृति से ओङ्कल कर देती है। अतः, चिरकाल पूर्व के एक हिन्दू साम्राज्य की स्मृति को भी विश्व ने भूला दिया है, तो इसमें कोई बावश्यक बात नहीं है।

विटिश और अन्य ईसाई व इस्लामी राष्ट्रों के अभी कुछ समय पूर्व के उपनिवेशवादी साम्राज्य की अचूकिकर स्मृतियों के कारण सम्भव है कि यह साम्बन्ध, कि इंग्लैंड किसी समय भारत का एक उपनिवेश था, विटिश लोगों में विरोध, विद्वेष की भावना को उत्पन्न कर दे और भारतीय लोगों में दोषी या माचक होने की हीन भावना को जन्म दे दे।

भारतीय शिक्षक और अध्यापक प्रशासक भारत से सम्पूर्ण विश्व के गोलाठंड के विभिन्न भागों में उस समय अति द्रुत गति से गए थे और सभी स्थानों पर फैल गये थे जब विश्व उन एककी आदिम समुदायों से जन-पृथिव्य की मांगदंडन के लिए अन्धकार में भटक रहे थे। यह स्थिति ऐसी थी जो नौरोजीय प्रवासी जंगलों अमरीकी प्रायः द्वीप में जा रहे हों अथवा गोपन लोग बसते, अग्निष्ठ इंस्टेंड में पदार्पण कर रहे हों।

विश्व पर भारतीय जागनाधिकार की अन्य आह्वादकारी बात यह थी कि भारतीय लोगों ने स्वयं को अन्य लोगों से अछूता रखने अथवा तत्स्थानीय लोगों को डिलीर, खटिया थेयों का नागरिक समझने के स्थान पर उन स्थानों के निवासियों के साथ स्वयं को आत्मसात कर दिया वे जहाँ थीं वहाँ थए। इन सभ्य की पुष्टि स्थाप, हण्डोचीनी-राज्यों और इण्डो-नेपाल पर इस्टिपात करके जो जा सकती है। वे सब भारत के उपनिवेश

थे, वे सब हिन्दूधर्म की उद्धोषणा करते थे और भारतीय साम्राज्यों के पोषक-तत्त्व थे तथापि उनकी जनसंख्या में से कोई भी व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि उनमें से कौन-सा व्यक्ति भारतीय रक्त का है और कौन-सा व्यक्ति तत्स्थानीय-बंश का ही है।

प्राचीन भारतीय साम्राज्य का एक अन्य विशिष्ट, प्रथक् लक्षण यह था कि वह साम्राज्य सांस्कृतिक और शैक्षिक ही था, राजनीतिक नहीं। विजित अथवा अपने अधिकार में लिये गए प्रदेश भारत के लाभार्थ लूट-बसोट नहीं गए थे, अपितु उनका प्रशासन तत्स्थानीय लोगों के हित के लिए वहीं के लोगों द्वारा कराया गया था।

प्राचीन (भारतीय) हिन्दू विश्व-साम्राज्य का एक अन्य विशिष्ट गुण यह था कि इसने एक पुष्ट और प्रगतिशील शासन की रचना की थी। वे हिन्दू लोग अपने साथ विश्व भ्रातृत्व की दार्शनिकता ले गये। हिन्दुओं ने विश्व के ऊपर कोई मोहम्मद अथवा ईसा नहीं थोपा था। उन्होंने अन्य लोगों के मकानों, भवनों आदि को भी नहीं जलाया था। तथ्य तो यह है कि जब हिन्दू लोग समस्त प्राचीन विश्व में फैले, तब निर्माणकला का किसी को ज्ञान ही नहीं था, और ये तो हिन्दू लोग ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम विश्वाल उत्तम भवन, किलों और मन्दिरों का निर्माण किया। उन भवनों का निर्माण हिन्दू शिल्प-जास्त्र के अनुसार अर्थात् भारत में हिन्दुओं द्वारा विकसित वास्तु-कला की प्रणाली के अनुसार ही किया गया था। हिन्दू लोगों ने ही अरबों, तुकों, ईरानियों, मंगोलों तथा अन्य समुदायों की शिक्षित किया था कि बड़े-बड़े भवन विस प्रकार बनाए जाते हैं। इसी तथ्य से भारत और पश्चिमी एशिया में बने हुए ऐतिहासिक भवनों के मध्य सादृश्य का कारण भी स्पष्ट हो जाता है।

संस्कृत भाषा और प्राचीन हिन्दू सभ्यता व संस्कृति के लिए सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान विशुद्ध कृतज्ञता, सम्मान और प्रेम की भावनाओं से यह भी सिद्ध हो जाता है कि हिन्दुओं की कोई विरोधी, विनाशी, कृतित भावनाएं नहीं थीं।

अतः हम जब यह कहते हैं कि प्राचीन इंग्लैंड और विटिश द्वीपों पर किसी समय भारतीयों का शासन था, तो उस बात से रुष्ट होने का कोई कारण नहीं है।

सर्वप्रथम, हमें यही कहना है कि स्वयं 'इंग्लैंड' शब्द भी संस्कृत के युगम शब्द 'आंग्ल-स्थान' का अपभ्रंश रूप है। गतान्निदिवाँ व्यतीत होते-होते संस्कृत का 'स्थान' शब्द 'लैंड' में परिवर्तित हो गया है।

कहीं यह ऊट-यटांग कल्पना समझ ली जाय, इसलिए हम स्पष्टीकरण, व्याख्या करना चाहते हैं। 'लैंप-स्टैंड' में अथवा विदेश नीतिविषयक किसी मामले पर जब कोई राष्ट्र 'स्टैंड' लेता है, उस 'स्टैंड' शब्द को हम कहते हैं कि वह संस्कृत का 'स्थान' है। इसी प्रकार, यह भी ध्यान रखने की बात है कि संस्कृत की चिकित्सा-शास्त्रविषयक शब्दावली 'ग्रन्थि' की अंग्रेजी भाषागत वर्तनी 'लैंड' है। ये उदाहरण प्रकट करते हैं कि अंग्रेजी का 'स्टैंड' शब्द संस्कृत का 'स्थान' शब्द ही है। अतः, प्राचीन इंग्लैंड के लिए प्रयुक्त संस्कृत का 'आंग्ल-स्थान' 'इंग्लैंड' हो गया है। जहाँ तक 'आंग्ल' उपसर्ग की बात है, पाठ्कगण यह तथ्य ध्यान में रख लें कि फ्रांस वाले अंग्रेज लोगों को अभी भी उनके प्राचीन संस्कृत नाम 'आंग्लाइंस' से ही पुकारते हैं, जिसका उच्चारण वे लोग 'आंग्ले' करते हैं। अंग्रेज लोगों का मूल नाम 'आंग्ल' संस्कृत शब्द से ही था—इसका अन्य संकेत 'आंग्लस' और 'आंग्लो' ('एंग्लन्स') भी मिलता है। इस तथ्य से किसी भी व्यक्ति के मन में सन्देह नहीं रहना चाहिये कि 'इंग्लैंड' शब्द संस्कृत का वही 'आंग्ल-स्थान' शब्द है, गतान्निदिवाँ बीतते-बीतते जिसका उच्चारण आहिस्ता-आहिस्ता बदलता गया। इससे यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि अपने देश का नाम सम्बोधन करने में जर्मन लोग जिस 'देत्यस्त-लैंड' शब्द का उच्चारण करते हैं, वह 'देत्यों की भूमि' वर्णत् 'देत्य-स्थान' ही है, अन्य कुछ नहीं। और, यह तो बत्तेवार ही है कि देत्य प्राचीन हिन्दू धर्मग्रन्थों में बारम्बार उल्लेख किया गया अस्तित्व है। इस देत्य समुदाय का नाम भारतीय देवी 'दिति' के नाम से व्युत्पन्न है जो उनकी माता भी। इस 'दिति' शब्द से ही अंग्रेजी का 'डीति' ('देवी'). अब इत्या गया है। अतः, जहाँ कहीं 'लैंड' शब्द प्रयुक्त मिले, उसे उन्हें यह लगाना चाहिये कि यह संस्कृत का स्थान शब्द है।

यह तो अभी कुछ पहले का ही इतिहास है कि लगभग १५० वर्षों तक भारत इंटेन का एक उपनिवेश था। जब भारत चिटिश आधिपत्य के अधीन हो गया, तब इतिहास ने एक और पूरी परिकल्पना कर ली थी क्योंकि चिट-

विस्मरणीय अतीत में इंग्लैंड भी भारत का एक उपनिवेश रहा था। उस समय भारत का साम्राज्य दूर-दूर तक फैला हुआ था।

भारत के विलुप्त और विस्मृत साम्राज्य की कथा भी उसी विधि से पुनः रची जा सकती है जिस विधि से परीक्षा-भवन में बैठे छात्र अधूरे वाक्यों में हीक शब्दों को भरकर वाक्यों को पूरा कर लेते हैं। विलुप्त इतिहास का पुनर्जनन भी सूत्रों की टूटी शृंखला में विलुप्त सूत्र प्रदान करके किया जा सकता है।

भारत के प्राचीन साम्राज्य के चिह्नों को आंशिक रूप में जानबूझकर विनष्ट किया गया था और आंशिक रूप में अज्ञानवश दो साम्राज्यवादी विजयों की अनुबर्ती लहरों के कारण ये अवशिष्ट चिह्न समाप्त-प्रायः हो गये। ये लहरें ईसाइयों और विद्वसंक अरबों व उनके अधीनस्थ साथियों की थीं।

आइए, हम सब सर्वप्रथम इंग्लैंड की कुछ वस्तियों के नाम लें। इंग्लैंड में अन्य 'बुरी' शब्द सामान्य हैं श्रीयूसबुरी, आइसबुरी और बाटबुरी। यह 'बुरी' प्रत्यय संस्कृत का 'पुरी' ही है; यथा सुदामापुरी, मुम्बापुरी और जगन्नाथपुरी में। यह कोई अति दूरस्थ कल्पना न होने का प्रमाण स्याम देश के अनेक नगरों के नाम है; यथा राजबुरी, चोलबुरी और फेबुरी। अब यह भलीभांति ज्ञात है कि स्याम देश प्राचीन हिन्दू साम्राज्य का एक भाग था और स्यामी भाषा अपभ्रंश संस्कृत है। इस तथ्य से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि विश्व में प्राप्त किसी भी वस्ती अथवा नगरी का द्योतक अन्य 'बुरी' शब्द स्वयं सिद्ध करता है कि वह नाम प्राचीन संस्कृत-भाषी हिन्दुओं द्वारा उस समय दिया गया था जब उन लोगों ने उन भेवों पर शासन किया था। यह कोई आश्चर्य नहीं है कि सुदूरस्थ इंग्लैंड पर भारत के प्रभुत्व के सभी प्रत्यक्ष रूप में ऐतिहासिक चिह्न सूत्र नष्ट हो जाने के बाद भी इंग्लैंड की कुछ वस्तियाँ संस्कृत अन्य नाम अभी भी अपने साथ मौजोए हुए हैं। जहाँ तक इस प्रमाण के सम्बन्ध में यह सिद्ध करने का शब्द है कि हमारा यह आधार अति सुदृढ़ है, हम अंग्रेजी नामों को अपने हृत्य से समेटे रहने वाले भारत का समानान्तर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जहाँ नागालैंड, कनाट प्लेस और किस सकंल जैसे अंग्रेजी नाम अभी भी

प्रचलित है यद्यपि भारत में ब्रिटिश राज्य-शासन की समाप्ति हुए तीन दशकों से भी अधिक अवधि बीत चुकी है।

हम अब एक अन्य प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। आइए, हम पंचांग के अद्वंरात्रि के समय तारीख बदलने का ब्रिटिश नियम लें। हम जब इस द्वयात्रि पर विचार करने लगते हैं, तो स्पष्ट दिखाई देता है कि यह तो नितान्त बहुदगी ही है कि मात्र समय अर्थात् तारीख बदलने के लिए ही कोई व्यक्ति रात्रि में ठीक बारह बजे ही अपनी प्रगाढ़ निद्रा में व्यवहार उत्पन्न करें। इस ऊट-पटांग कार्य को सारे जीवन कीन व्यक्ति करेगा? साथ ही, गहन रात्रि में जब सभी लोग घोड़े बेचकर सोते हैं और सब ओर घोर झन्घकार तथा मन्नाटा होता है, तब किसी व्यक्ति को यह कैसे आधास होता है कि इस समय रात्रि के साथे घ्यारह बजे होंगे अथवा डेढ़। अद्वंरात्रि की विकट छह्मी में तारीख-परिवर्तन करने की इस ब्रिटिश-पढ़ति की अनुत्तरि इस समय से है जब इंग्लैंड भारत का एक उपनिवेश था। आइए, हम इस उपांट करें।

भारतीय तीम दिन का आकलन सूर्योदय से सूर्यास्त तक करते हैं। भारत में, भारतीय समय के अनुसार, सूर्य का उदय प्रातः लगभग साढ़े चाँच बजे होता है। भारतीय और श्रीनिवाच माध्यमिक समय के बीच चूंकि साढ़े चाँच घटि का अंतर होता है, इसलिए इंग्लैंड में उस समय रात्रि के १३:०० बजे होने वाले भारत में सूर्योदय होता है। इसलिए, जब बीते हुए सुग में भारत इंग्लैंड पर शासन करता था, तब भारत से समस्त विश्व को यह संकेत देखिया जाता था कि सूर्योदय के समय भारत अपनी तिथि में परिवर्तन कर रहा था। उस संकेत को मुनने पर, प्राचीन इंग्लैंड के नियाचियों को भी अपने-अपने विस्तरों से जटपट निकलना पड़ता था और तारीख बदलनी पड़ती थी। उस समय, अति दूर तक विस्तृत उस विश्व भारतीय नामांग्य के इंग्लैंड नामक कोने में अद्वंरात्रि होती थी। इतिहास ने पूरी परिकल्पना कर ली है। इसलिए, भारत ने भी अद्वंरात्रि के समय तारीख बदलने की निषिद्धि दी गई थी अद्याध्युन्द्य और अज्ञान-बज अंगीकार कर दिया है। वह इतिहास की विचिक्षा विद्यमान है। भारत ने विश्व के निए विश्व समय का निर्धारण किया था, वही समय परिवर्तित, विद्वित होकर

भारत को ही अंगीकार करता पढ़ रहा है। हम आशा करते हैं कि स्वतन्त्र भारत दिन और तारीख का प्रारम्भ करने के लिए सूर्योदय से ही समस्त आकलन करने की अवृत्ति प्राचीन भारतीय पढ़ति को पुनः शिरोधार्य कर देगा, उसी का व्यवहार प्रारम्भ कर देगा।

अपने समकालीन अनुभव से भी सिद्ध किया जा सकता है कि उपनिवेश अपने स्वामी देश के अनुकूल ही समय का आकलन करते हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय विश्वाल, अधीनस्थ प्रशान्त क्षेत्रों के प्रशासन पर प्रमाणी जापानी अधिकारीयण अपनी घड़ियाँ टोक्यो-समय के अनुसार ही रखते थे। जबतक उन क्षेत्रों पर जापानी प्रभुत्व रहा, तबतक टोक्यो समय के मन्दभूमि में ही सभी समय-तारिखियों का उल्लेख किया जाता था। इसी प्रकार जब भारतीय प्रशासक इंग्लैंड पर शासन करते थे, तब वहाँ की सभी घड़ियाँ भारत के सूर्योदय के अनुसार ही मिली रहती थीं। यहाँ 'घड़ियों' से तात्पर्य समय-मापन का यन्त्र है जो उस समय-प्रयोग में रहा होगा। भारतीय लोगों द्वारा क्षण-प्रतिक्रिया का भी हिसाब-किताब रखना उनकी पल-प्रतिपल की अतिसूक्ष्म नाक्षत्रिक-विद्या सम्बन्धी निपुणता से स्वयं सिद्ध है।

किसी समय इंग्लैंड पर भारत का शासन होने का एक अन्य प्रमाण इस तथ्य में उपलब्ध है कि सन् १७५२ ई० तक इंग्लैंड का नव-वर्ष २५ मार्च को ही प्रारम्भ होता था। वर्ष का यथार्थ समय वही है जब भारतीय नूतन वर्ष प्रारम्भ होता है। सन् १७५२ ई० में संसद के एक कानून द्वारा इंग्लैंड ने अपनी इच्छा से ही अपना नव-वर्ष दिवस पहली जनवरी घोषित कर दिया। चूंकि २५ मार्च के दिन ही भारतीय विक्रम-संवत् प्रारम्भ होता है, इसलिए अनुमान है कि इंग्लैंड विक्रमादित्य के भारतीय साम्राज्य का एक भाग था। विक्रमादित्य भारतीय कथाओं में व्याप्त है। उसे महान् सम्राट के रूप में स्मरण किया जाता है। शासकों को महान् तभी समझा जाता है जब वे बड़े-बड़े साम्राज्यों पर नियन्त्रण रखते हैं। अतः, विक्रमादित्य को सत्य और न्याय के गुणों के लिए स्मरण रखना तो ठीक ही है, किन्तु उसको इसलिए भी चिर-स्मरण रखना चाहिये कि उसने विश्व के

दूर-दूर तक स्थित भागों में भी अपना प्रशुद्ध प्रशासन प्रदान किया था—
ऐसा प्रतीत होता है। उन स्थानों में इन्हें भी एक भाग था।

इसलिए द्वारा माचे को बर्ये का प्रथम मास माना जाना (एक्स-मास) 'X-मास' शब्द द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है। यह 'X-मास' शब्द तथ्य में १०वें मास का ही अर्थयोतक है बर्योंकि रोमन लिपि में १० को 'X'
लिखते हैं और संस्कृत में 'मास' का अर्थ महीना है। इस प्रकार 'X-मास'
शब्दावली रोमन शब्द 'X' और महीने के द्वातक संस्कृत शब्द 'मास' का एक
विचित्र संयोग मात्र ही नहीं है, अपितु दिसम्बर महीने की समाप्ति के आस-
पास मनाई जाने वाली कृष्णियों के सप्ताह के लिए अशुद्ध अर्थवोधक शब्द भी
है। एक 'महीने' को एक सप्ताह के समानक बनाना अंग्रेजी भाषा और
परम्परा का धोर दोष है क्योंकि अंग्रेजी भाषा अपना संस्कृत-आधार को
चुनौती है।

इस बात को इस तथ्य से भी सिद्ध किया जा सकता है कि 'दिसम्बर'
मह्य म्ब्य ही संस्कृत शब्द है और वास्तव में इसका अर्थ 'दशावाँ' महीना
होता है। कारण यह है कि संस्कृत में दश (जिसका अपन्ना अंग्रेजी 'डिस्ट'
है) का अर्थ अंक '१०' के लिए ही है। इसका एक अन्य प्रमाण 'डेसिमल'
(दशमलव) शब्दावली है जो १०वें स्थान के लिए भारतीयों द्वारा
भाविष्यक गणितीय विन्दु-चिह्न है। वही भी 'डेसि' का अर्थ '१०' ही है।
रोमन में लिखने पर यह 'X' ही होगा। (डिस+एम्बर) में (अम्बर)
'एम्बर' उपर्यां संस्कृत आवाश-चक्र का द्वातक है। चूंकि आकाशमण्डल के
१२ चिह्न (भाग) हैं, इसलिए प्राचीन संस्कृत परम्परा ने एक आकाशीय-
भाग के लिए मास निश्चित कर दिया जो माचे से प्रारम्भ होता था। तड़-
नुकार, दिसम्बर भाग बर्ये का १०वीं महीना हो गया जैसाकि इसके नाम
'दिसम्बर' (डिसेम्बर) बर्यात् दश + अम्बर से स्पष्ट होता है। यही १०-
वीं महीना जब दो रोमन शब्द के साथ संस्कृत में लिखे तो यह 'X' अर्थात्
१०वीं मास (महीने का संस्कृत शब्द) हो जाता है। इससे अंग्रेजी परम्परा
ने जानकारी का समझ यह तथ्य स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वे 'X-मास'
अवश्य १०वे महीने की दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह के समानक रूप
में प्रस्तुत करके धोर घटकर भूल कर रहे हैं। इसलिए 'X-मास' और

'दिसम्बर' संस्कृत शब्दावलियों, जो हिन्दूवर्य के १०वें महीने की समान रूप
में पर्यायवाची हैं, अभी भी अंग्रेजी में और अंग्रेजी परम्परा में प्रयुक्त होती
है। उनका इस प्रकार प्रयुक्त होना सिद्ध करता है कि प्राचीन इन्हें किसी
मम्य भारत का एक उपनिवेश था।

तथ्य १०वें महीने का समारोह अर्थात् X-मास के उत्सव भी, इन्हें
ईसाई-पर्व समझने की गलती करते हैं, एक अति प्राचीन हिन्दू कृष्णयान
समारोह है जो उस दिन की स्मृति का प्रतीक है जिस दिन हिन्दुओं के
अवतार भगवान् कृष्ण ने (जिनके नाम की अशुद्ध वर्तनी कृष्ण अर्थात् किस्त
—काइस्ट हुई) कुरुक्षेत्र में रथारूप होकर अपने योद्धा-भक्त अर्जुन की गीता
का महोपदेश दिया था। कृष्ण का आरूप्यासन रथ था जिसे संस्कृत में
'यान' कहते हैं। इससे हमें 'कृष्णयान' शब्द प्राप्त होता है जो शताव्दियों
के कालान्तर से कृष्ण-यान अर्थात् क्रिश्चियन की अशुद्ध वर्तनी में परिवर्तित
हो गया। दिसम्बर का ही महीना या जब भगवान् कृष्ण ने महाभारत-युद्ध
के प्रारम्भ होने पर अपना चिर-स्मरणीय महोपदेश दिया था। अतः, 'कृष्ण-
यान' का अर्थ कृष्ण का रथ है।

सभी तथाकथित ईसाइयों द्वारा मान्य यह एक ऐतिहासिक तथ्य है
कि किसमस (कृप्तमास) एक पानोत्सव है जिसकी ईसा-पूर्व काल की
परम्परा है। भगवान् कृष्ण के उस सुप्रसिद्ध उपदेश को भव्य परम्परा मान-
कर समस्त विश्व में उस समय प्रचारित किया गया था जब महाभारत के
युद्ध के बाद कुरुवंश के सभी एकत्रित शासक और सदस्य अपने-अपने राज्य-
शेषों को वापस लौट गए थे। उन लोगों ने उस महायुद्ध और भगवान् कृष्ण
के उस महोपदेश की पृथ्य-स्मृति को समूह-गान और समूह-नृत्यों के आनन्द-
मय समारोहों द्वारा चिर-स्मरणीय बनाए रखा। सभी ईसाइयों द्वारा
शिरोधायं एक अन्य ऐतिहासिक तथ्य यह है कि काइस्ट की जन्म-तिथि
किसी को भी ज्ञात नहीं है। इस प्रकार, वास्तविक तिथि के अभाव में ही
एक काल्पनिक, अनुमानित तारीख जन्म-तिथि मान ली गई है जो २५
दिसम्बर है। अतः न तो २५ दिसम्बर का और न ही किसमस रंग-रलियों
का कोई आधार है। किन्तु इन दोनों का एक हिन्दू कृष्णयान आधार है
अर्थात् जिस दिन भगवान् कृष्ण ने अपना सुप्रसिद्ध महोपदेश दिया था, वह

२५. मात्र का दिन ही था। जैकि गीता का वह महोपदेश शादिक रूप में थी तो ही है, इसलिए उसकी पूर्ण-भूमिति भी तथाकथित छिपचन (कृष्णायान) सामृहिक नाम द्वारा ही की जाती है।

हम, चिरिष्वचन लोगों का कृष्णवान लोग अर्थात् कृष्ण-सम्प्रदाय के प्राचीन युगोंमें हिन्दू होने के इस विषय पर सविस्तार अन्यत्र चर्चा करेंगे, तथापि यही वह इतना उल्लेख लेवा करेंगे कि इंग्लैंड की गलियों-वाजारों में मूँजने वाली 'हरे कृष्ण' गीत की मधुर झंकार इस बात की परिचायक है कि इतिहास पुनः एक परिवर्तन कर रहा है।

फ्रान्सीसी लोग नभी प्रवार की अंग्रेजी वस्तुओं के लिए प्राचीन संस्कृत नाम का ही उपयोग करते हैं। फ्रान्सीसी शब्द 'आंग्लाइस' जिसका उच्चारण 'आंग्ल' होता है, प्राचीन संस्कृत शब्द 'आंग्ल' का अपभ्रंश रूप ही है। इंग्लैंड प्राचीन भारतीय शासकों को 'आंग्ल-देश' अर्थात् इंग्लिश-लैंड अर्थात् इंग्लैंड के रूप में ही जाता था। ऐंग्लिकन, ऐंग्लिसाइज्ड जैसे शब्द उसी प्राचीन संस्कृत शब्द 'आंग्ल' से आते हैं। इंग्लैंड किसी समय भारतीय मालाय्ये का एक भाग था—वह उसका अन्य एक प्रमाण है।

हम इसी प्रकार वह भी इंगित कर सकते हैं कि अंग्रेज पुरुष और महिलाएँ दिन समाट की अंग्रेजी भाषा (किम्ब इंग्लिश) का प्रयोग करते हैं, वह लोग हिन्दू समाट की संस्कृत भाषा ही है। कुछ उदाहरण ये हैं: अंग्रेजी 'कौ' शब्द संस्कृत की 'गौ' है; 'स्वेट' संस्कृत का 'स्वेद' है; 'अपर' संस्कृत का 'अपर' है; 'मैन' संस्कृत का 'मानव' है; 'माउस' संस्कृत का 'मूषक' है; 'पू' और 'बी' संस्कृत 'पूयम्' और 'वयम्' हैं। किन्तु हम इसी संविलाप आगे हैं। उल्लेख करेंगे। वह भी इस बात का एक अन्य प्रमाण है कि संस्कृत-भाषी हिन्दू राजाओं और कर्मचारियों ने किसी समय इंग्लैंड के बायों का प्राप्तायन, लंबालन किया था।

अंग्रेजी 'सर' की उपाधि भी संस्कृत के 'श्री' शब्द का अपभ्रंश रूप है। ऐंग्लिश इस उपाधि प्रथा किसी गणमान्य व्यक्ति को 'सर' की उपाधि देता है, तथा वह समाट जनजाति में ही अति प्राचीन उस हिन्दू परम्परा का अनुकरण करता है जिसे इंग्लैंड पर शायन करने वाले हिन्दू राजाओं ने प्रारम्भ किया था। 'श्री' अर्थात् 'पर' की उपाधि प्रदान करने में स्वत-

ही धन-अनुदान भी सम्मिलित ही ज्ञाता है क्योंकि संस्कृत का 'श्री' शब्द तथा रूप में 'धन' का अर्थ-द्योतक है।

अंग्रेज लोग स्वयं को 'आयं' कहते हैं, किन्तु जिस शब्द को वे अनजाने ही प्रयोग करते रहे हैं, उसका गूढ़ार्थ उनको विस्मृत हो गया प्रतीत होता है। भारत में भी, हिन्दू लोग स्वयं को 'आयं' संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। अपनी जीवन-पद्धति को हिन्दू लोग 'आयं धर्म' कहते हैं। अंग्रेज लोग भी जनजाने और रहस्यमय ढंग से ठीक ही हैं। उन लोगों को उस शब्दावली से जो कुछ जान हो जाना चाहिये, वह यह है कि वे किसी समय आयं धर्म उपनाम वैदिक जीवन-पद्धति उपनाम जीवन की हिन्दू, सत्तातन पद्धति का पालन किया करते थे। इसका अर्थ यह कहने के समान है कि चिरकालीन विगत-काल में, हजारों वर्षों तक अंग्रेज लोग सभी प्रकार हिन्दू ही थे।

: २२ :

इंग्लैंड में प्राचीन नगर और मन्दिर

श्रावोन इतिहास के सम्बन्ध में अति उच्ची और अव्यवस्थित जानकारी की बहुमान स्थिति में यह कथन कदाचित् दुःसाहसपूर्ण और विलक्षण प्रतीत हो कि प्राचीन इंग्लैंड किसी समय एक हिन्दू देश था, तथा इसमें छाड़ी भी कुछ हिन्दू-मन्दिरों व संस्कृत नामों वाले नगरों के चिह्नों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के ऐसे साक्ष्य भी हैं जो उपर्युक्त निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।

अपने प्रारम्भिक स्थल के लिए, हम, एन्साइक्लोपीडिया लिटैनिका (एंटिक ज्ञानकोश) से एक अद्वितीय उद्दत करते हैं। एन्साइक्लोपीडिया के अण्ड २१ के पृष्ठ क्रमांक २७५-२७७ पर इंग्लैंड के एक अति प्राचीन स्थान के बारे में जानकारी दी गयी है। इस स्थान का नाम 'स्टोनहेंज' अकित है। उपर्युक्त एन्साइक्लोपीडिया में लिखा है: "सेलिसबुरी, विल्टन्यायर, इंग्लैंड के उत्तर में लगभग आठ किलोमीटर (१३ किलोमीटर) की दूरी पर एक धूस्त के चारों ओर लम्बे खड़े प्रस्तरों की वृत्ताकार व्यवस्था स्टोनहेंज का निर्माण पूर्वकालिक नवप्रस्तर युग से प्रारम्भिक कांस्य-युग (१५००-१४०० ई० पू०) के मध्य किसी समय हुआ था। पूर्वकालिक प्राचीनतम सन्दर्भों में एक किंवदन्ती यह है कि ये प्रस्तर किसी जाहू से ही आयरलैंड से लहो से लाये गये थे। इस किंवदन्ती में कदाचित् वह अ॒स्मि॑न अ॒स्मि॑त भी छिन्नी हुई है जिसके अनुसार पैम्ब्रोकशायर से लाये गये वे 'नीलाशम' भी जो उस प्राचीन स्मारक के भाग थे। स्टोनहेंज से इंड्रेस का निर्माण सम्बन्ध १७वीं शती में जनता की कल्पना में समाया रहा है। इस निर्माण के अनेक वरचनात्मक तत्त्व समाविष्ट हैं जो रूप-रेखा में विविधता दृश्यात्मक है। इसके बाहर एक बाई है जो उत्तर-पूर्व में प्रवेश-

अन्तराल से टूट गयी है, इसीके भीतर एक बाँध भी है...। बाँध के भीतर ५६ विवरों की एक शृंखला है जिनको, इनके अन्वेषक के नाम पर बीवे-विवर कहते हैं। इनके और केन्द्र में रखे प्रस्तरों के बीच में विवरों की दो अन्य शृंखलाएँ भी हैं, जो अब धरातल पर दिखाई नहीं देती हैं। इनको 'ज़ेड' और 'वी' विवर कहते थे। प्रस्तरों की व्यवस्था दो वृत्तों (वाहरी वृत्त भूरभूरे बालु-प्रस्तरों का और भीतरी वृत्त नीलाशम का था) और दो ऊर्ध्वाकार तालों का था (जिसमें से बाहरी नालाकार भूरभूरे बालु-प्रस्तर का था और भीतरी नालाकार नीलाशम का था)। इनमें से बाहरी वृत्त और बाहरी नालाकारों पर पथर के सरदल लगे हुए थे। अतिरिक्त प्रस्तरों में से कुछ ये हैं—'वेदीप्रस्तर' जो केन्द्र की दक्षिण-पूर्व धूरी पर पड़ा है; 'धध-प्रस्तर' जो धूस्त के प्रवेश-द्वार के भीतर है; दो स्थिति-प्रस्तर जो बाँध के बिल्कुल समीप अन्दर हैं उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में, और 'हील' (हेले) प्रस्तर जो प्रवेश-द्वार के बाहर मार्ग पर लड़ा है... 'समाधिस्थ अवशेष' में लगभग ३० शब्दों का समाधि-स्थल है। हील प्रस्तर, जो ३५ टन बालु-प्रस्तर का १६ फुट (४.६ मीटर) ऊंचा प्रस्तर-खण्ड है, धूस्त के प्रवेश-द्वार के बाहर स्थित है, किन्तु अपने प्रतिसाम्य की धूरी पर नहीं है। इस धूरी के आर-पार, इसके पश्चिम में चार लम्बे स्तम्भ-छिद्र हैं जो सम्भवतः किसी पूर्वकालिक लकड़ी के फाटक के चिह्न हैं। (स्टोनहेंज २ नं.) धूस्त का प्रवेश-द्वार मार्ग द्वारा 'अवन' नदी से जुड़ा हुआ था—यह ऐसा शोभायात्रोपयोगी मार्ग था जिसके साथ समानान्तर बाँध व ज्ञाइयाँ थीं... नीलाशमों की यह सबसे प्रथम व्यवस्था, पंक्तियों में लगभग उत्तरायणकाल में सूर्योदय के समय की गई थी। ३० फुट ऊंचे प्रस्तरों की दिखने वाली सतहों को अति कठोर परिश्रम द्वारा बिकना बनाया गया है... इन संरचनाओं का निर्माणकाल १६वीं शती का प्रारम्भिक अर्द्ध-भाग कहा जा सकता है, जिसकी पुष्टि भीटे तौर पर कांस्य-रासायनिक-पद्धति पर भी हो जाती है। उसके निष्कर्ष के अनुसार यह सम्भवतः २,००० ने १,४०० ई० पू० के कालखण्ड में निर्मित हुआ था। यह सामान्यतः और कदाचित् ठोक ही अनुसान किया जाता है कि 'स्टोनहेंज' का निर्माण पुरावारायना-स्थल के रूप में हुआ था... तथापि यह जिस धर्म के अनुपातन-

हेतु बना था... उसकी तो मात्र कल्पना ही करती होगी... उसका कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं है।" (स्टोनहेज इक की) बाल-प्रस्तर संरचना की सादृश्यता की धूरी की उत्तरायण-पंक्तिबद्धता बहुत पहले ही स्वीकार की जा चुकी है... सन् १६६३ ई० में इंग्लैंड के सी० ए० न्यूहम और अमरीका में जी० एस० हाकिन्स द्वारा, पृथक्-पृथक्, सूर्य और चन्द्र के महत्वपूर्ण सूर्योदयों और सूर्यस्तीतों के समय अतिरिक्त पंक्तियों के अस्तित्व सुझाए गये थे। ये विचार निसन्देह रूप में उस जन-धारणा को बल प्रदान करते हैं कि स्टोनहेज आकाश-पूजन का एक मन्दिर था, किन्तु इसपर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिये क्योंकि अधिकांश इसाई गिरजाघर इसी प्रकार खगोलशास्त्र-विद्यामूलक हैं। हाकिन्स ने यह भी सुझाया कि ५६ और विद्यों का बृत चन्द्र और सूर्य के ग्रहणों, तथा चन्द्र के महत्वपूर्ण भविष्य-कथनों के लिए गणक-पन्त्र के रूप में प्रयुक्त हुआ होगा... इसकी सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त अवतरण से जो महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं, वे ये हैं कि स्टोनहेज नाम से पूजारी जाने वाली प्रस्तर-संरचना एक मन्दिर है, कि यह २,००० ई० पू० तक की प्राचीन हो सकती है, कि इसके प्रवेश-द्वार से अवन नदी तक का मार्ग लगभग दो मील दूर तक था, कि मन्दिर में ऐसे पंचर हैं जिनकी सतहें अतिरिक्तमौली हैं, कि वहाँ एक वध-प्रस्तर भी है, कि यह मन्दिर नदी के माध्य एक ग्रोभायाक्षोपयोगी मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ था, कि मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर एक समारोह सम्बन्धी फाटक था (जिसे नकहीं का बनाया था), कि उन दिनों में यहाँ की समाधियाँ बनाई जाती थीं, कि मन्दिर का सम्बन्ध आकाश-पूजन से था, कि इसके प्रवेश-द्वार को (बून २२) वीष्वकालीन उत्तरायण सूर्योदय से पंक्तिबद्ध किया हुआ था, कि मन्दिर के चारों ओर बने हुए चिह्न इस ओर संकेत करते हैं कि वह सूर्य और चन्द्र (तथा सम्भवतः, अभी अन्य यहाँ के भी) उदय और अस्त के समयों का अध्ययन करने के लिए, यह एक वेधशाला थी, कि अधिकांश इसाई गिरजाघर नक्षत्र-यहाँ के अनुहय ही अधिगित हैं, कि ५६ नवं चहरों, तथा चन्द्र के महत्वपूर्ण उदयों के भविष्य-कथन करते होंगे,

और कि मन्दिर के प्रवेश-द्वार के ठीक बाहर मार्ग में ही एक १६ फूट ऊँचा पत्थर अभी भी स्थित है।

'एन्साइक्लोपीडिया विटानिका' में स्वीकार किया गया है कि इंग्लैंड में उस प्राचीन युग में व्यवहृत धर्म के बारे में कुछ पता नहीं है, किन्तु स्टोनहेज के बारे में अनुसन्धान-उपलब्धियाँ मात्र हिन्दू-धर्म से ही संगत बैठती हैं।

स्टोनहेज-काल (१८००-१४०० ई० पू०) में एकमात्र हिन्दू-धर्म ही विष्व को ज्ञात था। हिन्दू-धर्म के मूल ग्रन्थ वेद तथा रामायण, महाभारत उसी काल-क्रम में आते हैं।

हिन्दू लोग ही अपने मन्दिरों का सम्बन्ध स्थल-मार्ग द्वारा नदियों से स्थापित करते थे। स्टोनहेज का अवन नदी से सम्बन्ध उसी प्रकार का है। भारत में ऐसे अगणित मन्दिर हैं जिनके प्रवेश-द्वार का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि विशिष्ट दिनों पर, सूर्य की किरणें मुख्य आराध्य-प्रतिमा पर सीधी पड़ें। स्टोनहेज में भी ऐसा ही है।

हिन्दू लोग अपने मन्दिरों का सम्बन्ध स्थल-मार्ग द्वारा नदियों से करने के लिए प्रसिद्ध हैं। स्टोनहेज मन्दिर का सम्बन्ध अवन नदी से था। शोभायात्रोपयोगी मार्ग भी हिन्दुओं की उस रीति का द्योतक है जिसके अनुसार देव-मूर्तियों को विसर्जन-हेतु नदियों में प्रवाहित कर दिया करते थे। स्वयं 'अवन' नदी का नाम भी संस्कृत के 'अरुण' शब्द का अपञ्चश रूप हो सकता है—'अरुण' का अर्थ लालिमायुक्त भौर-काल का सूर्य है। यह निष्कर्ष इस तथ्य से भी स्वीकार्य प्रतीत होता है कि इह इस लोग सूर्य का आह्वान करने के लिए स्टोनहेज मन्दिर में उषाकाल की बेला में एकत्र होते हैं।

प्रस्तरों की सतहों को चमकाने की परम्परा भारत में अति सामान्य, प्रचलित है। ऐसे बीमियों मन्दिर हैं जिनमें विशाल बगकार स्तम्भ हैं जिनकी गोलाकार सतहें चमकीली रखी गयी हैं ताकि मन्दिरों में होने वाले पवित्र नृत्यों का उनमें प्रतिविम्ब देखा जा सके। ऐसे मन्दिर भी भी दक्षिण के हेलविड और अन्य ऐतिहासिक स्थानों पर देखे जा सकते हैं।

वध-प्रस्तर बकरियों अथवा भैसों की बलि चढ़ाने की भारतीय कान्तियों की परम्परा की स्मृति दिलाता है।

स्टोनहेज मन्दिर का प्रवेश-द्वार इस प्रकार पंक्तिबद्ध किया गया था

कि (उत्तरायण में) २२ जून को सूर्य की किरणें सीधी प्रविष्ट हो जाएं। हिन्दुओं के मूल निवास-स्थान भारत में, कोलहापुर और जयपुर जैसे स्थानों में बहुत सारे ऐसे मन्दिर हैं जिनके प्रवेश-द्वार इस प्रकार वैज्ञानिक रूप में बनाये गये हैं कि स्टोनहेंड मन्दिर के समान ही, धार्मिक महत्त्व के विशिष्ट जगहों पर, उन मन्दिरों की मुख्य देव-प्रतिमाओं पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं।

हिन्दुओं का आदि-स्थान भारत मात्र ही ऐसा स्थान है जिसको इस शब्द का मत्त्व हो सकता है कि स्टोनहेंज के समान ही वहाँ भी खगोलीय पर्यावरणों-हेतु प्रस्तरों और चिनाई की असंख्य संरचनाएँ निर्मित हैं। खगोल-ज्ञानीय चिह्नों से युक्त ऐसे अनेक भवन जयपुर, उज्जैन और नवी दिल्ली जैसे भारत के अनेक नगरों में अभी भी भलीभांति रक्षित देखे जा सकते हैं।

कुतुबमीनार नाम से पुकारा जाने वाला हिन्दू ज्यामिति स्तम्भ उसी युग से सम्बन्ध रखता है जिस युग से स्टोनहेंज-वेधशाला । २३८ फुट ऊंचे हिन्दू स्तम्भ—कुतुबमीनार के चारों ओर २७ नक्षत्रीय मन्दिर थे जिनको कुतुबद्दीन ने बिनष्ट किया था । स्टोनहेंज में भी इसी प्रकार के मन्दिर थे, जैसा एन्साइक्लोपीडिया ने उल्लेख किया ही है ।

उन विस्मरणातीत युग के विश्व-इतिहास में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसने बाल्द्र पंचांग पर विशेष वल दिया है और प्रत्येक नागरिक के जीवन की अति मूल्य नक्षत्रीय पर्यावेक्षणों से सम्बन्धित किया है तथा ग्रहों के दिन शुद्धिकारक स्वान करने, तब चन्द्र व पूर्णिमा के दिन भी स्नान करने, प्रत्येक पश्चवाहे की एकादशी को व्रत करने, कुछ विशिष्ट धार्मिक वर्मणाण्ड करने, कुछ दानादि करने का विधान किया हुआ है। आकाशीय-विषयों का इस प्रकार अतिमूल्य अध्ययन और उनकी समीक्षा प्राचीनतम रूपों के प्राचारण कर सभी हिन्दू साहित्य में प्रमाण रूप में उल्लिखित है।

वर्षीय दिल्ली स्थित प्राचीन हिन्दू वेधशालाओं और स्टोनहेज की वेध-
शाला के दीर्घ महसूस ममक-मूल अद्वरात्रि को 'गृन्य' घण्टा मानने की
प्रौढ़तमिक उभय-प्रभासी वेद मिलता है। अद्वरात्रि से घड़ी को मिलाने और
एक वर्षीय प्रारम्भ करने की पद्धति अत्यन्त ऊटपटांग है। फिर भी
वह बताया है कि अर्द्धवीनवांश इस असुविधाजनक घड़ी से चिपटा हुआ

है ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि प्राचीन इंग्लैंड हिन्दू-देश होने के कारण वहाँ के प्रबुद्ध-जन भारत में सूर्योदय के समय के अनुसृप्त अपना समय निश्चित करने लगे । भारतीय और अंग्रेजी समयों में साहे पांच घण्टे का अन्तर है । इंग्लैंड में अद्वैरात्रि के समय का भारत के सूर्योदय से लादात्म्य है । इसी प्रकार, भारत का नूतन वर्ष-दिवस, जो चान्द्र-पंचांग के अनुसार २५ मार्च के लगभग होता है, सन् १७५२ ई० तक इंग्लैंड का नवा साल प्रारम्भ होने का दिन था । घण्टे का अर्थ-द्योतक अंग्रेजी शब्द 'आवर' संस्कृत के 'होरा' शब्द का अपभ्रंश है । प्रचलित अंग्रेजी वर्ष के क्रमसे-क्रम चार मासों के नाम तो संस्कृत शब्दों पर ही है; यथा सेष्टम्बर (सप्त-अम्बर) अक्टूबर (अष्ट-अम्बर), नवम्बर (नव-अम्बर) और दिसम्बर (दश-अम्बर) । इनका अर्थ क्रमशः आकाश-मण्डल का सातवाँ, आठवाँ, नवाँ और दसवाँ भाग है । लैटिन भाषा में दो अन्य नाम भी हैं जो हिन्दू पंचांग-वर्ष के ही हैं—मारजिओ (मार्गशीर्ष) और मागो (माघ) । यह तथ्य इस बात को भी सिद्ध करता है कि नवी दिल्ली स्थित कुतुबमीनार अर्थात् बराहमिहिर वेद्यशाला और इंग्लैंड-स्थित स्टोनहेज-वेद्यशाला के मध्य संगोलशास्त्रीय सामग्री का आदान-प्रदान होता रहता था ।

अविस्मरणीय अध्यात्म के अनुसार भारत की केन्द्रीय याम्योत्तर रेखा दिल्ली, उज्जैन और लंका से गुजरती थी। महा-अंकलेश्वर के नाम से विष्णुत, उज्जैन का सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर इस प्रकार बना हुआ था, तथा वहाँ स्थित शिवलिंग इस प्रकार अवस्थित था कि वह याम्योत्तर रेखा चमको दो समान भागों में विभाजित करती थी। इस्तेड में भी किसी शिव मन्दिर में शिवलिंग इसी प्रकार अवस्थित रहा होगा कि उत्तरायण ते उदीयमान सूर्य (दिनांक २२ जून) की सीधी किरणों इस शिवलिंग को सूर्य-हतान करती रही होंगी। इस्तेड की केन्द्रीय याम्योत्तर रेखा वहाँ से गुजरती होगी।

दो विशिष्ट उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है कि सम्पूर्ण प्राचीन यूरोप में हिन्दू शिव-पूजा प्रचलित थी। प्राचीन इटली में अवैत्यत-प्रस्तर (शिवलिंग) बोडकर निकाले गये हैं। इन्हीं में से एक शिवलिंग (रोम-स्थित पोप के बेटिकन नगर में एक स्थान सप्तहालय में दर्शनार्थी

रहा हुआ है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में 'एटलस्कन' और 'एट्टरियर' शब्दों के बन्तर्गत यह भी अकिल है कि इस शिव-प्रस्तर को 'इंज' और 'ईम्बर' के हिन्दू संस्कृत नामों से भी पुकारा करते थे। मैं, अपनी इस धारणा के पक्ष में कि प्राचीन इंग्लैंड के मन्दिरों में शिलाखण्ड के रूप में विद्यमान हिन्दू भगवान् शिव की पूजा हुआ करती थी, 'महका वी शावा' शब्दक पुस्तक से कुछ पंक्तियाँ उद्दत करता हैं। इस पुस्तक की लेखिका है तेजी ईविन कोवोल्ट। इस पुस्तक के पृष्ठ १३४ पर लेखिका ने लिखा है—“ऐतिहासिक प्रस्तरों के प्रति अदाभाव व्यक्त करने में मुस्लिम लोग अकेले ही नहीं हैं; असंख्य उदाहरणों में से एक उदाहरण ज़ैकब का है, जिसने एक स्मारक के रूप में एक प्रस्तर स्थापित किया था, और इंग्लैंड के सभी सज्जाओं को बैस्ट मिस्टर ऐ स्थित उसी प्रस्तर पर राजमुकुट धारण कराये जाते हैं, इस प्रस्तर की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए इतनी सारी विचित्र कहानियाँ गढ़ी जाती हैं।” यह इस बात का प्रमाण है कि बैस्टमिस्टर ऐ एक प्राचीन हिन्दू शिव मन्दिर के स्थान पर ही स्थित है। और चैकि भगवान् शिव का सम्बन्ध शुभारम्भ और संहार, दोनों, से ही है, इसनिए उच्च और शक्ति-सम्बन्धों को बैस्टमिस्टर ऐ में दफनाने की रुद्धि शारम्भ हो गई।

इस सन्दर्भ में हम एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का पर्यावेक्षण पुनः समरण करना चाहते हैं। ऊपर कहा गया चुका है कि “अधिकांश ईसाई गिरजाघर स्थानास्त्रीय विद्या पर अवस्थित हैं, उससे अभिप्रेरित हैं।” तथा ऊपर पहने ही यह बात सिद्ध कर चुके हैं कि प्राचीन हिन्दू पद्धति के अनुसार, जो हमारे दृग में भी ज्योती-त्यों प्रचलित है, सभी मन्दिरों की भी स्थानास्त्रीय विद्या पर अवस्थित, अभिप्रेरित रहता पड़ता है। ईसाई गिरजाघरों में इसका प्रत्यक्ष औचित्य न होने के कारण भी प्राचीन गिरजाघरों का स्थानास्त्रीय विद्या से अभिप्रेरित होना इस बात का प्रमाण है कि वे सब हिन्दू मन्दिर हैं।

गिरजाघर द्वारा प्रदानित होने से पूर्व उपासना-गृहों में बेदों का गान रीता था। यह तथ्य अपेक्षी के ‘मास’ ग्रन्थ में गिद होता है, जो सामवेद से उत्पन्न है। गिरजाघरी जैसी तक ‘मासों’ का गायन होता है, किन्तु

संस्कृत ‘मास’ का मात्र नाम ही शेष रह गया है।

ब्राह्मण में डेविड का उल्लेख अनेक साम (गीतों) के रचयिता के रूप में किया जाता है। डेविड का सन्दर्भ द्रविड (पुरोहित) से है, जो वैदिक शूचाओं का सम्पादन और गायन किया करता था। ये द्रविड लोग आधुनिक श्रिटेन में ड्राइड्स के रूप में अब भी विद्यमान हैं; वे भारत में द्रविडों (तथ्यतः सभी हिन्दुओं) की ही भाँति सूर्यदेव का आह्वान करते हैं। इनका गीत संस्कृत के पुनीत गायत्री-मन्त्र का यथार्थ अनुवाद है।

ड्राइड्स अर्थात् द्रविड लोग इंग्लैंड में प्राचीन हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। ये स्टोनहेंज मन्दिर में २२ जून को गायत्री मन्त्र का पाठ करते हैं।

यह परम्परागत मान्यता कि सभी अंग्रेज व्यक्ति (और तथ्यतः सभी यूरोपीय और विष्व के अनेक समुदाय भी) आर्य हैं, अनिवार्य रूप में उनके पूर्वकालीन हिन्दू होने की एक स्मृति ही है। जैसी सामान्य भ्रामक धारणा है, आर्य कोई जाति न होकर जीवन की हिन्दू पद्धति है। यदि ‘आर्य’ शब्द किसी जाति का शोतक रहा होता, तो इसमें ईरानियों, यूरोपीयों और भारतीयों जैसे पृथक्-पृथक् रंग, आकृति और बनावटों वाले विभिन्न जन-समुदाय कभी भी सम्मिलित न रहे होते। वे सभी आर्य कहलाते हैं क्योंकि वे सभी हिन्दू ही हैं। भारत में आर्यसमाज, आर्य-धर्म, सनातन धर्म और वैदिक जीवन-पद्धति सब-के-सब हिन्दूधर्म के पर्यायवाची ही हैं। इससे सभी लोगों के समक्ष स्पष्ट हो जाना चाहिये कि जब अंग्रेज तथा अन्य समुदाय स्वयं के सम्बन्ध में आर्य होने का दावा करते हैं, तब वे पूर्वकाल में हिन्दू होने की स्मृति को ही सजग करते हैं।

उपर्युक्त उपलब्धि के सम्बन्ध में एक अन्य लघु विवरण भी विलकूल सही बैठता है; वह यह है कि जिस प्रकार भारत में बहुसंख्यक समाज का ही एक अंश द्रविड लोग है, उसी प्रकार इंग्लैंड में भी अंग्रेज आर्यों अर्थात् इंग्लैंड में प्राचीन हिन्दू धर्म का ही एक भाग वही के ड्राइड्स अर्थात् द्रविड लोग हैं।

इंग्लैंड के कुछ शहरों के नामों में जुड़ा ‘शार्यर’ प्रत्यय संस्कृत शब्द ‘ईम्बर’ का अपभ्रंश है। जैसे शिव मन्दिरों से प्रतिष्ठित ह्यम्बकेश्वर, लकेश्वर, शूलेश्वर तथा गढ़मुक्तेश्वर आदि नगरियों भारत में हैं, उसी प्रकार

इंग्लैंड में भी प्राचीन शिवमन्दिरों की पुण्यस्थलियाँ हैं जो लंकाशायर, ऐम्बर्कशायर और हैम्पशायर जैसे नामों से जानी जाती हैं।

इसी प्रकार, 'सेलिसबुरी, वाटरबुरी, कैटरबुरी' जैसे अंग्रेजी नामों में प्रयुक्त अन्य 'बुरी' प्राचीन संस्कृत शब्द 'पुरी' का स्मरण दिलाने वाला है जो उन दिनों का परिचायक है जब इंग्लैंड एक हिन्दू देश था। भारत में और स्थाम में (जो स्वयं हिन्दू देश था) अभी भी 'मुदामापुरी, कृष्णपुरी, चोलपुरी (स्थाम में यह चोलपुरी है) और राजपुरी (स्थाम में यह राज-बुरी है) जैसे नगर अभी भी हैं। कल्पित अंग्रेजी नाम 'सेलिसबुरी' सभी प्रकार संस्कृत है, जो 'शैल-ईश-पुरी' अर्थात् 'पर्वत के देवता (भगवान् शिव) की नगरी' है—यह स्पष्टतः दर्शाया है कि 'सेलिसबुरी' एक पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। इस तथ्य को पुष्टि प्राचीन अथवा नवीन (प्रचलित) आधुनिक मानचिवाओं को देखकर की जा सकती है। विल्टशायर क्षेत्र, जिसमें स्टॉनहेंड स्थित है, वहाँ पर एक प्राचीन हिन्दू शिवमन्दिर की विद्यमानता का दोधक है जैसा कि 'ईश्वर' (भगवान् शिव) के द्योतक अन्य 'शावर' शब्द में प्रत्यक्ष ही है। सेलिसबुरी का पहाड़ी भूगोलगत नाम भी इन तथ्य का प्रमाण है कि यह नाम एक पहाड़ी क्षेत्र और एक हिन्दू मन्दिर के योगार्थ से जैसे लोक संस्कृत शब्द 'शैल-ईश-पुरी' का अपभ्रंश हो गया है। यह प्राचीन इंग्लैंड की हिन्दू-पैतृकता का एक अति लघु तथायि सद्विष्टुत्यं चर्चित करता है। एक समानान्तर उदाहरण मुदूरस्थ मलयेशिया का अनुकूल किया जा सकता है जहाँ 'मूगई पट्टनि' नगर संस्कृत का 'शृंग पट्टन' (शृंगेश-पट्टन नगर) है और 'पैतृलिङ जय' 'स्फटिकः लिंग जयन' अर्थात् मलयान्कार्डिक (निवेश) विवरण अब महिन्द्र में परिवर्तित हुआ है। यदि 'पैतृलिङ जय' की वज्र सुरानो महिन्द्र के आम-पास, चारों ओर, पुरातात्त्वीय बृद्धार्थी-पैतृलिङ किया जाए, तो निश्चित है कि वह महिन्द्र एक शिव मन्दिर मिल जाएगा।

आइए हम अब स्वयं इंग्लैंड जल का मूल विचार करें। इसका काहून-मूल को ज़रूर विचारने के लिए हमें सर्वप्रथम यह ध्यान रखना चाहिए कि संस्कृत का 'पौनि' शब्द अंग्रेजी भाषा में 'फ्लैंड' के रूप में निरन्तर बदल रहा रहा है। इसी प्रकार 'नैप-स्टैण्ड' में प्रयुक्त 'स्टैण्ड' शब्द

बिश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

भी संस्कृत का 'स्थान' शब्द है। यह इस बात का द्योतक है कि संस्कृत का अन्य 'न्य' अथवा 'थान' अंग्रेजी के 'एण्ड' में बदल गया है। आइए, हम अब प्राचीन भीमोलिक मानचिव को पुनः देखें, जिसमें प्राचीन हिन्दुओं ने अपने देश का नाम 'सिन्धु-स्थान' (अर्थात् हिन्दू-लैंड) और अन्य देशों का नाम 'अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, तुराम-स्थान (आधुनिक तुर्की) और अवं-स्थान (आधुनिक अरेबिया) रखा था। इसी प्रकार, उन्होंने अंग्रेजी-द्वीप का नाम 'आंग्ल-स्थान' (जो संस्कृत भाषा में अभी भी ज्यों-कान्त्यों प्रयुक्त होता है) रखा था। अंग्रेज लोगों का मूल संस्कृत नाम 'आंग्ल' (न कि 'इंगलिश') होना 'अंग्लेस' और 'आंग्लों' (सेक्सन) और (फ्रांसीसी लोगों द्वारा अभी भी प्रयुक्त) 'आंग्लाइस' शब्दों की विद्यमानता से सिद्ध ही है। अतः, 'आंग्ल-स्थान' 'आंग्ल-एण्ड' हो गया जो आधुनिक शब्द-व्यवहार में 'इंग्लैंड' में बदल गया।

स्लिटेन (बहुत-स्थान) संस्कृत शब्दावली का अपभ्रंश है। 'बहुत-स्थान' महान् द्वीप का द्योतक है। किन्तु 'स्लिटेन' शब्द का मूल संस्कृत-माहात्म्य भुला देने के कारण अंग्रेजी शब्दावली में विशेषण 'प्रेट' का प्रयोग दोहराया जाता है।

यही बात विश्व के अन्य भागों में भी हुई है। प्राचीन हिन्दुओं ने मिस्र देश में बहने वाली नदी का नाम 'नील' रखा था जो उसके नीले जल का परिचायक था। किन्तु प्राचीन, संस्कृत परम्परा विस्मृत हो जाने के कारण, यातान्त्रियाँ व्यतीत हो जाने पर, मिस्र देशवासियों ने 'नील' शब्द को कोई रहस्यमय, निरर्थक व्यवित्रितवाचक नाम समझकर अपनी नदी के साथ 'नीली' विशेषण और जोड़ दिया। वे अब उस नदी को 'नीली नील' (ब्ल्यू नील) कहते हैं।

'शायर-स्टन, हैम्पटन और केन्सिंगटन' जैसे नामों में प्रयुक्त, नगरों और अन्य बस्तियों के नामों में प्रयुक्त अन्य 'टन' या 'स्टन' संस्कृत के अन्य 'स्थान' का द्योतक है। उपर दी गई व्युत्पत्ति के अनुसार, स्पार्ट है कि 'शायर-स्टन' 'ईश्वर-स्थान' अर्थात् 'भगवान् शिव का स्थान' (मन्दिर अथवा नगरी) है।

जब स्वयं अंग्रेजी भाषा संस्कृत शब्दों से भरी पड़ी है, तब इसमें कोई

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

आश्चर्य की बात नहीं है कि इंग्लैंड के नगरों के नाम संस्कृत-नामों पर हैं। अंग्रेजी भाषा प्रचुर मात्रा में संस्कृत शब्दों से भरी पड़ी है क्योंकि स्मरण-लोक युग में जब ब्रिटेनवासी हिन्दू थे, तब वे साम-कृचाओं का पाठ करते थे, सभी पाण्डित और धार्मिक कृत्यों के लिए संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। 'सेट' शब्द संस्कृत के 'सन्त' शब्द के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। 'आइस्टमास' (क्रिसमस) और 'माइकेलमास' में प्रयुक्त 'मास' शब्द उस महीने का दोतक संस्कृत 'मास' शब्द है जिसमें काइस्ट अथवा 'माइकेल' के नामारोह सम्बन्ध होते हैं। इसका एक अन्य संकेतक है प्रचलित अंग्रेजी भाषायी आदरसूचक शब्द 'सर'। लगभग २,००० वर्ष तक संस्कृत से जम्बन्ध न रहने के कारण ब्रिटेनवासियों ने भ्रम-वश, अशुद्ध रूप में संस्कृत के शुद्ध 'श्री' शब्द के हो व्यंजनों और एक स्वर की व्यवस्था को 'सर' करने में एक व्यंजन, एक स्वर और एक व्यंजन का रूप दे दिया।

प्राचीन ब्रिटेनवासियों को हिन्दू बताने वाले अन्य साक्ष्य का एक अंश उनके चिकित्सा सम्बन्धी शब्दों में प्राप्त होता है जो हिन्दू चिकित्सा-प्रणाली—आशुद्ध से ही व्युत्पन्न है। 'हिक्कप्स' शब्द लो जो संस्कृत का 'हिन्द' है; 'हार्ट' 'हादिक' से व्युत्पन्न है; 'डेटिस्ट्री' 'दन्त-शास्त्र' से है; 'हाइटो-सेफेनिया' 'आई-क्याल' है; 'ओस्टिओ-पोरोसिस' हड्डी के अर्थ-दोतक संस्कृत 'अस्त्रि' शब्द से है; इसी प्रकार, 'ओस्टिओ-मेलेसिया' 'अस्त्रि' का 'मेलिन' हो जाता है। 'कफ' उसी उच्चारण सहित हिन्दू संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ घोड़ा-सा परिवर्तित हो गया है अर्थात् संस्कृत में यह 'बलवान' का दोतक है।

प्राचीन ब्रिटेनवासियों की अन्य पाठ्य-पुस्तकों भी संस्कृत में होना मिल जाने जाता एक शब्द 'ट्रिगोनो-मंडी' है जो संस्कृत का 'त्रिगुण-मत्ता' है।

प्राचीन ब्रिटेनवासी संस्कृत बोला करते थे—यह तथ्य पुल के दोतक अंग्रेजी के 'लन' और 'मोनी' शब्दों से, जो संस्कृत के 'मूनुः' शब्द से व्युत्पन्न है, उत्पन्न हो जाता है। 'निविदेविलिटी' विशुद्ध संस्कृत-समास 'आविष्वन-बद्धनीय' है। 'रिमीवेविलिटी', 'एविलिटी', 'पेलेटिविलिटी', 'एस्ट्राइ-विलिटी' ये शब्दों में अन्य 'विलिटी' संस्कृत का 'बल-इति'

है जिसका अर्थ 'लिए सामग्र्य' है। संस्कृत भाषा के 'हन्ता', 'हन्तारो', 'हन्तार' की अंग्रेजी के 'हन्ट', 'हन्टर', 'हेटिंग' शब्दों से तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार, अंग्रेजी भाषा के 'विडो', 'विडोअर' संस्कृत भाषा के 'विधवा' और 'विधुर' से व्युत्पन्न हैं।

अंग्रेजी स्थानवाचक शब्दों के अन्त्य भाग सभी प्रकार संस्कृत भाषा के ही हैं। कुछ विशिष्ट उदाहरण निम्नलिखित प्रकार हैं—

बोरो=पुरा, पुर।

बुरी (जैसे सेलिसबुरी में)=पुरी।

हम (जैसे बरमिहम, सनड़िग्हम में)=धाम।

ठन (जैसे हैम्पटन, वार्शिगटन में)=स्थान।

शायर (जैसे लंकाशायर में)=ईश्वर।

इन सब तथ्यों का सारांश यह है कि प्रचलित धारणा के विलुप्त विपरीत, ब्रिटेन का तो अति प्राचीन इतिहास है। यह कथन आंशिक रूप में ही सत्य हो सकता है कि जब रोमन लोगों ने ब्रिटेन में पदार्पण किया, तब ब्रिटेनवासी असभ्य थे—अर्थात् इतिहास में किसी एक विशेष समय आक्रमणों, या प्राकृतिक विपदाओं के कारण ब्रिटेन अज्ञान और अकिञ्चना-वस्त्रा को प्राप्त हो गया था। यदि आज ब्रिटिश इतिहास को मात्र ५०० वर्ष पूर्व से ही सूखबद्ध किया जा सकता है, तो उसका कारण यही है कि इसाइयत इंग्लैंड के पूर्व इतिहास को उसी प्रकार समूल नष्ट करने में सफल हो सकी जिस प्रकार इस्लामी धर्मोन्माद ने अरबों के दिमाग से उनका मुस्लिम-पूर्व इतिहास समाप्त कर दिया। किन्तु उपर्युक्त सूख रोमन-आक्रमण से कई श्रावाविद्यों पूर्व के इंग्लैंड का इतिहास पुनः खोज निकालने में सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार का सत्प्रयत्न यूरोप के अन्य देशों व भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में नया प्रकाश डालेगा। आशा की जाती है कि ऐसी रखने वाले विद्वान् अन्वेषण की इस नयी दिशा में आगे एग बढ़ाएंगे।

: २३ :

वेस्ट मिन्स्टर एवे भी एक शिवमन्दिर हैं

लन्दन का वेस्ट मिन्स्टर एवे सामान्यतः एक ऐसे गिरजाघर, भवन के रूप में विद्युत है जहाँ अंग्रेजी सभाओं को राजमुकुट पहनाया जाता है, और यह उस स्थान के रूप में भी प्रसिद्ध है जहाँ विशिष्ट अंग्रेज व्यक्तियों को भरणोफरान्त दफ्नाया जाता है। किन्तु इसका सबसे अधिक चमत्कारी है, जो अभी तक सदैया अज्ञात रहा है, यह है कि यह स्थान एक अति प्राचीन शिवमन्दिर भी है क्योंकि इसमें सन् १२६६ ई० से ही एक अति प्राचीन पवित्र हिन्दू प्रस्तर-चिह्न रखा हुआ है।

इससे भी आगे, और अधिक महत्व की जो बात है वह यह है कि जिस प्रकार चिरस्मरणातीत युगों से भगवान् शिव हिन्दू शासकों के राजकुल-देवता रहे हैं, तगभग उसी प्रकार वह अति प्राचीन पवित्र हिन्दू प्रस्तर भी एट लिटेन का राजकुलीन आराध्य-देव रहा है।

वेस्ट मिन्स्टर एवे में प्रतिष्ठित उस प्राचीन प्रस्तर का विवरण (सन् १८३१ ई० में स्थापित) नाम-अनुकरणिकासहित निरल्तर आद्यतन रखी गई महत्वपूर्ण विश्व-षट्काओं की माहित्यिक दैनंदिनी, कीसिंग के तत्कालीन अधिनेत्र, १८५०-५२, के खण्ड VIII, पृष्ठ १११८ पर दिया हुआ है। इन अधिनेत्रों की कीसिंग की निजी प्रकाशन संस्था 'कीसिंस पब्लिकेशन्स लिमिटेड', (लन्दन) ने प्रकाशित किया था।

इसमें उल्लेख है: "अभियेक-प्रस्तर, जिसे बहुधा स्कोन-प्रस्तर अथवा आराध्य-प्रस्तर के नाम से सम्बोधित करते हैं, रमितम भूरे रंग का भूरभूरा बालूका प्रस्तर है जिसका वृप्ति, इकूल-वृप्ति में आयताकार है। यह लगभग ४५० पीछा लासी प्रस्तर-वृप्ति है, जिसकी लम्बाई २६-१/२ इंच, चौड़ाई १६-१/२ इंच और ऊँचाई ११ इंच है। इसे स्कॉटलैण्ड के राजाओं द्वारा

'अभियेक-प्रस्तर' के रूप में सन् १२६६ ई० तक उपयोग में लाया गया था। उन राजाओं को (पर्यंत के निकट) स्कोन में राजमुकुट धारण कराया गया था। एडवर्ड I ने सन् १२६६ ई० में स्कॉटलैण्ड पर आक्रमण किया, वहाँ था। एडवर्ड I ने सन् १२६६-७० में स्कॉटलैण्ड पर आक्रमण किया, और वह इस विशिष्ट प्रस्तर के राजा (जान बेलिओल) पदच्युत किया, और वह इस विशिष्ट प्रस्तर को लन्दन ले आया तथा इसे वेस्ट मिन्स्टर एवे में स्थापित कर दिया, जहाँ को लन्दन ले आया तथा इसे वेस्ट मिन्स्टर एवे में स्थापित कर दिया, जहाँ इसके चारों ओर एक अभियेक-कुर्सी बना दी गई। इस अभियेक-कुर्सी और स्कोन-प्रस्तर का इंग्लैंड के प्रत्येक राजा के अभियेक के लिए और एडवर्ड II के बाद ग्रेट ब्रिटेन के प्रत्येक राजा के अभियेक के लिए किया गया था। सन् १६५० ई० में क्रिसमस-दिवस पर इसे हटा लेने से पहले यह प्रस्तर कभी भी एवे से दूर नहीं गया था (सन् १६३६-४५ युद्ध की अवधि में इस प्रस्तर को इस्लिपा गिरजाघर में गाढ़ दिया गया था), जबकि अभियेक-कुर्सी एवे को दो बार त्याग चुकी है: ओलिवर कोमवेल को लांड प्रोटेक्टर प्रतिष्ठित करने के समय, जब वह समारोह वेस्ट मिन्स्टर महाभवन में हुआ था और दूसरी बार सन् १६३६-४५ की लडाई के समय, जब इसे सुरक्षा की दृष्टि से ग्लासेस्टर धर्मपीठ ले जाया गया था।

उस पवित्र प्रस्तर के सम्बन्ध में, जिसे आजकल स्कोन-प्रस्तर और प्रारब्ध-प्रस्तर कहा जा रहा है, उसी प्रकाशन में अंकित है: "जबकि स्कोन-प्रस्तर का एक अधिकृत इतिहास है जो लगभग ६०० वर्ष तक पीछे जाता है, इसका मूल अज्ञात है, और इसके सम्बन्ध में अनेक प्राचीन दन्तकथाएँ भी प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार यही वह प्रस्तर है जिसपर सिर रखने पर, बीथल में (उत्पत्ति-ग्रन्थ २८, X-XIX) जैकब ने दिव्यं ज्ञांकी देखी थी, और जो फिलिस्तीन से मिस्र, स्पेन, आयरलैण्ड और उस देश से प्राचीन स्कॉटवासियों के निष्क्रमण के साथ-साथ स्कॉटलैण्ड चला आया था। कुछ इतिहासकारों द्वारा यह बात सम्भव मानी गई है कि यह प्रस्तर उस आयरिश प्रमुख केन्नेथ मेक-एल्पाइन तक के सभी स्कॉटलैण्डवासी सभाओं के अभियेकों के अवसरों पर उपयोग में लाया गया था, जिसने पिक्ट्स लोगों को जीता था और (पिक्ट्स की राजधानी) स्कोन में लगभग ८५० ई० में उपना राजवंश स्थापित किया था। इस धारणा के बारे में विभिन्न मत हैं कि इसी प्रस्तर को पिक्ट्स-सभाओं के राज्यारोहण के अवसरों पर काम में

विश्व इतिहास के कुछ विलूप्त अध्याय

जाया गया था अथवा स्कॉट लोगों द्वारा इसे आयरलैण्ड से लाया गया था (जहाँ परम्परा इसका सम्बन्ध 'तारा गढ़' स्थान पर प्राचीन आयरिजन सम्भाटों के अभियेक-समारोहों से जोड़ती है)।"

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यह तथाकथित प्रस्तर, जिसका १०० लोगों का अधिकृत इतिहास उपलब्ध है, विस्मरणातीत प्राचीन युग का है और इसका निरन्तर सम्बन्ध सम्भाटों के राज्याभिषेकों से रहा है। अतः, यह प्रत्यक्ष रूप में मुद्रितम्-पूर्व और ईसा-पूर्व युग की आराध्य-वस्तु रही है। इस प्रस्तर का विवरण अर्थात् इसका रंग, वजन और आकार (लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई) हमें सहायक है कि हम इसे एक पवित्र हिन्दू मन्दिर के प्रस्तर के रूप में पहचान सकें। भारत में, भगवान् शिव सम्भाटों के परम्परागत कुलदेवता रहे हैं। प्राचीन हिन्दू सम्भाट् राज्याभिषेकों और अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर भगवान् शिव को पूजा और प्रार्थना किया करते थे। लोगों ने युद्ध करते समय हिन्दू सम्भाटों और उनकी सेनाओं द्वारा "जय एवं निगली" अथवा "हर-हर महादेव" अथवा "सत् श्री अकाल" का युद्धनाम एक दृष्टि प्रस्तर के प्रतीक रूप में विद्यमान उन्हीं भगवान् शिव का स्मरण करता है। प्रत्यक्षतः, बैस्ट मिन्स्टर एवे का वह प्रस्तर हिन्दू शिवलिंग का प्रतीक है। रोम-स्थित वेटिकन नगरी में पोप के एटलस्कन संग्रहालय में प्रदर्शनात्मक रूप से हुए प्राचीन शिवलिंग से हम जानते हैं कि सम्पूर्ण यूरोप में हिन्दू मन्दिर निश्चित रूपेण विद्यमान थे।

इससे हमें जान हो जाता है कि स्कॉन-प्रस्तर अथवा प्रारब्ध-प्रस्तर, जो अब लन्दन के बैस्ट मिन्स्टर एवे में प्रतिष्ठित है, ईसा-पूर्व युग का प्राचीन एवं स्थित प्रस्तर का फिलस्टीन से मिल, और वहाँ से स्पेन, आयरलैण्ड किलस्टीन के चारों ओर अरब-इजरायल क्षेत्र इतिहास-पूर्व युग में शिवपूजा चावा (हव) के लिए मुस्लिम लोग एकत्र होते हैं और वहाँ प्रतिष्ठित किलस्टीन का ऐसा ही एक प्रस्तर है जो भी मिल, स्पेन, आयरलैण्ड और,

विश्व इतिहास के कुछ विलूप्त अध्याय

स्कॉटलैण्ड की अनेक सहस्रों वर्ष तक यात्रा करने के बाद लन्दन पहुँच सका है।

'प्रारब्ध-प्रस्तर' एक अति प्राचीन हिन्दू कल्पना है क्योंकि मानव-भाग्य का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व का अन्तिम संहारक भी 'भगवान् शिव' ही है। हिन्दू धारणा के अनुसार भगवान् शिव ही वह शक्ति है जो समय-समय पर विश्व का संहार करने के लिए अभिन या जल-प्लावन का विनाशक रूप सूजन करता है।

ऊपर दिए गये अवतरण में इस तथ्य की ओर ध्यान दिया होगा कि बताया जाता है कि जब स्कॉटलैण्डवासी आयरलैण्ड से स्कॉटलैण्ड गये, तब वे इस 'प्रारब्ध-प्रस्तर' (अथवा स्कॉन-प्रस्तर) को भी अपने साथ ले गए। यह बड़ा विचित्र, असंगत और अयुक्तियुक्त ध्वनित होता होगा कि स्कॉटलैण्ड-वासी लोग आयरलैण्ड से कैसे (स्कॉटलैण्ड) जा सकते थे। किन्तु इसका उत्तर संस्कृत के 'क्षत्रिय' शब्द में उपलब्ध होता है जिसका अंग्रेजी अपञ्चंश 'स्कॉट' है। जैसाकि भारतीय पुराणों अर्थात् प्राचीन इतिहास-प्रन्थों में अभिलिखित है, इतिहास-पूर्व युग में क्षत्रिय लोग भारत से विश्व के सभी भागों में गये थे। वे जहाँ भी गये, अपने साथ अपने कुलदेवता भगवान् शिव को भी लेते गये—इनकी स्थापना पवित्र-प्रस्तर में प्रतीक रूप थी। ऐसा ही एक प्रस्तर वह है जो बैस्ट मिन्स्टर एवे में रखा हुआ है, और इंग्लैंड के इसाई सम्भाट् भगवान् शिव को अपने अभियेकों से सम्बन्धित करने की प्राचीन भारतीय पद्धति का अभी भी अनुसरण करते हैं—इस पद्धति को उन लोगों ने स्कॉट्स अर्थात् क्षत्रियों से प्रहृण किया था जो आयरलैण्ड अर्थात् आयरलैण्ड से निष्क्रमण कर गये थे और स्कॉटलैण्ड को अपना घर बना बैठे थे।

स्कॉटलैण्ड शब्द स्वयं ही संस्कृत शब्द 'क्षात्र-स्थान' का अपञ्चंश रूप है। इसके लिए थोड़ी व्याख्या आवश्यक है। संस्कृत का 'प्रन्थ' शब्द अंग्रेजी में 'लैण्ड' के रूप में बदल गया है। इसी प्रकार 'लैंस्प-स्टैंड' शब्द 'लैंस-स्थान' का द्योतन करता है। ये उदाहरण इस बात के द्योतक हैं कि संस्कृत का 'अर्थ' अथवा 'भान' अंग्रेजी के 'एण्ड' में परिवर्तित हो गया है। इसी पद्धति पर 'क्षात्र-स्थान' भी 'स्कॉटलैण्ड' हो गया है। संस्कृत का 'क्षात्र' में 'र' अंग्रेजी में 'एल (ल)' में बदल जाता है।

स्कॉटलैण्डवासी अपने प्राचीन 'प्रारब्ध-प्रस्तर' उपनाम स्कोन-प्रस्तर के प्रति अपनी पुरातन हिन्दू, धर्मिय भावना-प्रधान आत्मीयता बनाए हुए हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण-हृषि प्रमाण यह है कि वे समय-समय पर उस ही स्कॉटर को स्कॉटलैण्ड को बापस लौटा देने की जोरदार माँग करते हैं। प्रस्तर को स्कॉटलैण्ड को बापस लौटा देने की जोरदार माँग करते हैं। स्कॉट-राष्ट्रवादियों की मार्मिक याचनाओं, प्रार्थनाओं का कोई सुपरिणाम नहमुख न आने पर, तीन नवयुवक देशप्रेसी स्कॉटलैण्ड के विद्यार्थी और एक महिला घरेलू विज्ञान-शिक्षक सन् १९५० के किसमस-दिवस पर अति भोर की छड़ी में चुपके से बैस्ट मिस्टर एवे में प्रविष्ट हो गए, और अति शदा-पूर्वक उस प्रस्तर को स्कॉटलैण्ड के छवज में लपेटकर चलते बने। परम-साहसी चारों व्यक्ति ये थे : इयान हेमिल्टन—आयु २५ वर्ष—ग्लासगो विश्वविद्यालय का विधि-छात्र, मेविन बरनन (२४ वर्षीय), और एलन स्टूअर्ट (२० वर्षीय) —दोनों ग्लासगो विश्वविद्यालय में इंजीनियरी-छात्र, तथा कुमारी कटरीना मेयेसन (२२ वर्षीया) जा रास शायर में घरेलू विज्ञान अस्थापिका थी। वे चारों लोग उस प्रस्तर को स्कॉटलैण्ड ले गए और वहाँ आदौर एवे में इसे प्रतिष्ठित कर दिया।

स्कॉटलैण्ड के गिरजाघर और गिरजाघर की राष्ट्रीय समिति के प्रमुख व्यक्तियों को जब यह जानकारी मिली कि उनका प्राचीन, पवित्र 'प्रारब्ध-प्रस्तर' एक बार पुनः अपने घर वापस लाया जा चुका है, तब उन लोगों को दीर्घाच हो गया। उन्होंने एक बक्सव्य जारी कर दिया कि "स्कॉटलैण्ड के नजारों के राज्याभिषेकों से मन्त्रनिधत्त होने और स्कॉटलैण्ड की स्वाधीनता और राष्ट्रवाद का प्रतीक होने, दोनों के कारण ही जति विशिष्ट ऐतिहासिक और भावनात्मक मूल्य-वश इस प्रस्तर को प्राप्त करने की हमारी दोषेवालीम अभिलाषा रही है।"

नवं १८५० में किम्बल-दिवस की ओर में, प्रातः ६ बजे राति के चौथी घण्टा को प्रस्तुर की इस चौरी का जान होते ही जोर-शोर से इसकी खोज शुरू हो गई। सरकार की ओर में एक वयान भी जारी कर दिया गया कि अगले व्यक्तियों द्वारा उस पवित्र प्रस्तुर को अपने स्थान से हटा देने के कारण सचाह छति दुखित है। उस प्रस्तुर को जैन वाले दल ने भी यह बतवायी है कि उनका इयादा किसी भी प्रकार सचाह को अपमानित

अथवा परेशान करने का नहीं था, किन्तु वे चाहते थे कि वह प्रस्तार स्कॉट-लैण्ड में ही रहे और राज्याभियेक-समारोहों के अवसरों पर मात्र अस्थायी रूप में ही वैस्ट मिन्स्टर एवं ले जाया जाए। इसी बीच स्कॉटलैण्ड यांग पुलिस के व्यक्तियों ने स्कॉटलैण्ड के आद्रोध एवं में इस प्रस्तार को खोज निकालने में सफलता प्राप्त कर ली। वहाँ से इसे वापस ले जाया गया और कुल १०६ दिनों की अनुपस्थिति के बाद, इसे वैस्ट मिन्स्टर एवं में अभियेक-कुमारी की धीठ (आसन) के नीचे, इसके मूल-स्थान में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया गया।

सन् १९५२ ई० के फरवरी मास में वह मामला ब्रिटिश संसद में फिर उठाया गया था। स्कॉटलैण्ड के अनेक सदस्यों का आश्रह था कि यह पुनर्नियत प्रस्तार स्कॉटलैण्ड में ही रखा जाना चाहिये क्योंकि स्कॉटलैण्डवासियों को इसके सम्बन्ध में अत्यधिक भावनात्मक तादात्म्य और अद्वा थी। किन्तु सरकार की ओर से प्रधानमन्त्री विन्स्टन चर्चिल ने घोषित कर दिया कि सरकार भी उस प्रस्तार को बैस्ट मिन्स्टर एवं में स्थापित रखने में अत्यधिक महत्त्व प्रदान करती थी क्योंकि यह भाष्य-विधाता प्रस्तार एवं में ६५० वर्ष तक रहा था और राष्ट्रमण्डल के सभी देशों को इसका ऐतिहासिक महत्त्व अध्युषण था। इसी बीच 'स्कॉटलैण्डवासी प्रतिज्ञान-पत्र आन्दोलन' के प्रधान डॉक्टर जान मेक्कोमिक ने एक चेतावनी जारी कर दी कि जबतक वह पवित्र पत्थर स्कॉटलैण्ड को नहीं लौटाया जाता, इसे बस्तूबंक पुनः उठाये जाने की पूरी सम्भावना है।

६ मई, सन् १९५१ ई० को अनेक स्कॉटलैण्डवासी और अंग्रेज अभिजात कुलीन व्यक्तियों द्वारा समर्थित तारा के लाई लैंबेझोन ने हाउस ऑफ लाइसेंस में अनुरोध किया कि वह पुनीत प्रस्तर स्कॉटलैण्ड को लौटा दिया जाय। उसने स्कोत-प्रस्तर को “इतिहास, समारोह और भविष्य के साथ विश्व में अद्वितीय रूप से आवृत” बताया तथा इस बात पर बल दिया कि ऐसी प्रतावदी से आगिल के सम्राट् और बाह में स्कॉटलैण्ड के सम्राट् इसी पर राज्याभियन्त हुए थे। सन् १९६६ ई० में एडवर्ड। इसे बलात् इंगलैण्ड से गया था।

इस पुनीत प्रस्तर के सम्बन्ध में तारा के लाई डॉक्टोर की मानिक
पनुभूति होनी तो स्वाभाविक ही थी अर्योक्ति जैशा ऊपर कहा का चुका है,

इन परिवह प्रस्तर का सम्बन्ध तारा की पहाड़ी (गढ़) पर प्राचीन आयर-वेण्ट के सम्माटों के अभियेक-समारोहों से रहा है।

पर्वाप्त आश्वदं की बात तो यह है कि यह 'तारा' शब्द भी महान् संस्कृत, राजकुनीन हिन्दू महत्व का है। भारत में अजमेर नाम के स्थान के निकट ही हमें 'तारागढ़' (हिल (फोट) आफ तारा) नामक स्थान प्राप्त है। अजमेर (अद्येय-मेस) से शासन करने वाले हिन्दू सम्माटों का राज्याभियेक बास्तव में 'तारागढ़' में ही हुआ करता था, जो अजमेर के ऊचे स्थान पर सुनाओभित है। संस्कृत के तारा शब्द का अर्थ 'स्टार' (तारक) है और यह बास्तव में अपेक्षी शब्द 'स्टार' का संस्कृतभाषी पूर्वज है।

अपेक्षी-राष्ट्रद्वज 'युनियन लैंक' में अष्टकोणीय आड़ी रेखा भी प्राचीन हिन्दू सत्रिय परम्परा से व्युत्पन्न है जो इस बात की दोतक है कि सम्माट का प्रभुत्व सभी अष्ट दिशाओं में चलता है। भारत में, सम्माटों और देवी-देवताओं से सम्बन्धित सभी भवन अष्टकोणीय रहे हैं। इनकी दुर्जे और छनरियाँ भी अष्टकोणात्मक हैं। इन्हें आज भी देखा जा सकता है। हिन्दू परम्परा ने उन आठ दिशाओं के आठ अलौकिक रक्षक भी नाम-नियुक्त किए हुए हैं। हिन्दू तोष ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने उन आठ दिशाओं के पृष्ठक-पृष्ठक नाम भी रखे हुए हैं।

प्राचीन काल के दफलाए हुए मूर्त आंग्ल राजा, रानियाँ और दरबारियों के नामों के पुतले जो बैस्ट मिन्स्टर एवं में रखे गये हैं वे भारतीय पद्धति से नमस्कार शैली में हाथ जोड़े हुए हैं। इससे यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि अंग्ल भूमि में प्राचीन समय में वैदिक संस्कृति ही विद्यमान थी।

पुरोग ने ईनाह धार्मिक-कर्मकाण्डों में हिन्दू कृत्यों की पुष्टि होने का एक अच्छ प्रमाण 'आमोन' शब्द में मिलता है जो सभी धार्मिक-कर्मों के बाद 'शान्ति' हेतु उच्चारण किया जाता है। यह एक अति प्राचीन हिन्दू पद्धति है क्योंकि सभी धार्मिक कर्म संस्कृत के 'शान्ति' शब्द को तीन बार बोलकर ही पूर्ण कर दिए पाते जाते हैं। 'आमोन' संस्कृत के 'शान्ति' शब्द का इत्यादी और ईराइ-नामानक है।

यह संबहुत इस बात का प्रबल प्रमाण है कि आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, इंग्लैंड और तथ्यतः अभ्युत्त पूरोग ही हिन्दू धर्म के अनुमार जीवन-यापन

करता था, और यदि आज ऐतिहासिक स्मृति से यह बोलत ही यथा है तो यह विश्व-इतिहास में एक बहुत बड़े अमाव की ओर इग्नित करता है जहाँ आज हम लोग अपनी विद्वता की कितनी ही नेतृत्वी क्षमों न बधारे।

विश्व-इतिहास का यह भाग पुनः लिखने के लिए कि जब प्राचीन यूरोप हिन्दू जीवन-पद्धति का अनुसरण करता था, एक महत्वपूर्ण सूत्र स्कोन-प्रस्तर अर्थात् भाग्यविधाता प्रारब्ध-प्रस्तर से प्राप्त होता है। सामान्यतः जभी ब्रिटिश लोग और विशेष रूप से स्कॉटलैण्डवासियों द्वारा उस प्रस्तर के प्रति इतनी श्रद्धा व्यक्त करने का कारण यह है कि शिवलिंग-रूप यह पत्तर उनका कुल-देवता रहा है जब भारतीय धर्मियों ने असंस्कृत यूरोप पर अपना प्रभुत्व कैलाया था, हिन्दू प्रशासन स्थापित किया था, और उसपर अपने सम्माटों को सिहायनारूप किया था, उनका राज्याभियेक किया था। यह वही प्रस्तर-खण्ड है जो अब बैस्ट मिन्स्टर एवं में अभियेक-कुर्सी के नीचे प्रस्थापित है। अपर दिये गए उपलब्ध खोज-चिह्न इस बात का संकेत स्पष्ट रूप में करते हैं कि स्कॉटलैण्ड में स्कोन नगर में और उससे भी पूर्व 'हिल आफ तारा' अर्थात् आयरलैण्ड में 'तारागढ़' में एक शिवलिंग प्रतिष्ठित किया हुआ था। अतः यह प्रत्यक्ष है कि प्राचीन इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड और यूरोप के सभी नगरों में अनेकानेक शिवमन्दिर थे, और लन्दन-स्थित बैस्ट मिन्स्टर एवं भी अपने अन्य उप-प्रयोजनों के अतिरिक्त एक शिवमन्दिर ही है।

ब्रिटिश अभियेक कुर्सी के चारों पायों में सिह विराजमान है। यह एक हिन्दू परम्परा है जो आधुनिक ब्रिटेन में अभी भी विद्यमान है। हिन्दू परम्परा में राजगद्दी को 'सिहायन' अर्थात् सिह का बासन कहते हैं। इतना ही नहीं, वे सिह जो अभियेक-कुर्सी के पायों में बैठे हैं, हिन्दू शैली के हैं।

। २४ ।

अंग्रेजी संस्कृत भाषा की एक प्राकृत बोली है

यह तो विरला ही अवसर होता होगा जब यह अनुभव किया जाता हो कि अंग्रेजी मी संस्कृत भाषा की उसी प्रकार एक शाखा, प्राकृत बोली है जिस प्रकार अन्य अधिकांश भारतीय भाषाएँ हैं। इस तथ्य की पूरी अनभिज्ञता का दृष्टिरिणाम यह हूँआ है कि अंग्रेजी शब्दकोशों के संकलनकर्ता स्वयं ही गलत हो गये हैं। वे लोग, जहाँ कहीं आवश्यक था, वहाँ अपने शब्दों का संस्कृत-मूल प्रदान कर सकने में विफल हो गये हैं, अथवा अशुद्ध शब्द-व्युत्पत्तिगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर बैठे हैं।

'अपर' (upper) शब्द को लीजिये। इसकी वर्तनी से स्पष्ट हो जाता चाहिये कि इसका मूल उच्चारण 'ऊपर' (ooper) है, और यह इसी रूप में हिन्दी और संस्कृत में प्रयोग होता है। तथापि, कोई भी अंग्रेजी शब्द-कोश शब्दको यह जानकारी नहीं देगा कि 'अपर' एक संस्कृत शब्द है। इतना ही नहीं, यदि अंग्रेजी भाषी लोग इसके उच्चनिगत उच्चारण 'ऊपर' की मी बनाये रख पाते, तो उनको इसमें कठिनाई अनुभव नहीं हो पाती कि हिन्दी और संस्कृत-भाषी लोग उनको सरलतापूर्वक समझ पाते।

'माउस' (Mouse) यदि ध्वन्यात्मक रूप में उच्चारण किया जाये, तो 'मूस' (Moos) बोला जायेगा। फिर यह समझना कठिन नहीं होगा कि यह शब्द दो संस्कृत के 'मूषक' शब्द का खण्डित रूप है।

अंग्रेजी का 'स्वेट' संस्कृत का 'स्वेद' (Sweat—Sved) है। संस्कृत में 'नाम' अंग्रेजी 'नेम' (Name) है। अंग्रेजी में यह अन्य शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होता है; यथा कियूदोनिम (उच्चनाम), एन्टोनिम (विलोम-नाम) (Pseudoonym, Antonym) आदि। अतः अंग्रेजी शब्द 'Synonym' युग्म शब्द है जिसका संस्कृत भाषा में 'समान नाम' कहने पर भी

वही अर्थ प्राप्त होगा। 'Centre' की ध्वन्यात्मक उच्चारण-रूप देने पर 'Cent-tra' बोला जायेगा। अंग्रेजी में 'C' अक्षर को प्रायः 'क' ('K') के रूप में उच्चारण करते हैं; यथा Cut, Cough, Cot, Caught आदि में। 'C' की 'K' ध्वनि का उपयोग करने पर हमें स्पष्ट जान हो जाता है कि Centra तथ्य रूप में Ken-tra है। इसका समानक संस्कृत-शब्द 'केन्द्र' है।

अपने मूल-स्रोत 'संस्कृत' भाषा से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने के बाद, टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलने के कारण, अंग्रेजी का उच्चारण भ्रमित हो गया। इसका 'C' अक्षर कभी 'K' (क) और कभी 'S' (स) बोला जाने जाता। इस प्रकार जबकि 'Centre' शब्द का सही उच्चारण 'केन्द्र' होना चाहिये था, 'कमेटी' का शुद्ध उच्चारण 'समिति' होना चाहिये था इसीकि अंग्रेजी अक्षर 'C' को 'Sec' के रूप में (स) उच्चारण किया जाता है। Committee (कमेटी) का जब सही उच्चारण अर्थात् 'समिति' उच्चारण किया जाये, तब तुरन्त पहचाना जा सकता है कि यह तो एक संस्कृत शब्द है। यह इस तथ्य का दोतक है कि 'Committee' जैसे शब्दों की मूल ध्वन्यात्मक संस्कृत वर्तनी बनाये रखते हुए भी अंग्रेजी भाषा किस प्रकार उच्चारण में पतनावस्था को प्राप्त हो गई है।

'Central' और 'Committee' शब्दों को सापेक्षतावे लेने पर हमें जात होता है कि उनका उच्चारण 'केन्द्रल समिति' होना चाहिये। बताते हम जान जाते हैं कि अंग्रेजी में प्रयुक्त 'Central Committee' संस्कृत शब्द 'केन्द्रल समिति' अथवा सही रूप में कहा जाय तो 'केन्द्रीय समिति' का पर्यायवाची रूप हो गया है। अंग्रेजी प्रयोग भ्रमित और सम्मोहित हो गया है। इसका कारण यह है कि एक ही (सी) 'C' अक्षर पर दो ध्वनियाँ 'स' और 'क' आरूढ़ हो गई हैं।

अंग्रेजी सर्वताम 'You, We और She' संस्कृत के सर्वताम, 'तू यज्ञ, तू यज्ञ और सा' के विकृत रूप हैं। यराव का अवैशोतक संस्कृत का 'मदिरा' शब्द अभी भी अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं में 'Madeira' (मदिरा) के रूप में ही प्रचलित है। गेय पदों के लिए प्रयुक्त तथापि 'साम' के रूप में

उच्चरित अंग्रेजी 'Psalm' शब्द भी संस्कृत है जैसा 'मामवेद' संस्कृत शब्द से हमें जात होता है।

अंग्रेजी 'Known' और 'Unknown' शब्दों को एकन्यात्मक रूप में उच्चारण किये जाने पर स्पष्ट हो जायेगा कि ये दोनों संस्कृत भाषा के 'ज्ञान' और 'अज्ञान' ही हैं।

'Truth' और 'Untruth' की संस्कृत-मूलक कहकर व्याख्या नहीं की जाती। अंग्रेजी शब्दकोश की ओर शब्द-व्युत्पत्ति मन्मन्दी लुटि का यह एक उदाहरण है। इन दोनों शब्दों में से 't' अक्षर निकाल दीजिये, तुरन्त 'Ruth' (रुठ) और 'Untruth' (अनुत्त) शब्द प्राप्त हो जाएंगे जो संस्कृत शब्द हैं। यह मिछ करता है कि अंग्रेजी का 't' अक्षर संस्कृत शब्दों में अन्तर्लेपक है।

अंग्रेजी के 'Hunt, Hunter और Hunting' भी संस्कृत-मूलक शब्द हैं जैसा (मारने वाले के दोतक) हन्ता, हन्तारी (दो मारने वाले) और हन्तार (कई मारने वाले) शब्दों से स्वतः स्पष्ट हैं।

'Para-typhoid' और 'Para-military, Para-Psychology' जैसे विपूल शब्दों में प्रयुक्त 'Para' अंग्रेजी उपसर्ग संस्कृत का 'पर' है जिसका अर्थ 'परदेश, पर-सामृद्ध' आदि शब्दों में अन्य प्रकार का, या बाहर का, अवधा विविच्छ है।

'Disparate, disentangle, disengage' जैसे शब्दों में प्रयुक्त एक अन्य अंग्रेजी उपसर्ग 'Dis' संस्कृत का 'दुग्म', 'दुपर', 'दुस्' उपसर्ग ही है जैसे 'दुख्चर', 'दुस्तर' में।

'Perimetre' अथवा 'Peripheral' में भवेदिक का शोतक 'Peri' 'परिभ्रह' और 'परिमात्रा' में प्रयुक्त संस्कृत का 'परि' शब्द ही है। अंग्रेजी का Perimetre शब्द बास्तव में संस्कृत का 'परिमात्रा' ही है। इसी प्रकार, 'Trigonometry' संस्कृत में 'विगुणमात्रा' है। यह तथ्य इस बात का दोतक है कि ग्रीकोन विद्या संस्कृत-मूल गायों की सहायता से ही 'गणित' का अवधारन करता था।

माप के लिए अंग्रेजी शब्द 'मीटर' (Metre) परि ठीक एकन्यात्मक रूप में उच्चरित हो, जो संस्कृत शब्द 'पाद्र' के रूप में ही है। संस्कृत, हिन्दू

परमरा में 'मात्रा' संभीत, अधिक और गणित आदि सभी में समान रूप में प्रयुक्त माप है। अंग्रेजी छन्द-विद्या में भी यह मीटर शब्द संस्कृत-शब्दों के समान ही प्रयुक्त होता है। इसी के साथ-साथ, काव्यगत पक्षित के विभाजन भी 'फूट' कहलाते हैं जो संस्कृत छन्दशास्त्र की शब्दावली 'करण' और पद का यथार्थ रूपान्तर है। स्वयं 'श्रोजोडी' शब्द भी संस्कृत शब्द 'प्रताड़ि' से है जो सभी काव्य का एक अनिवार्य गुण माना जाता है, अर्थात् इसकी भव्यता से थोता के मानस को चमत्कृत, प्रसन्न करने की गोपनीत।

पेय वस्तु के रूप में 'पंच' नामक द्रव अंग्रेजी में होते हुए भी संस्कृत शब्द है जो पाँच वस्तुओं के समूह का शोतक है, जैसे संस्कृत में अनेक शब्द हैं; पथा पंच-गव्य (गो से उत्पन्न पाँच वस्तुएँ), पंच-अमृत (पाँच प्रकार का अमृत), पंच-रत्न (पाँच आभूषण) और (ग्राम) पंच (पाँच तंत्रों की परिपद)।

'Soup' (सूप) एक संस्कृत शब्द है, जैसाकि सर सोनियर विलियम्स के शब्दकोश में स्पष्टीकरण दिया गया है। पुरी स्थित जगल्लाय मन्दिर के सोइयों को 'सूपकार' कहते हैं।

लैटिन 'Sandalum' और अंग्रेजी 'Sandal' संस्कृत के 'चन्दन' शब्द के अपभ्रंश रूप हैं। अंग्रेजी 'Sugar', प्राचीन फ्रांसीसी 'Zuchre', प्रौढ़ 'Sakkharon' संस्कृत शब्द 'शकंरा' से व्युत्पन्न है। देशी खीड़ का अर्प-शीतक अंग्रेजी 'Jaggery' शब्द भी 'शकंरा' का अशुद्ध उच्चारण है।

अंग्रेजी 'Tutty', फैच 'Titie', अरबी 'Tutiya' संस्कृत के 'तुत्प' शब्द से ही निकले हैं। अंग्रेजी 'Pepper', लैटिन 'Piper', प्रौढ़ 'Peperi' संस्कृत के 'पिप्पलि' शब्द से उत्पन्न है। अंग्रेजी 'आंरेज' (Orange), बरबी में 'नारंज' और संस्कृत में 'नारंग' है। फैच, सोनिश और फारसी 'नीलक' संस्कृत का 'नीलक' है। अंग्रेजी 'Ginger' लैटिन में Gingiber है, जो संस्कृत में 'शृंगेर' से व्युत्पन्न है। संस्कृत के 'ज्ञाष्ठ' शब्द से ही अंग्रेजी 'Candy', फैच 'Candi' और अरबी में 'कन्द' है।

अंग्रेजी 'Beryk' प्रौढ़ में 'Berullos' है जो संस्कृत के 'बैदूर्य' से उत्पन्न है। नीलबरण का शोतक अंग्रेजी और स्पेनिश 'Anil' अरोविक भाषा में 'Al-nil' है जो संस्कृत शब्द 'नीली' से बने हैं। अंग्रेजी 'Aniline'

जहाँ भी उसी धारु से व्यूत्पन्न हुआ है। इसी से मिल देश में 'नील' नदी का प्राचीन हिन्दू 'नील-कृष्ण' नाम स्पष्ट हो जाता है। अपनी संस्कृत, हिन्दू पितृ-परम्परा से शताब्दियों तक पूर्यक् रहने के कारण मिल देशवासी यह भूल गये कि संस्कृत में 'नील' का अर्थ नीलावर्ण था, और इसीलिए उन्होंने उसी नदी के नाम के आगे जोड़कर 'ब्लू नहरि ब्लू' (नीला) विशेषण अपनी नदी के नाम के आगे जोड़कर 'ब्लू नीली नील' (नीली नील) नदी नाम रख दिया जो भाषा-शास्त्र की दृष्टि से और बहुदर्शी है।

अंग्रेजी 'Aggressor' एक संस्कृत शब्द है क्योंकि 'अग्र' (Agra) का अर्थ 'आगे' और 'सर' (Sar) 'चलना' है। अतः जो व्यक्ति, देश अन्य व्यक्ति, देश की सीमा में चलता है, आगे बढ़ता है वह 'Aggressor' है।

संस्कृत शब्द 'नासिका' अपभ्रंश-रूप होकर अंग्रेजी में 'Nose' हो गयी है, और उससे 'Nasal' जैसे शब्द बन गये हैं।

अंग्रेजी 'Terrestrial' संस्कृत 'धरातल' शब्द से व्यूत्पन्न है। यह इस तथ्य का द्योतक है कि 'भूमि' का अर्थद्योतक संस्कृत शब्द 'धरा' लैटिन भाषा में 'Terra' हो जाता है। इसी प्रकार 'बीच' का सूचक संस्कृत का 'मध्य' शब्द लैटिन और इंग्लिश में 'मेडि' (Medi) हो जाता है, जिसके साथ 'Middle' शब्द बना है। अतः 'Medi-terranean Ocean' शब्द-मूल का अर्थ वह माना है जो बड़े भू-धरातलों के मध्य स्थित है। इसीसे Mediator, Mediation, Middle, Meddle जैसे शब्दों की संस्कृत व्यूत्पन्न स्पष्ट हो जानी चाहिये।

Tri-gono-metry तीन-आयाम-परिमाप की द्योतक 'त्रि-गुण-मात्रा' संस्कृत शब्दावली है। यह और संस्कृत के 'दन्त-शास्त्र' से Dentistry जैसे शब्द इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि अविस्मरणीय विगत-काल में विज्ञ के तौरों ने संस्कृत-अध्यापकों के चरणों में बैठकर, संस्कृत पाठ्य-पुस्तकों के भाष्यम से ही (विज्ञ के) सभी विज्ञानों और कलाओं का अध्ययन किया था। इसका एक अन्य दृष्टान्त Gerontology में उपलब्ध है—यह संस्कृत शब्द 'जरा' से व्यूत्पन्न है जो वृद्धावस्था का द्योतक है। 'यु' वीचन की गमाली सूचक 'अग्र' शब्द है—अर्थात् मृत्यु।

अंग्रेजी 'Heart' शब्द संस्कृत विशेषण 'हार्दिक' (अर्थात् Heart-

feel) से व्युत्पन्न है। इसी प्रकार, संस्कृत का 'हिक्क' अंग्रेजी 'hiccups' है। 'Osteo-malacia' संस्कृत शब्दों 'अस्थि' (हड्डियों) और 'वृगी' अर्थात् रोगी हो जाने के द्योतक 'मल' का समूह है। 'Osteoporosis' शब्द भी हड्डियों के अर्थद्योतक 'अस्थि' से ही व्यूत्पन्न है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि प्राचीन विश्व में चिकित्सा की भारतीय प्रणाली 'आयुर्वेद' व्यवहार में आती थी और, इसीलिए यद्यपि आज अंग्रेजी चिकित्सा-पद्धति 'ऐलोपैथी' प्रचलित है, तथापि इसमें अभी भी आयुर्वेदिक घट्टावली प्रयुक्त होती है।

'धूलि—मलिन—विकृत' का अर्थद्योतक संस्कृत शब्द 'मल' अंग्रेजी भाषा में व्यापक स्तर पर प्रयोग में आता है; यथा Mal-administration, Mal-adroit, mal-practice, malign, malevolence आदि में।

'Suo-moto' शब्द वास्तव में लैटिन है, फिर अंग्रेजी में विधि-भाषा में व्यापक रूप में व्यवहार में आता है। यह संस्कृत शब्द 'स्व मत' का अपरिकृत उच्चारण है।

किसी शब्द का नकारात्मक शब्द-रूप प्रस्तुत करने के लिए संस्कृत उपसर्ग 'अ' और 'अन' का भी बहुत प्रयोग किया जाता है; यथा अंग्रेजी 'Amoral' और 'Un-known' में। संस्कृत में इनके समानक शब्द 'अमल' (अर्थात् शुद्ध) और 'अनभिज्ञ' हैं। 'दू' के रूप में उच्चरित अंग्रेजी 'Two' शब्द मूल संस्कृत में 'द्वी' था। इसकी बतानी इस बात की द्योतक है कि इसका उच्चारण 'Twou' अर्थात् 'द्वी' किया जाना था। यह अंग्रेजी के 'Two' शब्द का संस्कृत-मूल 'द्वी' है। इसी प्रकार अंग्रेजी 'Three' संस्कृत का 'त्रि' है जैसा 'Triology, triple, triplicate' आदि में। अंग्रेजी का Trident शब्द पूर्णतः संस्कृत है चूंकि 'त्रि' का अर्थ Three और Dent का अर्थ दाँत अथवा नोकें हैं। इसी प्रकार 'Making a dent' में Dent शब्द संस्कृत 'दन्त' से है जैसाकि जब कोई रोटी का टुकड़ा दाँत से काटता है, तो उसकी एक छाप रह जाती है।

अंग्रेजी Tree संस्कृत का 'त्रह' है। 'Ability' शब्दांश के साथ समाप्त होने वाले सभी शब्द 'Advisability, Gullibility, Perceivability, Palatability' आदि संस्कृत अन्त्य शब्दांश 'इत्त-इति' प्रयोग करते हैं

विश्व इतिहास के कुछ विलूप्त अध्याय

जिसका अर्थ 'बेसा करने की क्षमता' है; यथा जिसमें स्वादिष्ट बना सकने की क्षमता है, वह Palatability है। तब यह बात भली प्रकार से समझ में आ सकेगी कि अंग्रेजी शब्द 'Navigability' विशुद्ध संस्कृत का 'नावि गमन बल इति' समाप्त शब्द है क्योंकि संस्कृत में 'नावि' का अर्थ नौका है, 'गमन' (ग) गति की दौतक है, 'बल' का अर्थ वह है जिसकी क्षमता हो, और 'इति' का अर्थ ऐसा है। यह प्रदर्शित करता है कि अंग्रेजी शब्द Navigability पूरी तरह संस्कृत-शब्द है, फिर भी कोई अंग्रेजी शब्दकोश उसकी व्याख्या इस प्रकार नहीं करता है। यही बात संस्कृत-आधारित Stability (स्थ+बल+इति) शब्द की है जो संस्कृत में 'स्थ+बल+इति' है जिसका अर्थ है कि किसी भी स्थिति में (बने) खड़े रहने की क्षमता है। इसीसे सहज निष्कर्ष यह निकलता है कि संस्कृत 'स्थ' धातु अंग्रेजी में 'स्टॉ' (st) के क्षम में व्यापक स्तर पर प्रयोग की जाती है; यथा 'stand, stationary, station, stationing' आदि में। इनसे मिलते-जुलते संस्कृत शब्द हैं 'स्थान, स्थानक, स्थित'

'दबाव' या 'बोझ' की दौतक संस्कृत धातु 'भार' से अंग्रेजी के 'Barosphere, Barometric' शब्द बने हैं।

'बराबरी' या 'समानता' के संस्कृत शब्द 'सम' से हमें अंग्रेजी के 'semi-circle, Simisphere (अर्थात् hemisphere), Semblance, sample, similarity, similar' आदि शब्द प्राप्त होते हैं।

अंग्रेजी भाषा के 'Maternity, Paterniti' संस्कृत के 'मातृ-नीति, पितृ-नीति' शब्द हैं। लैटिन में Mater-Dei संस्कृत में मातृ देवी है। 'Mother, Maternal, Matrimony' आदि सभी शब्द संस्कृत के 'माता' 'मातर' शब्दों से व्युत्पन्न हैं। अंग्रेजी शब्द 'Son' 'Sonny' संस्कृत के 'सूनु' शब्द से व्युत्पन्न है।

लोग के अर्द्धदौतक संस्कृत के 'मृत्यु' शब्द में अंग्रेजी के 'Mortal, mortuary, morgue, Post-mortem, immortal' आदि शब्द बने हैं।

पिर के अर्द्धदौतक संस्कृत के पाद शब्द से ही अंग्रेजी के 'Biped' (द्विपद), Tripod (त्रिपद), Chirology, Centepede (शतपाद), pedeotrian (पादचर), pedestal (पादस्थल) आदि शब्द मिलते हैं।

'Suicide, patricide, matricide' अंग्रेजी शब्द संस्कृत के 'स्वद्विदि, पितृछिदि, मातृछिदि' शब्द हैं। इसी बात से अंग्रेजी के Germicide, Insecticide, pesticide जैसे शब्दों का स्पष्टीकरण हो जाता है क्योंकि संस्कृत में 'छिद-छिन' का अंग्रेजी अर्थ 'Cutting, killing, Ending, Exterminating' होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी भाषाएँ अभी तंस्कृत की बातुओं से किस प्रकार अपने शब्द-निर्माण करती रहती हैं।

'Quo vadis...quo warranto' जैसे शब्द-समूह में प्रयुक्त 'quo' लैटिन शब्द 'बव गच्छसि' (तुम कहा जाते हो ?) जैसे संस्कृत वाक्य में प्रयुक्त 'बव' शब्द से उत्पन्न है।

अंग्रेजी भाषा का 'Myth' संस्कृत का 'मिथ्या' (अथत् भूत) है। अंग्रेजी 'Peter' संस्कृत में 'पितर' शब्द से व्युत्पन्न है। इसी प्रकार 'David' संस्कृत 'देवि+द' शब्द से है, और संस्कृत के 'ब्रह्म' शब्द का सदोषोन्नारण ही अब्रहम (Abraham) है। अंग्रेजी कुलनाम 'Brahms' भारत में 'ब्रह्म' कुल शब्द के समान ही परिवार को एक शृंखला में सुबढ़ रखने की प्राचीन संस्कृत परम्परा की ओर इंगित करता है।

संस्कृत में 'मनोरम' के 'समान ही' अंग्रेजी Panorama, cinerama हैं। संस्कृत का अन्त्य 'रम' उसका दौतक है जो मन को मुख्द अथवा आकर्षक लगता है, उसमें प्रविष्ट हो जाता है।

'Mar somebody's Chances' जैसे शब्दों में 'मार' शब्द संस्कृत का है जो 'मारने, चोट पहुँचाने अथवा हानि पहुँचाने' का अर्थदौतक है। Band, Bondage, Bandage आदि संस्कृत के 'बंध, बन्धन' शब्दों से हैं।

Accept संस्कृत का अक्षिप्त (नहीं किका गया) है। Succinct संक्षिप्त है। अंग्रेजी 'Cough' संस्कृत का 'कफ' है। यद्यपि संस्कृत का 'कफ' बलगम का दौतक है और अंग्रेजी 'Cough' इससे तानिक भिन्न है, तथापि यह देल सकना कठिन नहीं है कि 'Cough' बलगम (कफ) से ही उत्पन्न होता है। एक ही शब्द के अंग्रेजी और संस्कृत स्वर-सम्बन्ध में बोझ-त्रै अन्तर इस कारण है कि अंग्रेजी को अपने मूल संस्कृत लोत से पृष्ठ ही पृष्ठ गतादिद्याँ व्यतीत हो चुकी हैं।

संस्कृत का 'अन्तर' शब्द अंग्रेजी में 'इटर' के रूप में उच्चारण किया

जाता है; यथा 'International, inter-versity, interpret, interpolate, intermediate, intermittent, inter-dependent' आदि में।

यथा (Path) का अंग्रेजी और संस्कृत, दोनों में ही, समान अर्थ है, यह परिभ्रमण में अति-सूक्ष्म अन्तर हो गया है। तुलनात्मक और उत्तम शब्दों के लिए अंग्रेजी भाषा में भी संस्कृत के अन्त्य शब्द ज्यों-के-त्यों प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत में इसे 'तरन्तम भाव' कहते हैं। अंग्रेजी 'Greater, Bigger and Lesser' के लिए संस्कृत में क्रमः 'अधिकतर, महत्तर, लघुत्तम' और 'Lesser' के लिए संस्कृत में क्रमः 'अधिकतम, महत्तम, लघुत्तम' शब्द-रूप हैं। अंग्रेजी शब्द 'Fraternity' संस्कृत का 'भ्रातृ नीति' शब्द है।

'रात' के लिए संस्कृत 'नक्तम्' और 'दिन' के लिए संस्कृत 'दिवस' से अंग्रेजी 'Nocturnal' and 'Diurnal' शब्द बने हैं। अंग्रेजी शब्द Regime, Reign, Sovereign, suzerain आदि संस्कृत के राज्यम्, राजन्, स्वराजन् हैं।

अंग्रेजी का 'Go' शब्द संस्कृत के 'यम—गच्छ' से निकला है। अंग्रेजी का 'Cow' शब्द संस्कृत के 'गो' का ही उच्चारण है। गिरजाघरों में 'Vestry' वह कमरा होता है जहाँ वस्त्र रखे जाते हैं। संस्कृत में भी इस प्रकार का कल्प 'वस्त्रिः' ही कहलाता है। इसी प्रकार 'Vesture' शब्द 'वस्त्र' है। इसी प्रकार 'Saint' (संस्कृत-'संत'), Preacher (संस्कृत का 'प्रचारक') और 'Adore' (संस्कृत-'आदर'), 'Door' (संस्कृत का 'द्वार'), 'Man' ('मानव' के लिए), Pater, mater, daughter (पिता, माता, दुहिता), Son-Sonny (संस्कृत 'मुनुः' से), Deity ('देवता' से), 'Theos' (संस्कृत 'देवत्' से) जैसी संस्कृत शब्द हैं। 'Pro-offer', 'Pro-create' जैसे शब्दों में प्रयुक्त 'Pro' उपसर्ग 'प्रवक्ता, प्रभात, प्रभाकर' संस्कृत शब्दों में प्रयुक्त 'प्र' संस्कृत का वही उपसर्ग है।

'Proto-type' जैसे अंग्रेजी शब्द में 'Proto' जैसा उपसर्ग संस्कृत का 'प्रति' उपसर्ग है; जैसे 'प्रति-विवाही' में। अंग्रेजी का सम्मान-मूर्चक सम्बोधन 'Sir' संस्कृत के 'श्री' का अपनेमन उच्चारण है।

चूंकि अंग्रेजी शब्दकोशों में इस प्रकार के सभी स्पष्टीकरणों का नितान्त अभाव है, इसलिए प्रत्यक्ष है कि अंग्रेजी भाषा-विज्ञानी और शब्दमूलाचित्त-शास्त्री लोग इस तथ्य से अधिकांशतः अनभिज्ञ हैं कि संस्कृत ही अंग्रेजी की आकर-भाषा है चाहे प्रत्यक्ष रूप में हो अथवा लैटिन और ग्रीक भाषा के माध्यम से अपत्यक्ष रूप में हो। यह तथ्य ऊपर दिए गए दृष्टान्तों से चरितार्थ हो ही चुका है। इस अनभिज्ञता, अज्ञान के फलस्वरूप ही अंग्रेजी शब्दों के संकलनकर्ता—कोशकार अपने शब्दों के मूल-स्पष्ट करते समय भयंकर गलितया कर गए हैं। इस तथ्य के दृष्टान्त-स्वरूप हम सामान्य अंग्रेजी शब्द-कोश के साथ दिए गए 'Widow' और 'Widower' शब्दों की व्याख्या लें। 'Widow' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए ठीक ही लिखा गया है कि 'Widow is a woman who has lost her husband' अर्थात् विवाहा वह महिला है जो अपना पति गंवा चुकी है। जिसके पति की मृत्यु हो चुकी है। अगले 'Widower' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि यह 'Widow' शब्द से व्युत्पन्न है, और इसमें 'Er' प्रत्यय जुड़ा हुआ है। यह 'कहना शब्द-व्युत्पत्तिशास्त्र की दृष्टि से बोर गती है। अंग्रेजी में 'Er' प्रत्यय का अर्थ 'करने वाला' होता है; यथा Labour+er, Sort+er, 'Lectur+er' का अर्थ labour, sort अथवा Lecture करने वाला है। अतः 'Er' यदि 'Widow' शब्द का प्रत्यय रहा होता, तो 'Widower' शब्द का अर्थ 'One who makes a woman widow' अर्थात् किसी महिला को विवाहा बनाने वाला व्यक्ति अर्थात् किसी विवाहित महिला के पति का हत्यारा, प्राणधाती होता जबकि 'Widower' शब्द का अर्थ वास्तव में वह हत्यारा, प्राणधाती होता जबकि 'Widower' शब्द का अर्थ वास्तव में वह व्यक्ति है जिसकी पत्नी मर चुकी है। अंग्रेजी कोशकारों ने यह भयंकर भूल व्यक्ति है जिसकी पत्नी मर चुकी है। अंग्रेजी कोशकारों ने कि अंग्रेजी 'Widow' मात्र इस कारण की है कि उनको यह जान नहीं आ कि अंग्रेजी 'Widow' और 'Widower' शब्द संस्कृत के 'विधवा' और 'विधुर' शब्दों के अपनेग रूप हैं।

अंग्रेजी भाषा के व्युत्पन्न शब्दों की सूक्ष्म जांच-पढ़ताल से कुछ अन्य गलितयाँ भी सम्मुख प्रस्तुत हो जाएंगी। इस तथ्य से अंग्रेजी कोशकारों की समझ में यह बात आ जानी चाहिये कि वे 'Truth' और 'Untruth' जैसे शब्दों को 'ऋत' और 'अनृत' से व्युत्पन्न बताते हुए बहुत बड़ी संक्षमा वे

अंगेजी शब्दों का संस्कृत-मूल अस्तुत करने लगें। हम एक पर्ग और आगे जा सकते हैं तथा कह सकते हैं कि त के बल अंगेजी, अपितु सभी यूरोपीय भाषाओं के कोशकारों के लिए वह शोभनीय कार्य होगा कि वे अपने शब्द-कोशों को संस्कृत विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित करा लें। कहने का अर्थ यह है कि यूरोपीय शब्दकोशों को संस्कृत की सहायता से पुनः लिखना श्रेयस्कर होगा। यदि उनको उपराद और राजनीतिक कारणों से यह कार्य करने में कुछ संकोच अनुभव होता है, तो भारतीय लोगों को अपने अपंग और विकृत इतिहास के पुनर्लेखन-कार्य के अंश के रूप में यह कार्य अवश्य हो करना होगा।

: २५ :

प्राचीन इटली हिन्दू-देश और पोप हिन्दू-पुरोहित था

मानव-स्मृति अत्यन्त क्षणिक एवं अल्पकालिक होने के कारण ज्यो-ज्यों समय बीतता जाता है, प्राचीन इतिहास कमशः भूलता जाता है। ज्वालामुखी-विस्फोटों और भूचाल जैसे प्राकृतिक विघ्नों द्वारा भी इतिहास को विनष्ट कर दिया जाता है। किन्तु इतिहास का सर्वाधिक विनाश करने वाला एक अन्य तीसरा कारण दमनात्मक और विनाशक मानव स्वभाव है।

इन सब कारणों के सामूहिक प्रभाव-वश एक प्राचीन हिन्दू विश्व-साम्राज्य के सभी चिह्न इतिहास की सभी प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों से समाप्त हो चुके हैं। प्रथम दो प्राकृतिक विनाश-लीलाएँ सभी सभ्याताओं के लिए समान रूप से घातक होने के कारण हम यहाँ पर तीसरे कारण पर ही विशेष प्रकाश डालेंगे।

ईसा-पूर्व युग में वैदिक सभ्यता विश्व में फैली हुई थी ज्योंकि सुदृश, उत्साही भारतीय जनता का नीतिकाव्य, ऋग्वेद में उल्लिखित 'कृष्णन्तो विश्व आयंम्' (सम्पूर्ण विश्व को आयं बनाओ) था। सक्रियों की संज्ञा से सम्बोधित होने वाले भारतीय योद्धाओं की सेनाओं का विश्व के सभी ओर-छोरों में प्रभुत्व हुआ तथा भारतीय शासकों एवं प्रशासकों ने समस्त मानव-समुदाय में ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया।

उस हिन्दू सभ्यता को प्रथम बार ईसाई मत ने, और बाद में भयंकर पातनाओं और आतंक द्वारा इस्लाम प्रसारित करने वाले अरबों ने मालाल और तलबार के बल पर कमज़ोर किया था। इन सब बाधाओं के होते हुए

भी हिन्दू सम्भवता के विश्व-व्यापी प्रसार की कहानी का ताना-बाना पुनः संग्रह कर पाना सम्भव है।

ईसा-पूर्व युग में, इटली का एक बहुत बड़ा भाग 'एटरुरिया' के नाम से विद्युत का और सातवी से दूसरी शताब्दी ईसा-पूर्व तक वहाँ जन्मी, सम्बद्धित हुई सत्तति का नाम 'एटरुस्कन' था। एटरुस्कनों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' और स्पष्टतः अन्य विश्व-कोशों में भी है।

जधिकांश विद्यानों का मत है कि एटरुस्कन लोग पूर्व दिशा से आये थे और वे इटली में अकस्मात् ही इस प्रकार दृष्टिगोचर होने लगे थे मानो किसी अन्य स्थान से न आये हों।

यह धारणा निराधार है कि एटरुस्कन अकस्मात् ही किसी अन्य देश से अस्थायी रूप में आ गये थे और फिर ईसा से दो शताब्दी पूर्व के आस-पास अन्यत्र चले गये—इटली को सदैव के लिए छोड़ आये। एटरुस्कन सम्भवता स्वयं इटली से ही उद्भूत हुई थी और इसका पूर्धक् अस्तित्व तब समाप्त हो गया, जब इटली की जनता ने (जो उस समय एटरुस्कनों के नाम से जानी जाती थी) विश्वासावश ईसाई धर्म अंगीकार कर लिया।

इस प्रकार, ईसाइयत ने पूर्वकालिक एटरुस्कन जीवन-पद्धति के सभी लक्षणों को छव्वत कर दिया। इसलिए, इसमें कोई व्यवधान असातत्य उत्पन्न नहीं हुआ है। आज के इटलीवासी एटरुस्कन नाम के पूर्वकालिक व्यवितयों के बाबज हैं। इसी काम में एटरुस्कन लोग भी उन प्राचीन इटलीवासियों के ही बंशज हैं जिनकी जीवन-पद्धति को विश्व अभी तक पहचान नहीं पाया है, उसका स्रोत निश्चित नहीं कर पाया है। मैंने कुछ साह्य-संकलन किया है जो सिद्ध करता है कि ईसा-पूर्व युगीन इताजवी जन-समुदाय, चाहे वह एटरुस्कन-युग का ही अवयवा उससे पूर्व-युग का, हिन्दू था।

इटली में वैदिक जीवन पद्धति और संस्कृत का प्राचुर्य इसी तथ्य से लक्षित किया जा सकता है कि लगभग २,००० वर्ष तक ईसाई धर्म की उद्घोषणा करने वाले भी इटलीवासी ईसाई-नामों के अन्तर्गत हिन्दू रीति-रिकार निषा रहे हैं।

सम्भव रही तथाकथित ईसाई-कैथोलिक धार्मिक-कृत्य, कर्मकाण्ड

और त्यीहार हिन्दू-मूलक हैं। चिर-वित्तमरणीय समय से ही समस्त इटली-वासियों द्वारा उनका अनुसरण किया जा रहा है, जब वे हिन्दू थे, आज भी उन्हीं मान्यताओं के अनुसार सारा जीवन व्यतीत किया जा रहा है जाहे इटलीवासी और सभी स्थानों के कैथोलिक व्यक्ति जब स्वयं को ईसाई ही घोषित कर रहे हैं।

'ऑल सोल्स डे' समारोह का उदाहरण लें। स्वयं यह शब्दावली संस्कृत, हिन्दू संस्कार, 'सर्व-पितृ-अमावस्या' का अंग्रेजी रूपान्तर है। संस्कृत के 'सर्व' का आंग्ल प्रति शब्द 'ऑल' है। 'पितृ' पूर्वजों की आत्माओं का द्योतक है, और 'डे' यानी 'अमावस्या' (नव-चन्द्र) दिवस है।

'क्रिस्तमास' शब्द कृष्ण-मास वर्षात् महाभारत-युग के समय हिन्दू अवतार कृष्ण-मास है। संस्कृत में 'मास' शब्द का अर्थ 'महीना' है क्योंकि महाभारत युद्ध में, जो दिसम्बर में हुआ था, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'मगवदीता' का उपदेश दिया था, इसीलिए सारा विश्व दिसम्बर मास को कृष्ण-मास के रूप में मनाता है।

ईसाई लोगों का यह विश्वास असत्य था कि 'क्रिसमस' (क्रिस्तमास) तो दिसम्बर मास का अन्तिम सप्ताह था। 'मास' प्रत्यय इस बात का द्योतक है कि 'क्रिस्तमास' शब्द मूलतः संस्कृत शब्द है जो पूरे मास को ही बताने वाला है।

इस बात को एक अन्य पर्याय, अर्थात् 'एक्स-मास' से तुलना करके प्रमाणित किया जा सकता है। ईसाई लोगों का यह विश्वास गलत है कि 'एक्स-मास' शब्दावली दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह की द्योतक है। क्योंकि 'एक्स' प्रतीक रोमन-संख्यावाची दस का सूचक है। भतः 'एक्स-मास' शब्दावली भी पूरे दिसम्बर महीने का द्योतक है। 'दिसम्बर' शब्द भी संस्कृत 'दश-अम्बर' (आकाश-मण्डल स्थित १२ राशि चन्द्र का) — दसवीं भाग एवं मास है। इससे अर्थ लगाया जा सकता है कि प्राचीन हिन्दू परम्परा ने आकाश-मण्डल, राशिचक्र के १२ भागों को १२ मासों के नाम प्रदान किये थे।

यह तथ्य सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर मासों के द्योतक संस्कृत के बारे शब्दों सप्त-अम्बर, अष्ट-अम्बर, नव-अम्बर और दश-अम्बर

से पूर्णतः पुण्ड होता है। भाव यह है कि अपने संस्कृत अर्थद्वारा उन्‌
कार ये मास वर्ष के सातवें, आठवें, नवे और दसवें मास हैं। ग्रेगरी पंचांग
में वह संस्कृत ज्यवस्तिति किस कारण उपस्थित हो गयी? अर्थात् सातवें,
में वह संस्कृत ज्यवस्तिति किस कारण उपस्थित हो गयी? अर्थात् सातवें,
नवे और दसवें मास को नवें, दसवें और म्यारहवें तथा बारहवें मास का
आठवें, नवे और दसवें मास को नवें, दसवें और म्यारहवें तथा बारहवें मास का
स्थान देने का कारण क्या था? इस स्थान-परिवर्तन का स्पष्टीकरण इस
तथ्य से हो जाता है कि प्राचीन, स्मरणातीत युग से चली आयी हिन्दू पढ़ति
तथ्य को अपना कारण क्या था? इस स्थान-परिवर्तन का स्पष्टीकरण इस
तथ्य से हो जाता है कि प्राचीन, स्मरणातीत युग से चली आयी हिन्दू पढ़ति
तथ्य के अनुसार नानै मास में नव-वर्ष का प्रारम्भ मासते आये ईसाइयों ने
'बकस्मात्' ही १ जनवरी को नव-वर्ष दिवस मनाना शुरू कर दिया।
स्पष्ट है कि 'दिसम्बर', 'एक्स-मास' और 'किसमस' (क्रिस्तमास) आदि
शब्द दसवें मास के द्वारा दिये गये हैं। 'क्रिस्तमास' शब्द का तो अन्य महत्त्व भी
है—अर्थात् यह 'कृष्ण-मास' भी है; अर्थात् भगवान् कृष्ण की स्मृति का
मास है जब उन्होंने अपना महोपदेश अर्जुन को दिया था। भारत में उस
ज्ञानोपदेश की वर्षगाठ 'गीता-ज्यन्ती' के रूप में मनाते हैं, और वह
दिसम्बर मास में ही होती है। ईसा (क्रिस्त) का आरुद्धावस्था में उपदेश
दससु मिलावस्था नहीं है जो कृष्ण ने रथारुद्धावस्था में अर्जुन को दिया
था। अतः कृष्णोपदेश बास्तव में आरुद्धावस्था में उपदेश ही है।

'आमीन' कहने की ईसाइ-पढ़ति भी उस संस्कृत, हिन्दू पढ़ति से
व्युत्पन्न है जिसमें सभी शूभ-कार्यों की परि-समाप्ति "शान्तिः, शान्तिः"
लगते हैं की जाती है।

इसी प्रकार, 'क्रिस्तमास', अथवा 'माइकेल-मास' ईसाइ शब्दावली
हिन्दू शब्दावली 'अधिक-मास'—'आवण-मास' पढ़ति की है।

हिन्दू काल-पदक को ईसाइ धारण करते हैं, वह बास्तव में हिन्दू स्वस्तिक
चिह्न है, यद्यपि अन्य मासलों के समान ही इसमें भी थोड़ी-बहुत हेराफेरी
कर दी गयी है—उसके अनुशंशा काट दिये गये हैं और कास की आड़ी पट्टी
लगभगी कर दी गयी है।

किसमस (क्रिसमस) का सम्बन्ध कृष्ण से समझ लेने के बाद अब
वह दूरवर्गम करता कहिन तहीं है कि 'माइकेलमास' मूलतः माइकेल के
नाम पर 'मास' का द्वारा दिया गया। 'माइकेलमास' शब्द में 'मास' प्रत्यय स्पष्ट
है तो उत्तराता है कि इस पूर्ण शब्द से पूरे मास की अभिव्यञ्जना होती थी,

न कि मात्र २३ मितम्बर की। 'माइकेल मास दिवस' ईसाइ शब्द में उच्च
भाव विरोध है जिसमें एक मास को 'दिवस' बना दिया गया है।

१ नवम्बर को मनाया जाने वाला 'आंत सेट्स डे' हिन्दू शब्दावली
दिवस (पर्व) है जो नरक चतुर्दशी कहलाता है। इस दिन भगवान् विष्णु
ने नरकासुर को मारकर पाताल भेज दिया था और पृथ्वी सभी सत्ताओं के
लिए सुरक्षित हो गयी थी। इसीलिए हिन्दू प्रथा के अनुसार ईसाइ परम्परा
में भी इस दिवस को पृथ्य पर्व, प्रीतिभोग आदि के रूप में मनाया जाता

है। कादर का द्वोतक 'पोप' पद भी संरक्षक की वर्द्धद्वारा संस्कृत की
'प' धातु से व्युत्पन्न है। अपने वच्चों को संरक्षण प्रदान करने वाले पिता
के समान ही 'पोप' ईसाइ धर्म संघ, समुदाय का आध्यात्मिक पिता
(संरक्षक) है। 'पोप' उपाधि जिस संस्कृत धातु से व्युत्पन्न है उससे स्पष्ट
है कि पोप एक हिन्दू पुरोहित था। पोप का स्थान रोम नगर में स्थित
वाटिकान नामक पीठ, हिन्दू धर्म-पीठ था। 'वाटिका' शब्द कूज, निकुज,
लतामण्डप आदि का द्वोतक (शब्द) संस्कृत का है, यथा 'आश्रम वाटिका',
'उद्यान वाटिका' आदि में। हिन्दू सन्त-महात्माओं और पुरोहितों के एकान्त
आश्रम स्थान वाटिकाएँ कहलाते थे यद्योंकि वे लोग सदैव शान्तिपूर्ण साधक
थे, अतः अन्यस्थलों में रहते थे। 'न' अन्तिम अकार भी संस्कृत का है, यथा
'केशवन्' या 'राघवन्' या 'वाटिकान्' या 'आश्रम' में।

इस बात का एक अन्य प्रमाण कि पोप एक हिन्दू पुरोहित या और
उसकी वाटिकान धार्मिक हिन्दू पीठ थी, भगवान् शिव के प्रतीक उस शिव-
लिंग में उपलब्ध होता है जो वाटिकान श्वित एट्लस्कन-संश्लालय में
सुरक्षित है। यह शिवलिंग उन वस्तुओं में से एक है जिसे हिन्दू पोप
(पुरोहित) पूजता था। हमारे पास उस पवित्र हिन्दू शिवलिंग का चित्र है
जो वाटिकान के एट्लस्कन-संश्लालय में दर्शनार्थ रखा द्रुआ है। उसे देखकर
मन में पूरा विश्वास जम जाता है कि यह तो परम्परागत हिन्दू शिवलिंग का
प्रतीक है। 'एन्साइक्लोपीडिया श्रिटैनिका' से भी जात होता है कि एट्लस्कन
लोग उत्कीर्ण कुसी पर आरुद्ध उल्का के प्रस्तर की पूजा किया करते थे।
स्पष्टतः, शिवलिंग का ही यह सही प्रत्यक्ष विवरण है।

एन्साइक्लोपीडिया के आठवें खण्ड के पृष्ठ ७६० पर निम्नलिखित जानकारी है—

लिंगी के अनुसार किसी भी अन्य "राष्ट्र की अपेक्षा एट्रहस्कन लोग धार्मिक रीति-रिवाजों में अधिक लिप्त थे।... स्थानों, वृक्षों और पुस्तकों में सम्भवतः सभी की अपनी पृथक् आत्माएँ थीं, और उत्कृष्ट कुसियों पर स्थित अनेक पावन उल्का के या बालुकाइम प्रस्तर पाये गये हैं।"

उपर्युक्त अवतरण में चार ऐसी विशिष्टताएँ हैं जिनसे सिद्ध है कि एट्रहस्कनों की आत्मा हिन्दुत्व पर थी। वे हैं—मूरकों का अग्निदाह-संस्कार; उनकी धर्मपरायणता; स्थानों-वृक्षों-प्रस्तरों की पूजा करने का उनका आचरण और शिवलिंग का अर्चन-वन्दन। पुरातन पंथी हिन्दू लोगों के लिए दिन भर कर्मकाण्ड का विधान है। हिन्दू लोग शिव अथवा हनुमान के प्रतीक पत्थरों तथा तुलसी, पीपल वृक्षों व गंगा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा नदियों को पूजते हैं।

इसी खण्ड के पृष्ठ ७८४ पर टिप्पणी है कि एट्रहस्कन लोगों द्वारा देवता-द्योतक 'ईश' शब्द एक वचन में और 'ईश्वर' शब्द देवताओं के अर्थ सूचक वहूवचन शब्द के रूप में प्रयुक्त होता था। ये संस्कृत के शब्द हैं।

एन्साइक्लोपीडिया में जिन अन्य शब्दों का उल्लेख किया गया है उनमें गेट, बलिदान का अर्थसूचक 'अल्पन' संस्कृत का 'अर्पण' है; मात का अर्थ-वाचक 'अति' संस्कृत के 'माता' अथवा देवों और दैत्यों की जन्मदात्री 'ऋदिति' और 'दिति' नामक दो देवियों के सूचक शब्दों से व्युत्पन्न है। इसी के लिए 'पिथा' संस्कृत का 'प्रिया' शब्द है।

पौप वर्ष भर जिन कैथोलिक रीति-रिवाजों को पूरा करता है वे प्राचीन हिन्दू धार्मिक पवं ही है। सभी दिवाश्रों की शृङ्खि-हेतु सभी दिवाश्रों में जल छिड़ने की प्रथा—जैसी मम्पुणि अंगीकृत प्रक्रिया प्राचीन हिन्दू पढ़ति है।

इसी प्रकार का एक धार्मिक-कर्म पौप द्वारा शिशु के चरण-प्रक्षालन है। हर समय पौरों को भोजों और जूतों से ढके रखने की प्रशिक्षित परम्परा में ऐसी धार्मिक-प्रथा अधिकारीय थी, जबकि हिन्दू-प्रथाओं में अनेक धार्मिक अवयवों पर एक-दूसरे के पैर धोने का विधान है। गिरजाघरों में, पादरी के पवित्र परिधान चित्र कमरे में रखे जाते हैं उसे बेश-भूषा के

द्वौतक संस्कृत शब्द 'बस्त्र' के कारण 'बस्त्र' कहते हैं। 'बस्त्र' शब्द संस्कृत का है, जिसका अर्थ बस्त्रागार है।

पवित्र, गम्भीर, पावन गीतों, रागों अथवा पद्मों का अर्थद्योतक भ्रंगी 'साम' (पी० एस० ए० एल० एम०) संस्कृत का 'साम' शब्द है; यथा सामवेद में।

सामवेद की स्मृति वाइवल में साम, सामोडि, सामिस्ट आदि शब्दों के रूप में सदा के लिए समाज गयी है।

'ड्रूड्स' नाम से पुकारा जाने वाला यूरोपीय समुदाय प्राचीन हिन्दू द्रविड़ों की एक धार्मिक शाखा है। शब्दकोण उनको प्राचीन गोंत, विटेन और आयरलैंड में एक अति प्राचीन धर्म-सम्प्रदाय के रूप में घोषित करता है। आधरिता और वैल्श वीर-गाथाओं तथा परवती ईसाई-कवाओं में 'ड्रूड्स' लोग ऐंद्रेजालिकों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, वे कि हिन्दू पुरोहितों और दार्शनिकों के रूप में। यह इस बात का स्पष्ट संकेतक है कि यूरोप के 'ड्रूड्स' वैसे ही हैं जैसे भारत के द्रविड़। वे जातीय समूह नहीं हैं। वे तो पुरोहितों और दार्शनिकों के ऐसे समूह हैं जिनसे आशा की जाती थी कि वे मन्त्रों और पूजा-अर्चना के बल से चमत्कार कर सकते थे। प्रसंगवग, यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आयों और द्रविड़ों को परस्पर प्रतिड्विद्यों के रूप में प्रस्तुत करना भी गलत है। वे तो प्राचीन हिन्दू समुदाय हैं जो हिन्दुओं की धार्मिक पूजन-पढ़ति, ज्ञान-विज्ञान और वैदिक व्यवहार में परम दक्ष थे। वे तब यूरोप गये थे जब भारतीय धर्मियों का विश्व पर आधिपत्य था।

यहूदियों का जनक और पितरों में प्रथम अबाहम, हिन्दू धर्म, सूष्टि-कर्ता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अबाहम हिन्दू धर्म का अपर्ज्य उच्चारण-मात्र है। पिता का द्वौतक स्वयं 'पैट्रिक आर्क' शब्द 'पित' से व्युत्पन्न है। इतालवी और लातीनी भाषाएँ संस्कृत से भरी पड़ी हैं क्योंकि प्राचीन इतालवी संस्कृत बोलते थे। उसके उदाहरण संस्कृत के शीर्णन्, श्रीमती से व्युत्पन्न सीनौर, सिनोरीता हैं।

जैसा इसके नाम से ही प्रत्यक्ष है, बेटिकन इटली में सर्वोच्च परम्परागत हिन्दू पीठ है। यह भारत में जगद्गुरु शंकराचार्य की पदधी जैसी ही है।

पोष को हिन्दू पुरोहितों की वह शक्ति प्राप्त थी जिसकी भू-भूगिमा कम्पित होते ही बड़े-बड़े ग्राम-जाट और साम्राज्य धराशायी हो जाते थे। तथ्य तो यह है कि पोष गूरोण में हिन्दू शंकराचार्य ही था। 'पाप-ह' (यानि पापहर्ता) कहने सहित शब्द हो 'पोष' बन गया है।

प्राचीन इतालवी न केवल वेदों का गायन और शिवलिंग की पूजा करते थे, अपितु अपने अलंकृत कलशों तथा अलंकृत फलकों पर रामायण के प्रसंगों को चित्रित किया करते थे। वे रामायण को गीत-रूप में गाते फिरते थे। मेरे पास उन एटरस्कन चित्रों की प्रतिकृतियाँ हैं जिनमें रामायण-गाया के प्रसंग चित्रित हैं। बंगले पृष्ठों पर कुछ ऐसे चित्र दिये जा रहे हैं—जो वही से प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक चित्र में राम, सीता और लक्ष्मण एक दूसरे के पीछे चलते हुए बन में से गुजर रहे हैं जैसा रामायण में बर्णित किया गया है, अन्य चित्र में भरत अपने बड़े भाई श्रीराम से भेट करने के लिए आ रहे हैं, विभीषण अपने भाई रावण को समझा रहे हैं कि वे विलाप करती हुई सीताजी को बापस लौटा दें, युवराज लव और कुश रामचन्द्र जी द्वारा अस्वमेघ यज्ञ हेतु छोड़े गए अश्व को पकड़कर ले जा रहे हैं, और एक अन्य चित्र में वानर-प्रमुख सुप्रीव की पत्नी तारा पर अधिकार करने के लिए बाली और सुप्रीव परस्पर मुठिका युद्ध में संलग्न दिखाये गये हैं। यदि एटरस्कन चित्रों की अति सावधानीपूर्वक छानबीन की जाय, तो आशा है कि रामायण के अन्य बनेक दृश्य भी चित्रित किये हुए प्राप्त हो जाएँ।

इसी कारण हमारा साध्य ह कवन है कि यदि वेटिकन-परिसीमा में गीतिवद क्षय में पुरातत्त्वीय उत्तरानन-कार्य किया जाय, तो निश्चित ही न केवल अनेक शिवलिंग ही, अपितु हिन्दू देवगणों में से अनेक अन्य देवमूर्तियाँ भी उपलब्ध होंगी। इस कार्य के लिए वेटिकन की भाँति अन्य प्राचीरों, शूमि के नीचे के सभी तहसानों और सभी प्रांगण को पूरी तरह छोड़ने की आवश्यकता होंगी। यह बिल्कुल स्पष्ट बात है कि चूंकि ईसाइयत ने रोम और इटर्मी के शाय भाग में प्राचीन हिन्दू-आस्था को निःपोष कर दिया था, अतः उन पुनीत हिन्दू शादिका-परिसीमाओं में विद्यमान प्रचुर संख्यक देव-

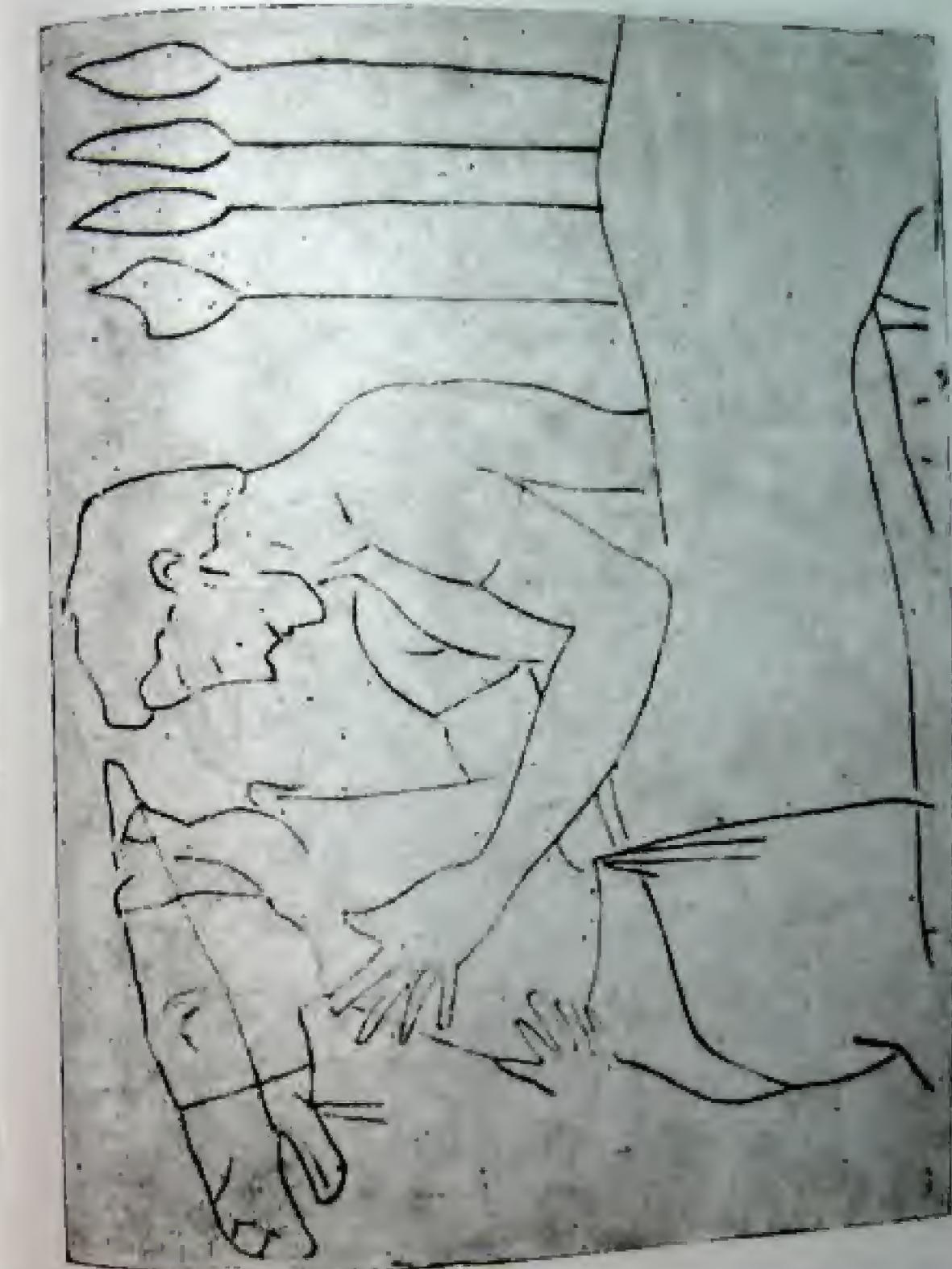
प्रतिमाओं को तोड़ा और दूर फैका गया, दीवारों में जून दिया गया, शूमि में गाढ़ दिया गया, अथवा किसी अन्य प्रकार से नष्ट कर दिया गया था।

अभी तक यही विश्वास किया जाता था कि रामायण का प्रभाव भारत से बाहर इण्डोनेशिया और इण्डोचीन प्रदेशों में ही पड़ा था, किन्तु एटरस्कन सम्यता की उपलब्धि इस बात की दौतक है कि जब अति प्राचीन काल में भारतीय लक्ष्मणों ने विश्व पर शासन किया था तब विश्व के ऊन भागों में भी रामायण का गायन हुआ था और उसके प्रसंगों को वही चित्रित भी किया गया था।

आगे अन्वेषण से पूरी सम्भावना है कि पर्याप्त विलुप्त अववा विस्मृत जानकारी प्रत्यक्ष हो जायें। इस सबसे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन इटली-वासी हिन्दू थे, उनकी धार्मिक-वृत्ति हिन्दू थी, वे हिन्दू-देवगणों की पूजा करते थे और उनके प्रधान-पुरोहित पोष ही हिन्दू चिधि-विधानों का परिपालन करते/कराते थे।



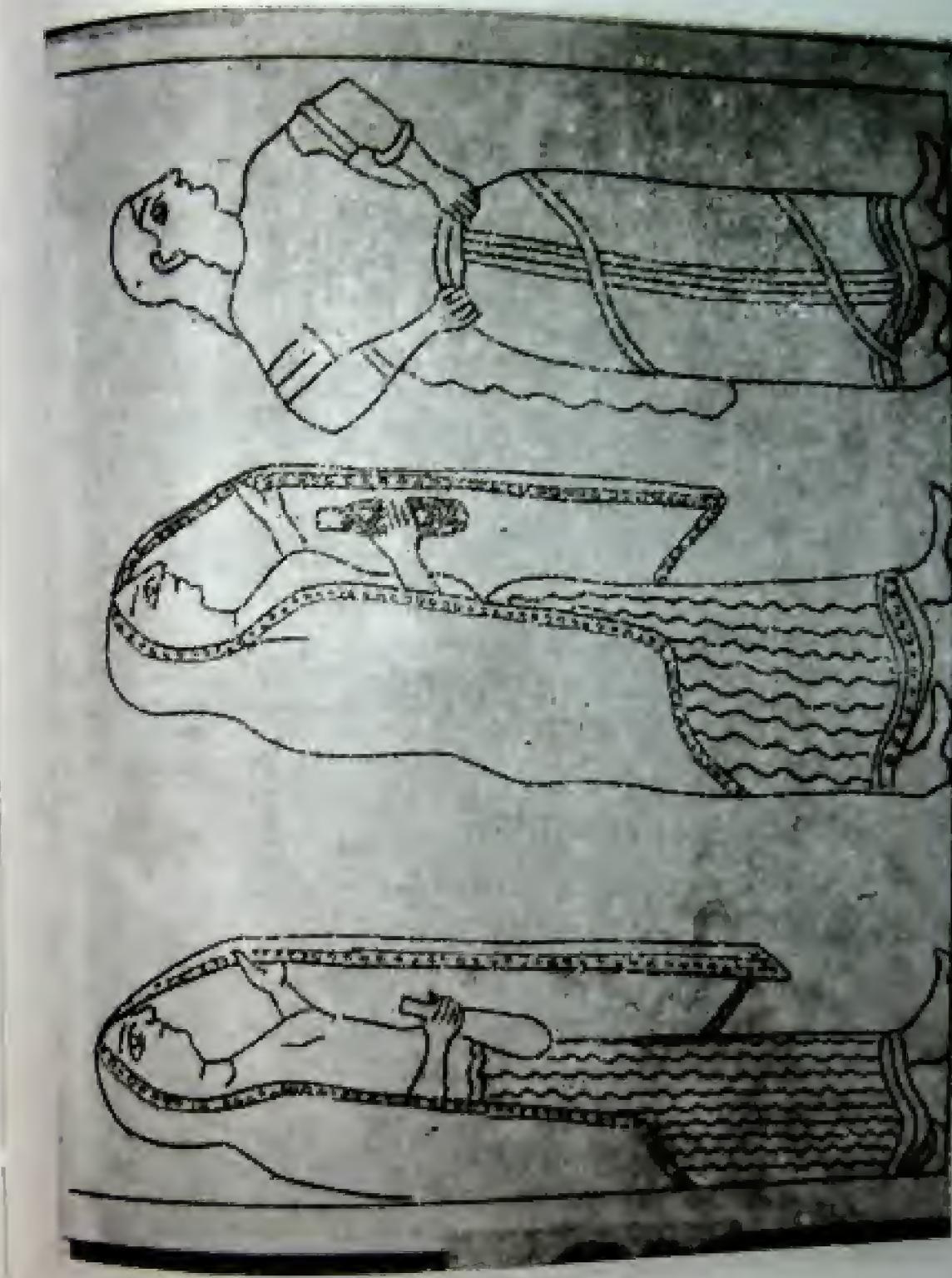
राम, सीता और लक्ष्मण। सीता के हाथ में परिव्रत 'तुलसी' पौधे की एक छोटी टहनी सप्त दिनायी दे रही है।



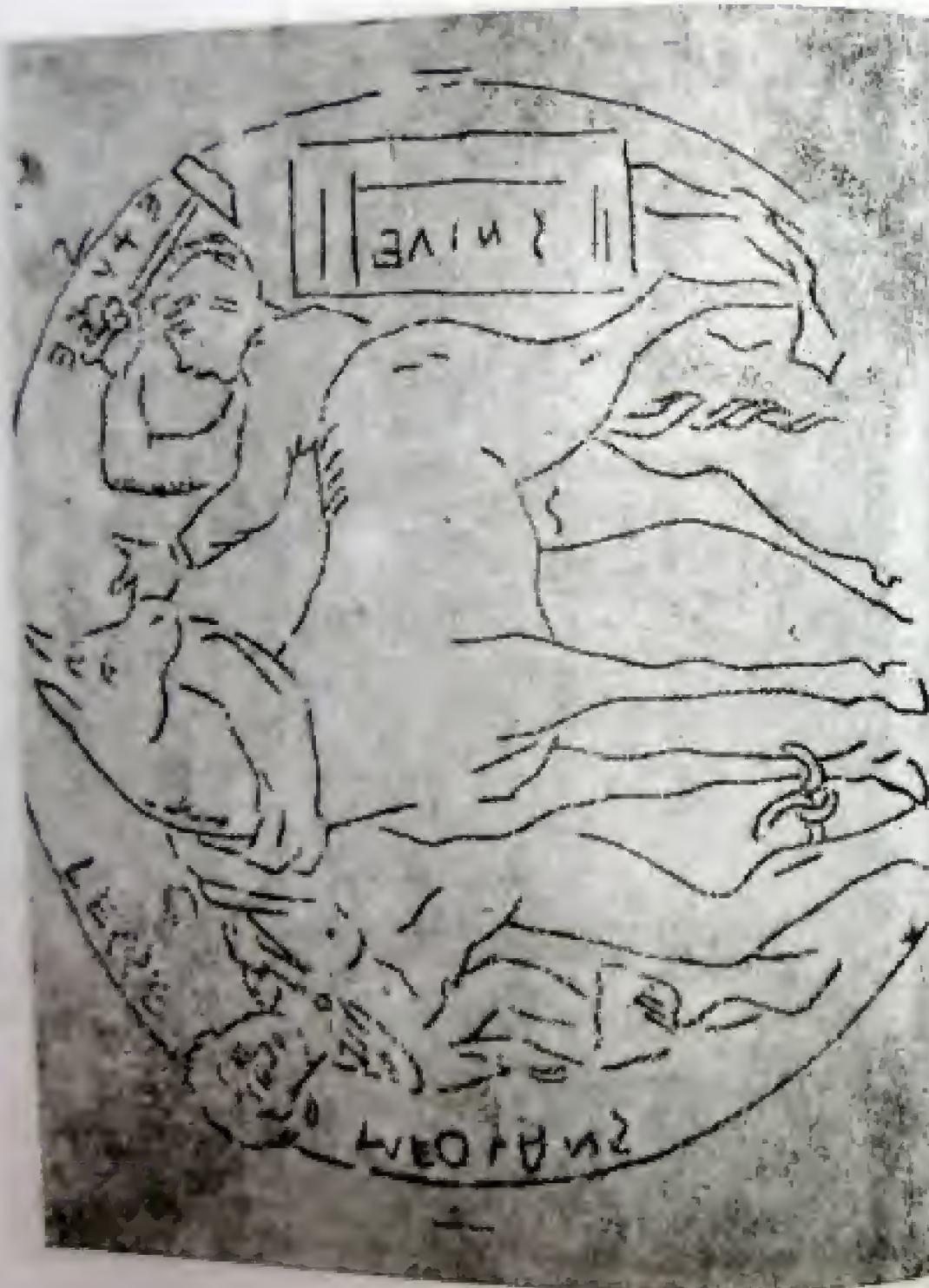
भरत राम से भौंट करने के लिए आमताकड़ होकर बत में से जा रहे हैं।



लोका की मुहित के लिए विमोचन (भारतीय चेता-भूषा धारण किए हुए)
राजन की समझा रहे हैं।



कोसल्या, राजा दशरथ को भग्न थे परिहरों के माध्य परिषद् औरपाल करने को उठाता है।



तथा कोर कुमा भाषण में प्रयोग के बोहे को पाण्डु कर दूर ले जा रहे हैं।



बानर प्रमुख बालि और सुप्रोद, तारा की प्राप्ति-हेतु भाग रहे हैं।



समर्पण मुश्कील को बचाते हुए

: २६ :

अरेबिया, इराक, ईरान किसी समय हिन्दू-देश थे

१२००-वर्षीय विदेशी शासन के काल में भारतीय इतिहास न केवल बुरी तरह विकृत कर दिया गया है, अपितु इसे पंगु भी बनाया गया है। भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और सैनिक दिग्विजयों के अनेक महत्त्वपूर्ण अध्याय पूर्ण रूप में विलुप्त एवं विस्मृत हो चुके हैं।

(प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों) भारतीय पुराणों में 'दिग्विजयों' के सन्दर्भों को पवित्र कल्पनाएँ कहकर उपेक्षित नहीं करना चाहिये, वे सब सत्य हैं क्योंकि अब कुछ साक्ष्य उपलब्ध हैं कि सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया के साथ-साथ अरेबिया, इराक और ईरान भी किसी समय हिन्दू-धर्म के अनुयायी थे और वहाँ वेदों का गायत्र हुआ करता था।

प्राचीन अरबी ग्रन्थावली "सेअरूल-ओकुल के २५७वें पृष्ठ पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण कविता है। इसका रचियता लबी बिन-ए अक्तब बिन-ए तुरफा है। वह पैगम्बर मोहम्मद से २३०० वर्ष पूर्व हुआ था। इतने समय पूर्व भी अरबी लगभग १८०० ई० पूर्व भी लबी ने वेदों की अनन्य, काव्य-मय प्रशंसा की है तथा प्रत्येक वेद का अलग-अलग नामोच्चार भी किया है।

वेदों की प्रशंसा में कही गई कविता उसकी अरबी में इस प्रकार है:

"अया मुवारेकल अरज युग्मे तोहा मिनार हिन्दे।
व अरादकल्लाह मञ्योनञ्जेत जिकरतुन ॥१॥
वहलतजल्लीमतुन ऐनाने सहबी अरवे यतुन जिकरा।
वहाजेही योनञ्जेलुरसूल मिनल हिन्तुन ॥२॥
यकूलूनल्लाहः या अहलल वरक आलमीन कुलहुम।
फल्लेवेऊ जिकरतुल वेद हुक्कुन मालम योनञ्जेलतुन ॥३॥

वहोवा आलमुस्साम बल यजुरमिनत्त्वाहे तनजीलन ।
कए नोमा या अरबीयो मुत्तेजन योद्दमीरीयोन जातुन ॥४॥
बहुमनेन हुमारिक अतर नासेहीन का-अ-खुबातुन ।

ब असनात अलाइन व होवा मश-ए-रतुन ॥५॥

उस पृष्ठ का सार नयी दिल्ली में रीडिंग रोड पर बने लक्ष्मीनारायण मन्दिर (जिसे बहुमा 'विडला मन्दिर' कहते हैं) कि बाटिका में यज्ञशाला के सामने पर काली स्थानी में दिया गया है, इच्छुक महानुभाव जाकर देख सकते हैं।

झपर की कविता का अर्थ निम्न प्रकार है—

(१) 'हे भारत की पुण्य भूमि ! तू धन्य है क्योंकि ईश्वर ने अपने जान के लिए तुमको चुना है ।

(२) वह ईश्वर का ज्ञान-प्रकाश, जो चार प्रकाश-स्तम्भों के सदृश तन्मूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, वह भारतवर्ष में कृष्णियों द्वारा चार हृप में प्रकट हुए ।

(३) और परमात्मा समस्त संसार के मनुष्यों को आज्ञा देता है कि जेद, जो मेरे ज्ञान है, इनके अनुसार जागरण करो ।

(४) वह ज्ञान के भण्डार माम और यजुर है जो ईश्वर ने प्रदान किये। इसलिये, हे मेरे भाइयो ! मानो क्योंकि ये हमें मोक्ष का मार्ग बताते हैं ।

(५) और दो उनमें से रिक् अतर (कृष्णवेद और अथर्ववेद) हैं जो हमको आत्मत्व की शिक्षा देते हैं, और जो इनके ग्रन्थ में आ गया, वह कभी अनुकार को प्राप्त नहीं होता ।

झपर दी गयी अरबी-कविता इस्लाम-पूर्व समय के अरेबिया में सर्वोत्तम पुस्तकार विजेता और सूच्यकान थी और काबा-देवालय के भीतर स्वर्ण-बहुमतों में उत्कृष्ट होकर टैंगी थी। उस देवालय के चारों ओर बत्तमान विजेतित स्मारक मन्दिर था जिसमें ३७० हिन्दू-देवगणों की मूर्तियाँ थीं। इस कविता वे स्पष्ट रूप में दर्शाया गया है कि अरब लोगों के हृदय में भारत और जेद के प्रति और उक्ती के पालस्वरूप मन्त्रहृत भाषा तथा भारतीय वाक्यांति के प्रति अनुग्रह, अग्राह अद्दा इस्लाम-पूर्व-काल में विद्यमान थीं।

लबी भी स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है कि मानव-सौहार्द एवं एकात्म भ्रातृत्व के भारतीय सिद्धान्तों में अरब लोगों को प्रेरणा भी कृष्णवेद और अथर्ववेद के अध्ययन से ही मिली थी। एक सम्माननीय प्राचीन अरब-कवि का यह कथन भी सिद्ध करता है कि भ्रातृत्व को सर्वप्रथम प्रचारित करने का इस्लामी उद्घोष सही नहीं है।

प्राचीन अरब-वासी लोग वैदिक परम्परा का अनुसरण करते थे—इस सम्बन्ध में अन्य साक्ष्य भी है जो सिद्ध करता है कि वे हिन्दू जीवन-पद्धति का अनुसरण करते थे।

सम्पूर्ण प्राचीन अरेबिया में हिन्दू-पूजा की विद्यामानता मख्मेदिनी के संस्कृत-नामों से और भी पुष्ट होती है। आज जिन्हें मक्का-मदीना कहा जाता है, वह स्थान-युगम मख्मेदिनी है। मख का अर्थ यज्ञाग्नि है, और मेदिनी का अर्थ भूमि है। अतः मक्का-मदीना के नगर-युगम 'यज्ञ की भूमि' अर्थात् 'अग्नि-युजा' के स्थल हैं। और इसी विवरण के सत्य-अनुरूप हमें ऐसे वर्णन उपलब्ध होते हैं जिनसे जात होता है कि पैराम्बर मोहम्मद के युग में वैदिक पशु-बलि का प्रचलन था। उनके सम्बन्ध में सर्वप्रथम सन्दर्भ पैराम्बर मोहम्मद के जीवन की ज्ञांकी और स्मृतियों के सर्वप्राचीन संकलन में प्राप्त होता है। इस संकलन को इब्न इशाक ने तैयार किया था।

पैराम्बर मोहम्मद कुरु परिवार से सम्बन्धित थे जो ३७० हिन्दू देव-प्रतिमाओं को संग्रह करने वाले काबा देवालय के बंशानुवंश पुरोहित थे। एन्साइक्लोपीडिया इस्लामिया में उल्लेख है कि इन प्रतिमाओं में लाट, मनाट, उज्ज्वा, शनि और चन्द्र की प्रतिमाएँ थीं। 'लाट' शब्द हिन्दू पवित्र नाम होना इसी तर्थ से परखा जा सकता है कि एक प्राचीन हिन्दू लगोल-शास्त्रीय मीमांसा के लेखक का नाम लाट-देव है। नवग्रह-पूजा में, जो भारत में आज भी प्रचलित है, शनि और चन्द्र सम्मिलित हैं। काबा में ३७० देव-प्रतिमाओं में शनि और चन्द्र के प्रति सन्दर्भ सिद्ध करता है कि नवग्रह-पूजा काबा में भी प्रचलित थी।

इस्लामिया और विटेनिका एन्साइक्लोपीडिया में 'काबा' शब्द के भूलोद्धव के सम्बन्ध में विचित्र अज्ञानता को स्वीकार किया गया है, परंतु जन-प्रचलित, अज्ञानी धारणा-वश 'काबा' को एक इस्लामी देवालय ही

समझा जाता है। यदि यह मौलिक रूप में इस्लामी देवानय रहा होता, तो इसको व्युत्पत्ति अवश्य ही जात होती। किन्तु कावा एक संस्कृत शब्द से व्युत्पन्न है, और अरेडिया का सम्बन्ध संस्कृत-ज्ञान से शताब्दियों से दूटा हुआ होने के कारण उन लोगों को 'कावा' की जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती जो इसे अन्यदि कोजाते हैं।

संस्कृत भाषा में 'भर्म-वृह' का अर्थ सबसे भीतरी आराधना-स्थल है जहाँ देव-प्रतिमा रखी जाती है। सलिल और उच्चारण में तनिक परिवर्तित उन शब्द के दर्जन 'गामा' के रूप में भारतीय प्राकृत भाषाओं में होते हैं। अरेडिया में, सुधिल शब्द भी, इसी प्रकार 'कावा' हो गया।

अल्लाह उन देव-प्रतिमाओं में से एक या जिनकी पूजा कावा मन्दिर में होती दी। संस्कृत भाषा में अल्लाह का अर्थ 'माता' या 'देवी' है। भारत में एक अल्लोपनिषद है और अल्लादिस्तोव (अर्थात् देवी की स्तुति) है।

और भी बहुत काया साध्य उपलब्ध है किन्तु, आइये, हम अब अपना ध्यान इंग्रिज और इराक की ओर भी दें। ये दोनों ही शब्द 'जल' के द्वितक संस्कृत के 'इर' शब्द से व्युत्पन्न हैं। संस्कृत भाषा में 'ईरानम्' शब्द का अर्थ 'भवषयुक्त, निर्जन-पूर्ण प्रदेश' है। अतः 'ईरान' उस धोन्न को दिया गया वह नाम है जिसे संस्कृत भाषी भारतीय अन्नियों ने तब दिया था जब वे उस भू-वर्ष-समूह पर शासन करते थे।

ईरान की जाति ही 'ईराक' पुकारा जाने वाला देश-नाम भी संस्कृत 'इर' वातु से व्युत्पन्न है। 'अलबहनों का भारत' पुस्तक के आमुख में ३१वें पृष्ठ पर हांडर एडवर्ड ही० सशाज का कहना है कि बहुत में वर्तमान गांव नीचहार 'नव विहार' अथात् 'नवीन सांस्कृतिक केन्द्र अथवा आथरम्' से उत्पन्न पंडा है। इस केन्द्र का प्रधानाचार्य, जो स्पष्ट रूप में भारतीय था, परमक रहनाता था। वह मुस्लिम बन जाने के लिए बाध्य किया गया। वह दीर्घार स्वयं को परमक ही कहता रहा। समय अतीत होते-होते वह नाम बरमक के रूप में अग्रदृ उच्चारण होने लगा, और अभी पिछ्ले १० वर्ष पूर्व ही, वह भारतीय परिवार बरमक ही या जो इराक पर शासन करता था।

बहुत नाम में पुकारे जाने वाले धोन्न का नाम भी भारतीय महाकाव्यों में उल्लिखित 'वाह्नीक' से व्युत्पन्न है। संस्कृत का 'व' बहुधा 'इ' बन जाता-

है; यथा वचन—वचन और वासुदेव—वासुदेव। अतः 'वाह्नीक' धोन्न बहुत नाम से पुकारा जाने लगा। वही वह धोन्न है जहाँ 'नव विहार' स्थित है।

डॉ० सशाज हमें यह भी जानकारी देते हैं कि परमक मुस्लिम हो जाने के बहुत समय पश्चात् तक भारत से अपना सम्बन्ध बनाये रहे। परमक जासक अपने लोगों को प्रशिक्षण के लिए भारत भेजते रहे। वहाँ के जासक ने पाठशाला, कार्यालय, चिकित्सालय, वेत तथा अन्य संस्थानों को चलाने के लिए सभी उच्च-अधिकारी भारत से मैगाये हुए थे।

इराक का एक भाग कुदिस्थान कुदों से बसा हुआ है। वे भी अपने अनेक हिन्दू रीति-रिवाज और नामों को धारण किये हुए हैं। उनकी भाषा में भी अनेक संस्कृत शब्द हैं। इराक की राजधानी बगदाद में अभी भी एक अति प्राचीन अग्नि मन्दिर है। वह भवन तो तुलनात्मक रूप में आधुनिक-काल का हो सकता है, किन्तु वह स्थल तो निश्चय ही इस्लाम-पूर्व स्मरणातीत युग का है। जिस प्रकार सोमनाथ मन्दिर बार-बार छस्त हुआ और फिर-फिर बनाया गया; उसी प्रकार यह अग्नि मन्दिर है। अभी भी विद्यमान वह अकेला हमें उन अन्य सहस्रों मन्दिरों की याद दिलाता है जो नाम-शेष कर दिये गये, जिनका आज कोई निशान नहीं मिलता अथवा जो मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये गये।

ईरान का शाही परिवार—पहलबी हिन्दू, धन्तिय, भारतीय परिवार है। पहलबी नाम सर्वप्रथम रामायण में वसिष्ठ जी की कामधेनु अपहरण किये जाने के बल वाले प्रसोंग में आता है। कामधेनु द्वारा अपनी रक्षा के निमित्त उत्पन्न किये गये योद्धा-बगों में पहलबी एक है। विक्रमादित्य के समय में हमें फिर यह नाम मिलता है। पहलब लोग पहलवियों की एक उप-शाखा है। यही नाम महाभारत में भी मिलता है। उनका राजचिह्न—सिंह और उदीयमान सूर्य—भी भारतीय है—यह चिह्न समरकन्द में तेमूरलंग के तथाकथित मकबरे में भी पाया जाता है और वही इसके संस्कृत नाम सूर-सादूल अर्थात् सूर्य-सादूल से ही इसे सम्बोधित भी किया जाता है। आधुनिक इस्लामी परम्परा के लिए यह नाम इतना अधिक विदेशी है कि रूसी-मार्गदर्शक, जो सभी दर्शनायियों को यह बताते हैं कि यह चिह्न-निरूपण 'सूर-सादूल' कहलाता है, इसके अर्थ के प्रति अज्ञान को

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

२४६

मिर सूकाकर स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु किसी भी भारतीय के लिए यह अर्थ विलुप्त स्पष्ट है।

ईरान के विरुद्ध इस्लामी आक्रमणों का ताता प्रारम्भ होने के समय सामान्य जनता का एक बहुत बड़ा भाग भारत आ गया था। वे लोग पारसी सामान्य जनता का एक बहुत बड़ा भाग भारत आ गया था। वे लोग पारसी कहलाते हैं। इतिहास में यह भी उल्लेख है कि ईरान का राजपरिवार भी ईरान को छोड़ देने और भारत में आकर शरण लेने का विचार कर रहा था। सभी देशों द्वारा भारत की ओर लालामित दृष्टि लगाये रखने का था। सभी देशों द्वारा भारत की ओर लालामित दृष्टि लगाये रखने का था। सभी देशों द्वारा भारत की ओर लालामित दृष्टि लगाये रखने का था। अग्नि मूर्ति अवद अनुभव करते थे—जहाँ वेदों का गायन होता था, अग्नि और हिन्दू-देवगणों की पूजा होती थी, तथा हिन्दू कर्मकाण्ड का पालन होता था।

यह सम्पूर्ण साल्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय क्षत्रियों द्वारा दिविजयों—विश्व-विजयों के पुराणगत सन्दर्भ मात्र कोरी कल्पनायें ही नहीं, अपितु सत्य घटनाएं, वास्तविकताएं हैं। दुर्भाग्यवश, पश्चिमी एशिया में भारतीय विजयों के बे अध्याय विलुप्त हैं, और फलस्वरूप विस्मृत होते जा रहे हैं। प्रचलित ऐतिहासिक पाठ्य-ग्रन्थों में उनको उचित स्थान मिलना ही चाहिये।

एक अन्य अति महत्त्वपूर्ण भूत्र पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों को दिये गये नामों में संस्कृत प्रत्यय 'स्थान' की बारम्बार आवर्ती से प्राप्त होता है। इस शृखला में हम अफगानिस्थान, बलूचिस्थान, पठ्ठनिस्थान, काफ़िरिस्थान, पठ्ठनिस्थान, डब्लिस्थान, कुदिस्थान, तुरकिस्थान (आधुनिक तुर्की), अवस्थान (आधुनिक अरेबिया) तथा अन्य बहुत सारे 'स्थान' प्राप्त होते हैं। इसी के माध्यमांश हम पहले ही देख चुके हैं कि ईरान, बलख व इराक संस्कृत नाम हैं। इसी प्रकार 'ओक्सस' नदी व 'ओवसानिया' की व्युत्पत्ति उस नदी के प्राचीन संस्कृत नाम 'अश्वक' से है।

उन क्षेत्रों पर भारतीय शासन के इस साल्य की सामर्थ्य परखने के लिए हम एक समकालीन दृष्टान्त से। हमें अपने ही युग में ग्रीनलैंड, बाइसलैंड, हार्लैंड, बमूतोसैर, बुखानालैंड, सोमालीलैंड जैसे शब्द मिलते हैं जो उम विभिन्न स्थानों को दिये गये हैं। इन नामों को इतिहास में स्थायी

नाम इसलिए प्राप्त हुआ कि अंग्रेजी-भाषी लोगों का विश्व के एक बहुत बड़े भाग पर राज्य-शासन था। अब यदि मान लें कि आज से ५,००० वर्ष बाद अन्य सभी ऐतिहासिक सून धूमिल अथवा विलुप्त हो जाएं, तो भी बाद अन्य सभी ऐतिहासिक सून धूमिल अथवा विलुप्त हो जाएं, तो भी 'लैड' शब्द की बारम्बार आवर्ती और व्याप्ति, सत्य रूप में किसी भाषी इतिहासकार को यह निष्कर्ष निकालने का सुअवसर प्रदान करेगी कि अंग्रेज जाति किसी समय विश्व के अधिकांश भू-भाग पर राज्य-शासन करती थी। इसी प्रकार, 'स्थान' शब्द की बारम्बार आवर्ती और परिव्याप्ति से भी यही निष्कर्ष निकाला जाना चाहिये कि उन क्षेत्रों पर किसी समय संस्कृत-भाषी लोगों का राज्य-शासन था।

विश्व इतिहास के कुछ विनुप्त अध्याय

मुकुमार और अद्वा-भाव से ग्रहण करती है। किसी महिला के मस्तक पर मुकुमार और अद्वा-भाव के कुछ विशिष्ट चिह्न अंकित करते हैं। उनकी यह अद्वृत पद्धति अपरिचित व्यक्तियों को आज्ञाय में डाल देती है, उन्हें विक्षुब्ध कर देती है।

कदाचित् विश्व का अन्य कोई समुदाय ऐसी पद्धति का अनुसरण नहीं करता है। हिन्दुओं की यह पद्धति निराली, अद्वितीय है।

यद्यपि ये नमूने एक विन्दु से लेकर रेखाओं, अर्द्धचन्द्र और वर्णमाला की आकृतियों तक विभिन्न रूप के होते हैं, और इसीलिए अनन्यस्त आँखों वाले व्यक्तियों को चाहे वे अटपटे प्रतीत हों, तथापि उनका एक गूढ़ार्थ और बहुत है।

उन चिह्नों की व्याख्या करने में बहुत सारे गलत और भ्रामक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। अब जो अंकित उन चिह्नों की स्वर्ण भी धारण करते हैं, वे सभी कदाचित् इनका अर्थ और माहात्म्य भूल गये हैं, और यदि उनमें कहा जाय कि वे अन्याने अंकित को इनका मूलार्थ, इनका औचित्य समझा है, तो उनको कठिनाई होंगी।

हिन्दुओं में महिलाएं और पुरुष, दोनों ही, इन चिह्नों को धारण करते हैं। हिन्दु विभिन्न नामों और महस्त्र के कारण वे ऐसा करते हैं।

जबकि पूरबी के मस्तक पर लग हए चिह्न आकृतियों और नमूनों में पुष्ट-पृष्ठ प्रकार के ही सकते हैं, हिन्दु महिलाओं की एक बहुत बड़ी संख्या अपने भाले पर योगाकार, ताले रंग की विन्दी लगाती है।

यद्यपि हिन्दु पुरुष अपने मस्तक पर इस प्रकार के चिह्न अंकित करने वाले उपेक्षा-भाव रखते हैं, हिन्दु महिलाएं सामान्यतः इसे अभी भी

कुछ महिलाएं माथे पर बिन्दी लगाने की वजाय ऊर्ध्वाधिर अथवा पड़ी रेखाएँ लगाना पसन्द करती हैं। कोई विरली महिला ही, ऐसी होगी जो काटे का निशान, प्रत्येक कोण पर विन्दु सहित अथवा रहित, लगाना पसन्द करे। तथापि ये अपवाद ही हैं। कई बार महिलाएं अपनी मांग में ईगुर अथवा सिन्दूर भरती हैं। किन्तु सभी मामलों में सिन्दूर अथवा ईगुर विवाहित अथवा विवाह-पूर्व अवस्था की सुखद घड़ी का द्योतक है।

महिला के मस्तक पर इस रक्तिम चिह्न की विशिष्ट महत्ता पर हिन्दु-समाज में वारम्बार बल दिया जाता है। कहने का अर्थ यह है कि एक पद्धति—रीति विद्यमान है जिसके अन्तर्गत जब कोई कन्या अथवा विवाहिता, सधवा (जिसका पति जीवित है) महिला अपने सम्बन्धियों अथवा मेल-मिलाप वालों के घर जाती है, तो उसके जाने से पूर्व, आतिथेयी महिला सिन्दूर अथवा ईगुर की अपने घर से एक चुटकी लेती है और अतिथि महिला ने मस्तक पर लगे हुए चिह्न को पुष्ट करती है। यह एक अनिवार्यता है और इस पद्धति के पालन में यदि कोई दोष रहा तो वह अभद्र संकट का द्योतक माना जाता है। हल्दी और कुकुम, ये दो वस्तुएँ हैं जो सभी भारतीय धार्मिक समारोहों में बड़ी शुभ एवं पवित्र समझकर प्रयुक्त होती हैं।

महिलाओं के मस्तक पर शुभ-चिह्न अंकित करने से पृथक्, पुरुष के

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

ललाट पर अकित ऐसे चिह्नों का कोई वैवाहिक महत्व नहीं है। इन चिह्नों का इस तथ्य से कोई सरोकार नहीं है कि उसकी पत्नी है अथवा नहीं है। किन्तु, फिर भी यह एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य करता है।

पुरुषों के ललाट पर प्रायः चन्दन, भूमूल अथवा केसर का लेपन होता है—विस्ते ही किसी पुरुष के भाल पर हल्दी अथवा कुकुम लगा हुआ मिले। क्यापि इनकी मनाही नहीं है।

ललाट के अध्य में 'V' आकृति के अक्षर की प्रतिकृति भगवान् विष्णु के भूमार का एक अंश है, और इसीलिए ऐसा 'तिलक' भगवान् विष्णु के अक्षर लगाते हैं। जिनके मस्तक पर तीन अण्डवृत्त अथवा सीधी, पढ़ी रेखाएँ होती हैं, वे शिवजी के मस्तक, अनुयायी माने जाते हैं। किन्तु इन दोनों चिह्नों के मध्य जिस पारस्परिक कटूता की चर्चा की जाती है, वह योड़ी-छमांच-मुखा तक ही सीमित है। ये दोनों चिह्न इसलिए तो नहीं बने थे कि वे किसी वर्ण या पंच-भेद के द्वोतक हों। कोई भी व्यक्ति एक दिन भगवान् विष्णु का चिह्न लगा सकता था, और दूसरे दिन भगवान् शिव का विपुण धारण कर सकता था। कोई निषेध नहीं, कोई हठबाद नहीं। तथ्य तो यह है कि हिन्दू जीवन-दर्शन में ईश्वर को एक ही माना गया है। ईश्वर के विभिन्न प्रतिष्ठाप तो दिव्यांश के विभिन्न रूपों और उनकी पृथक्-पृथक् मुद्राओं का प्रतिकरण है जिस प्रकार कोई व्यक्ति एक ही समय पिता, भाऊ, पुत्र, नियोजना और कर्मचारी भी हो सकता है, उसी प्रकार ईश्वर भी मूलनकर्ता, चरक, न्यायाधीश, पुरस्कार प्रदानकर्ता, दण्ड-दाता और भगवान् है। हिन्दू देवताओं के प्रत्यक्ष बहुरूप अ-हिन्दुओं के लिए अभ्योत्पादक हो सकते हैं, क्यापि एक हिन्दू के लिए तो वे एक ही दिव्य-प्रभु के विभिन्न रूप हैं। इस तथ्य का नवीनतम् दृष्टान्त बहुगा, विष्णु और महेश के विदेव-स्त्र पर दृष्टिगत कर हृदयेन्द्रम् किया जा सकता है। तीनों मुख्याकृतियों के मध्य का वैर-भाव बाद की बताति है, और ईश्वर-उधर किसी इकके-दुकके अनि मूलभूत में ही विलम्बन है। हिन्दू देवगणों में सभी देवता साथ-साथ, वे जिसी देवता की पूजे या न पूजे अथवा किसी ग्रह की अथवा भगवान्

विश्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

के महान् शक्तिमान् सहायक हनुमान की अथवा सभी की इकट्ठी प्रार्थना करें अथवा न करें। यह व्यक्ति की अपनी इच्छा-अनिच्छा है। वे, हिन्दू-मन्दिरों में न केवल एक-साथ विराजते हैं, अपितु एक परिपूर्ण दिव्य-भाव को प्रस्तुत करने में एक-दूसरे के पूरक समझे जाते हैं।

इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण भी है। लखनऊ-संग्रहालय में सन् ११५५ ई० का सम्राट् परमदि देव का एक शिलालेख रखा हुआ है। उसमें उल्लेख है कि सम्राट् ने अपने राजप्रासाद में भगवान् विष्णु की प्रतिमा स्थापित करायी थी, और साथ-ही-साथ आगरे में अथवा उसके निकट ही भगवान् शिव का स्फटिक-श्वेत मन्दिर भी बनवाया था।

पुरुषों के ललाट पर दर्शनीय चिह्नों का सम्पूर्ण विचार इस प्रकार का प्रमाण, संकेत अथवा छाप प्रदर्शित करना था कि वह व्यक्ति उस दिन के वैयक्तिक स्वस्थता-दायित्वों को निभा चुका था। कहने का भाव यह है कि वह चिह्न अपने सभी साधियों को स्पष्ट सूचित कर देता था कि उस छाप को धारण किये हुए व्यक्ति ने अपने नित्य-कर्मों की अवहेलना नहीं की थी, उसने शुद्धिकारक प्रातःकालीन स्नान किया था, भगवत्भजन किया था, शारीरिक योगाभ्यास किया था, और उस प्रमाण-संकेत के कारण, अपने सभी कर्तव्यों की ईमानदारी से पूति करने हेतु शारीरिक और मानसिक, दोनों ही दृष्टि से योग्य था। वह समाज में भलीभांति विचरण कर सकता था और अपने सभी ईनिक-कर्मों में दत्तचित्त हो सकता था।

ऐसे ललाट-स्थित चिह्न के किसी नमूने का कोई माहात्म्य नहीं था। कोई भी नमूना वैयक्तिक चयन, पसन्द, पारिवारिक रुचि-सम्पन्नता अथवा परम्परा की बात थी। जिस व्यक्ति की कोई विशेष रुचि अथवा पूर्वोदाहरण नहीं थे, वह व्यक्ति जिस देव-दर्शन को जाता था, उसी के अनुरूप तिलक, विपुण आदि अकित कर लेता था।

पुरातन-रुदिकादी हिन्दू शरीर और मन को स्वस्थ रखने वाला दृढ़-पक्षीयक और कर्तव्य का पालन करने में अपनी आस्था रखता था—इस तथ्य को अन्य अनेक प्रमाणों से परखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, पुरातन पंथी हिन्दू लघुसंका अथवा गोच-निवृत्ति के समय अपने कान पर पशोपवीत (जनेऊ) चढ़ाता है। वह एक ऐसा चिह्न है जो स्वयं उसी के लिए

तबा अन्य सभी के लिए भी इस बात की सावधानी-सूचक चेतावनी है कि वह व्यक्ति इस समय अस्वच्छ-स्थिति में है। वह व्यक्ति उस यज्ञोपवीत को कान से नेबल तभी नीचे उतारता है, जब भलीभांति स्वच्छ ही चुकता है। स्वाधीन भारत के प्रथम दाष्टपति स्वर्गीय डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने, जो स्वयं पुरातन-पंथी, हृदिवादी हिन्दू थे, अपनी मृत्यु-शीया पर करबट ले ली थी और पास में उपस्थित ब्रह्मने मित्र से बोले थे कि यज्ञोपवीत उनके कान पर हाँ दिया जाय। उसके उपष्ट होगा कि एक पुरातन-पंथी, हृदिवादी हिन्दू के नाते वे उस जर्बर अवस्था में भी सचेत थे कि उनका शरीर धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा था। चूंकि मृत्यु किसी रोग का परिणाम होती है, और मृत-पिण्ड महता है, इसलिए कान पर लटके हुए यज्ञोपवीत ने सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को चेतावनी देने का कार्य किया और समाज-स्वस्थता के हेतु सावधानी बरतने के लिए स्वयं पर स्वैच्छिक संसर्ग रोध नियन्त्रित कर दिया।

इसी प्रकार जब किसी घर में कोई मृत्यु हो जाती है, तब मृतक के सम्बन्धियों को अपने ऊपर व्यस्त्यता का एक आत्म-प्रतिबन्ध लगाना होता है—यह समाज की ओर से भी है—जिसकी अवधि २४ घण्टे से लेकर १० दिन तक की हो सकती है। यह इस धारणा पर आधारित होती है कि मृतक ने जितना निकट का सम्बन्ध किसी व्यक्ति का रहा होगा, वह मृतक की सेवा-मुद्द्यपा करता हुआ उतना ही अधिक रोगाण्डों के सम्पर्क में आया होगा जिसकि मृत्यु किसी-न-किसी वृणित रोग के कारण ही होती है। मृतक की सेवा-मुद्द्यपा करते समय शारीरिक निकटता के कारण रोगाण्ड-संसर्ग का पुरी-पूरी आँख का रहती है। और, इसीलिए हिन्दू-समाज ने लोक-संतप्त परिवार के लिए यह अनिवार्य दायित्व निर्धारित कर दिया कि वह कुछ दिनों के लिए स्वेच्छिक काम में एकान्तवास करे, जिससे यदि किसी प्रकार का रोग-संसर्ग हुआ हो, तो वह महज स्वाभाविक काम में ही नाट हो जाये। इसी प्रकार का प्राकान्तिक प्रत्येक प्रश्नाति-कार्य के बाद भी प्रत्येक निकटस्थ सम्बन्धी के लिए विहित आ जायेंकि प्रश्नाति-कार्य अत्यधिक संकामक है, पुरुषन् इषानुवार हिन्दूओं में प्रश्नाति का प्रबन्ध घर में ही किया जाता है (न कि अस्थावासी में)।

विश्व इतिहास के कुछ विलृप्त अध्याय

मूर्तक-परिवार के पुरुष-सदस्यों को अपनी दाढ़ी-मूँछें व सिर भी मुड़-
वाने पड़ते थे। प्रमशान तक मूर्तक के पिण्ड के साथ-साथ जाने वाले व्यक्तियों
को भी उनके घरों के भीतर तबतक प्रवेश नहीं मिलता था, जबतक वे घर
से बाहर ही स्नान न कर लें और अपने वस्त्रादि न धो लें। प्राचीन हिन्दुओं
के वैशिष्ट्यक और सामाजिक आरोग्य के सम्बन्ध में इस प्रकार के सिद्धान्त
विषय के किसी भी भाग्य में अद्वितीय, अनुपम, असमान हैं।

पुरातन पन्थी हिन्दू पाकशाला से सम्बन्धित पुरुषों को भी अनिवार्यतः अपने सिर और दाढ़ी-मूँछे बिल्कुल सफाचट कराने पड़ते थे।

भोजन पकाने अथवा खाने से पूर्व स्नान करना जहरी था। स्नान कर लेने से पूर्व इनकी अनुमति नहीं थी। पाकशाला अथवा भोजन-कक्ष में प्रवेश करने के लिए पुरुषों को बिना सिली रंगीन रेशमी धोती पहनना, और महिलाओं को साढ़ी व ब्लाउज — पूर्णतया रेशमी वस्त्र धारण करना अनिवाय था। पाकशाला अथवा भोजन-सामग्री से सम्बन्धित किसी भी कार्य अथवा वस्तु के सम्बन्ध में 'आरोग्य'-विनियमादि इतने कठोर थे कि यदि किसी बच्चे को भी तुरन्त सहायता की आवश्यकता होती, तो भी महिला उसे नहीं छूती; और यदि उसे छूना ही पड़ जाए, तो वह महिला पुनः पाकशाला अथवा भोजनकक्ष का कार्य तभी प्रारम्भ कर सकती थी जबकि एक बार पुनः स्नान कर ले और पुनः नवीन (शुद्ध) वस्त्र धारण कर ले।

आज के युग में भी कुछ जैन (हिन्दू) साधु अपने मुख पर पतली कपड़े को पट्टी बांधकर रखते हैं। इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दू लोग दैनन्दिन शुद्धता के सम्बन्ध में अपने विचारों को आधुनिक सोशलीय जल्द-चिकित्सा के अति सूक्ष्म क्रीतिमानों तक पहुँचा चुके थे।

दो विशिष्टताओं का उल्लेख करके मह दर्शाया जा सकता है कि मस्तक पर शुभ चिह्न अंकित करना हिन्दू धर्मों और सामाजिक जीवन में कठोर नियमपूर्वक बनाये रखने वाले आरोग्य का ही एक अंश था। वह व्यक्ति मह शुभ चिह्न अंकित नहीं करता था जो स्नान न करते। बिना स्नान किये इसके लेपन का विधान नहीं था। इस प्रकार, यदि कोई रोगी स्नान नहीं करता था, तो वह उस दिन चन्दन, रोली आदि का लेपन नहीं करता था।

हेपे के अवसरों पर जब विवाह अथवा सामूहिक भोज प्रारम्भ होते हैं।

विष्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

२४४

विष्व इतिहास के कुछ विलुप्त अध्याय

तब पतल सम्मुख रखे और लकड़ी के पट्टों पर बैठे भोजनार्थ आगन्तुकों के मस्तक पर, आतिथेयी अपने एक सहायक के साथ, चन्दन अथवा केसर का ढीका लगाता है जो इस भाव का चौतक होता है कि अतिथि स्वच्छ है अर्थात् उसने स्नान कर लिया है और निर्धारित वेषभूषा धारण कर रखी है। सहायक व्यक्ति के हाथ में प्रायः चाँदी की कटोरी होती थी जिसमें जल में धूती हुई केसर अथवा चन्दन-लेप होता था। आतिथेयी अथवा उसकी ओर से कोई व्यक्ति एक हत्की-सी दुर्होरी चाँदी की जंजीर लिये रहता है। वह उस जंजीर को लेप में दूदोकर प्रत्येक भोजनार्थ आगन्तुक के मस्तक पर आड़ी या पड़ी रेखाएँ अंकित कर देता है। भोजन श्रहण करने का कार्य, अन्य दातों के अतिरिक्त, इस शोधक-प्रमाणन रीति की समाप्ति हो जाने के बाद ही, प्रारम्भ होता है।

यही इस तथ्य का पुनः उल्लेख कर दिया जाता है कि जैसा कही वार ज्ञानि-वश ममझा जाता है, इस प्रकार, या उस प्रकार तिलक-धारण का अर्थ अपरिवर्तनीय या बैर-भाव गत वर्ण-भेद नहीं था। इस तथ्य को 'हरिहर' नामोन्नेत्र द्वारा और भी अधिक स्पष्ट दर्शाया जा सकता है क्योंकि 'हरिहर' का अर्थ नयुक्त भगवान् विष्णु और शिव है। यह नाम भारत में बैर-नामान्वय है। मत-मतान्तरों के समान ही, वर्ण भी निवधि-रूप में परिवर्तनीय है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण 'भगवद्गीता' में स्वर्ण भगवान् रूप के बचनामृत है। इन्होंने कहा—

"चानुवर्णं मया मृष्टं गुणं कर्म विभागशः"

इचोन् समार में मनुष्यों का विभाजन, मैंने उनके गुण-कर्मों के अनुसार वर्णों में किया है।

वहाँ भी ध्यान रखने की बात है कि उपर्युक्त पंक्ति में किसी भी प्रकार परम्परागत कर्म ये वर्ण प्रहण करने का उल्लेख नहीं है।

मत-मतान्तर और आति-वर्ण आदि का घटियमेट मात्र उस समय हुआ जब भारत की १००० वर्ष की मुस्लिम आक्रमणों और अत्याचारों की चर्याकह स्थिति में से गुरुरना पड़ा। उससे पूर्व, वे परस्पर परिवर्तनीय, राज्य हैं। व्यक्ति की जनती रमन्द के अनुसार मत-मतान्तरों में सहज बदला-बदली की जा सकती थी। जहाँ तक वर्ण-व्यवस्था का प्रण न है, वह

तो कुछ कठोर निर्धारित जातों, योग्यताओं के अनुसार समाज का वर्गीकरण होता है। वे सभी, जिनके चरित्र और स्वभाव अज्ञात हैं, निम्नतम अर्थात् शूद्र-व्याया। वे सभी, जिनके चरित्र और स्वभाव अज्ञात हैं। वे लोग, जो शारीरिक और मानसिक शुद्धता के स्तर से प्रारम्भ होते हैं। वे लोग, जो किन्तु साधारण गृहस्थ की अवस्था अनुसार तो परिष्कृत हो सकते हैं किन्तु साधारण गृहस्थ की अवस्था अनुसार तो परिष्कृत हो सकते हैं कि वैश्य स्तर से सम्बन्धित है। वे लोग जो स्वयं को उन्नत नहीं कर सकते हैं, वैश्य स्तर से सम्बन्धित है। वे लोग जो युद्ध-विद्या और प्रशासन-कार्य में निपुणता प्राप्त करने के लिए उच्छुक तथा देश-हित के लिए युद्ध करने व सर्वस्व बलिदान करने के लिए उच्छुक तथा देश-हित के लिए युद्ध करने व सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हैं। ब्राह्मण लोग वे हैं जिन्होंने पहले तीनों वर्णों के कर्तव्यों और तैयार हैं। ब्राह्मण लोग वे हैं जिन्होंने पहले तीनों वर्णों के कर्तव्यों और तैयार हैं। जिन्होंने प्राप्त करने के बाद भी, मित्रव्ययता और परित्याग का गुणों में निपुणता प्राप्त करने के बाद भी, मित्रव्ययता और परित्याग का जीवन व्यतीत करने की तैयारी की थी, जिन्होंने अपने पास कोई सम्पत्ति नहीं रखी, जो सभी प्रकार की विषमतम परिस्थितियों में भी अपना चित दिश्वर रख सकते हैं और आरोग्य-सहायता, शिक्षण, प्रशासन व समाज-कल्याण के कार्य में निःशुल्क सेवा करने को सदैव उद्यत है। आवश्यक तामाजिक-परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेने के बाद व्यक्ति अनुबर्ती वर्ण, श्रेणी में प्रविष्ट हो सकता था। व्यक्ति जितना ऊँचा उठता था, उतनी अधिक उसकी निष्ठा, परित्याग, आत्म-बलिदान और विचार तथा आचरण की शुद्धता होती थी। वह प्राचीन वैदिक परम्परा आज की मान्यताएँ और आदर्शों के विलुप्त विपरीत थी। आज व्यक्ति जितने उच्च पद पर होता है, उतना ही अधिक उसको पुरस्कार-स्वरूप राखि प्राप्त होती है। गिराव अधिक होने से अधिक प्राप्ति होती है। वह तो वास्तविकता में सामाजिक जीक हो जाता है। इसके विपरीत, हिन्दुओं की आशा-आकांक्षा थी कि व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा जितनी अधिक प्राप्त होगी, वह उतना ही अधिक परहितवादी, आत्म-बलिदानी और निष्ठावान होगा। यही कारण था कि किसी राजगुरु का तनिक-सा विरोधी होना पर्याप्त था कि वहेसे-बड़ा, शनितशाली सम्राट् बिना किसी प्रकार का नू-नूच किये राज-सिद्धासन परित्याग कर देता था। राज्य की भलाई और व्यक्ति की मुक्ति के लिए प्राचीन हिन्दू जीवन-पद्धति ने अति-परिश्रम और सत्तकंतापूर्वक जो मानसिक उसकी यह परिपूर्णता थी।



पुरुषोत्तम नागेश ओक

जन्म : २ मार्च १९१७, इन्दौर (म० प्र०)
 शिक्षा : अम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० वी०
 जीवन कार्य : एक वर्ष सक अध्यापन कर सेना में भर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिंगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना हासी शम्पर्ण के उपरान्त आजाद हिन्द फोर्स के स्थापन में भाग लिया, सेगीन में आजाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

द्वितीय युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। १९५७ से १९७४ तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समेन में) कार्य किया तथा भारत राजकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। गिर अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में कार्य किया।

देश-विदेश में भ्रमण करते हुए तथा ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें की। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ हैं- ताजमहल गन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की जगह पुल, विश्व इतिहास के विलुप्त अव्याय, धिनिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, जोन कहता है अब्दर महान था?

उनकी मरणता है जिन पाठ्यात्म्य इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कारबाह चिन्ह है, वह चटिका भासे को नष्ट करने के लिए जानबूझकार किया है औ दुर्भाग्यमान हाथरे जगही इतिहासकार इसमें उनका उहांग कर रहे हैं।



हिन्दी साहित्य सदन

२ गो. नं., नगरा, १०/५४ नी. शी. गुप्ता रोड,
 कराल बाग, नई दिल्ली ११०००५
 Email: info@hindisadan.org, www.hindisadan.org